इकाई 1 प्राकृतिक जीवन की अवधारणा, प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ, परिभाषायें एवं इतिहास

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 प्राकृतिक जीवन की अवधारणा

1.4 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ

1.5 प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषायें

1.6 प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना-

वर्तमान समय में भिन्न-भिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग बढ़ते जा रहे है। जिनकी भिन्न-भिन्न प्रकार से चिकित्सा की जा रही है परन्तु चिकित्सा के उपरान्त भी इन रोगों की संख्या तथा इन रोगों से पीडिंत रोगियों की संख्या बढ़ती जा रही है। इन रोगों के परिपेक्ष्य में प्राकृतिक चिकित्सा एक सरल, सुलभ, उपयोगी तथा स्थाई समाधान है।

प्राकृतिक चिकित्सा वास्तव में कोई चिकित्सा शास्त्र ना होकर हमारे जीवन की एक शैली है जिसके अर्न्तगत हम प्रकृति के समीप रहकर प्राकृतिक नियमों का पालन करते है। इसका सम्बन्ध हमारी सभ्यता और संस्कृति से है हमारे पूर्वज इसके साथ अपने जीवन को जोड़कर सौ वर्षो की स्वस्थ आयु को प्राप्त करते थे परन्तु जब से हमने इस जीवन शैली से दूर होकर अप्राकृतिक जीवन शैली को अपनाया तभी से भिन्न-2 प्रकार के रोगों ने हमारे जीवन को घेर लिया।

प्रस्तुत इकाई में प्राकृतिक जीवन की अवधारणा के साथ-साथ प्राक़तिक चिकित्सा के अर्थ, परिभाषाओ तथा इतिहास का वर्णन किया जा रहा है।

1.2 उद्देश्य-

इस इकाई में आप

प्राकृतिक जीवन की अवधारणा को जान सकोंगे।

प्राकृतिक चिकित्सा के अर्थ को समझ सकोंगे।

प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषाओं का अध्ययन करोगे।

प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास को जान पाओंगे ।

1.3 प्राकृतिक जीवन की अवधारणा-

प्रकृति के अनुरूप जीवन यापन करना प्राकृतिक जीवन कहलाता है। दूसरे शब्दों में जीवन को प्रकृति के अनुसार जीना ही प्राकृतिक जीवन कहलाता है। प्राचीन समय में व्यक्ति प्राकृतिक रूप से अपनी जीवन चर्या चलता था वह प्रकृति के बिलकुल पास था। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश (पंच-तत्वों) के बिलकुल समीप था इसलिए व शारीरिक रूप से बलिष्ठ तथा मानसिक रूप से स्वस्थ्य था।

प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए प्रकृति के समीप वास करना ही प्राकृतिक जीवन है। यहां पर आपके मन में प्राकृतिक नियम क्या होते है तथा इनका पालन कैसे होता है अथवा मनुष्य किस प्रकार प्रकृति के समीप वास कर सकता है। यह प्रश्न उठने स्वाभाविक है। इन प्रश्नों के उत्तर में हमें सबसे पहले प्राकृतिक नियमों को जानना आवश्यक होगा-जिनका वर्णन इस प्रकार है-

प्राकृतिक दिनचर्या-

प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व उठना प्रथम प्राकृतिक नियम है। सामान्यतया संसार के सभी जीव जन्तु इस प्रथम नियम का पालन स्वतः ही करते हैं। अत: व्यक्ति को चाहिए कि वह ब्रहममुहुर्त में अवश्य निद्रा त्याग कर दे।

प्राकृतिक आहार-

वर्तमान समय में व्यक्ति का आहार असंतुलित है डिब्बा बन्द, फास्ट फूड के सेवन से उसे बीमार कर दिया है। प्रकृति ने हमें जो आहार जिस रूप में दिया है हमें उसी रूप में इस आहार का सेवन करना चाहिए। इसे गर्म करने, तलने भूनने तथा मिर्च मसाले प्रयोग करने से इसकी प्रकृति बदल जाता है।

प्राकृतिक वातावरण-

प्राकृतिक वातावरण में वास करना प्राकृतिक नियम है। इसके विपरीत अप्राकृतिक वातावरण में रहना प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन होता है।

प्राकृतिक सोच-विचार-

प्राकृतिक सोच विचार से अर्थ सकारात्मक भावों को अपनाने से है। झूठ, चोरी, हिंसा से अलग सतत सुख की कामना करते हुए आसन-प्राणायाम तथा ध्यान का अभ्यास प्राकृतिक नियमों के अर्न्तगत आता है।

प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग-

जीवन में प्राकृतिक संसाधन (मिट्टी-जल-अग्नि-वायु तथा आकाश) तत्वों का प्रयोग करना प्राकृतिक नियम के अर्न्तगत आता है। मनुष्य को आरोग्य तथ सामान्य स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये प्राकृतिक जीवन के 5 नियम बनाये गये है जो निम्नानुसार है

- सप्ताह में एक बार उपवास रखे.
- दिनभर में 10-12 गिलास पानी पीयें.
- प्रातः व संध्या प्रार्थना
- नियमित व्यायाम
- दिन मे सिर्फ दो बार भोजन करना

1.4 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ

प्रकृति प्रदत्त चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा कहते हैं। शरीर से संचित विजातीय द्रव्यो को प्राकृतिक साधनो द्वारा निकालना एवं जीवनी शक्ति को उन्नत करना ही प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है। प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग एक ही गाड़ी के दो पहिये है। प्राकृतिक जीवन एवं योग को छोड़कर और कोई भी चिकित्सा पद्धति पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान नही कर सकती। उसका ज्ञान प्राप्त कर हर व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के लिये आत्म निर्भर हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा सिर्फ एक

चिकित्सा ही नही बल्कि जीवन पद्धति है। जब सभी अन्य इलाज असफल हो जाते है तब भी प्राकृतिक चिकित्सा मे इलाज सम्भव है। प्राकृतिक चिकित्सा सहज, सरल और सर्वत्र है जो एक बार इसका आश्रय लेता है वह इसका सच्चा अनुरागी बन जाता है। रोग जड़ से निकल जाता है, जल्दी आराम होता है। मन मे शान्ति और शरीर मे स्फूर्ति बढती है।

प्राकृतिक चिकित्सा से सभी दबे रोग भी ठीक हो जाते है। दवाऐं नही खानी पड़ती एवं चीर फाड़ की आवश्यकता नही होती। रोगी इस चिकित्सा से आराम होने पर शीघ्र ही अपने सारे कार्य करने लगता है। मन से रोग का भय चला है। प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली दोहरा कार्य करती है। प्रथम कार्य रोगी को शीघ्रतम रोग मुक्त करना, द्वितीय कार्य प्रशिक्षित करना वह प्राकृतिक जीवन अपनाकर भविष्य मे अपने को रोग मुक्त रख सके। लिंडलार की प्राकृतिक चिकित्सा मानव रोगो के उपचार की विविध पद्धतियों की अच्छाइयों को एकत्र करने का सर्वप्रथम प्रयास है। सही अर्थ मे यह अपने ढंग की एकमात्र तथा उदार पद्धति है इसमे पुरानी पद्धतियों की अच्छाइयो को पूरा महत्व दिया गया है। थोडे से आधारभूत प्राकृतिक नियमो के बल पर यह अव्यवस्था से व्यवस्था, जटिलता से सरलता तथा उलझन से स्पष्टता लाती है। यह विविध प्रकार की औषधीय एवं औषधिविहिन पद्धतियो मे सामंजस्य स्थापित कर उनको कतिपय, सिद्धान्तो और प्रयोगो के रुप मे प्रस्तुत करती है। यह मानव इतिहास मे व्यक्तिगत एवं सामाजिक सुधारो के समान परिणाम देने वाले अनेक आन्दोलनो का प्रतिनिधित्व करती है। यह रोग के कारणो की खोज करती है तथा शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक धरातलो पर व्यक्ति का उपचार करती है तथा अकाट्य तर्क से यह सिद्ध करती है की रोगो का कारण तथा उनके प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक उपचार का प्रभाव मानव जीवन के सभी धरातलो पर समान रुप से प्रभावकारी होता है।

1.5 प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषाएं-

प्राकृतिक चिकित्सा का शाब्दिक अर्थ करने पर यह दो शब्दों प्राकृतिक+चिकित्सा से मिलकर बना है जिसका अर्थ प्रकृति द्वारा चिकित्सा से होता है। प्राकृतिक चिकित्सा से अर्थ प्राकृतिक संसाधनों से चिकित्सा करने से भी होता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत प्रकृति द्वारा प्रदत्त हैं इन महाभूतों द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है।

हमारा यह शरीर पंचतत्वों से मिलकर बना है। पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश इन पंचतत्वों के समयोग से इस शरीर का निर्माण होता है। शरीर में इन तत्वों योग जब तक समअवस्था में रहता है तभी तक शरीर स्वस्थ रहता है किन्तु जब भी इन तत्वों का योग विषम हो जाता है तभी यह शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। रोग की इस अवस्था में प्राकृतिक साधनों का प्रयोग कर पंचतत्वों के योग को पुनः सम बनाना ही प्राकृतिक चिकित्सा है।

- प्राकृतिक चिकित्सा – प्रक़ृति के निर्माणकारी सिद्धान्तों के अनुसार शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक धरातलों पर सामन्जस्य के साथ मानव निर्माण की व्यवस्था है।
- प्राकृतिक ढंग से जीवन यापन करना ही प्राकृतिक चिकित्सा है।
- आकाशतत्व, वायु तत्व, अग्नितत्व, जल तत्व तथा पृथ्वी तत्व का प्रयोग कर रोग को ठीक करने की पद्धति को प्राकृतिक चिकित्सा कहते है।
- प्राकृतिक जीवन – प्राकृतिक आहार विहार, नित्य व्यायाम, शारीरिक आन्तरिक व स्वच्छता व सफाई पर निर्भर चिकित्सा ही प्राकृतिक चिकित्सा है।
- शरीर मे पंच तत्वों के असंतुलन को जिस चिकित्सा पद्धति के द्वारा पून- संतुलित किया जाता है वह प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है।
- प्रकृति के गोद में रहकर ही जीवन यापन करना प्राकृतिक चिकित्सा है।
- पूर्णत: प्रकृति पर निर्भर रहने वाली चिकित्सा ही प्राकृतिक चिकित्सा है।

1.6 प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास-

प्रकृति प्रदत्त चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है जब भी इस संसार का उदय हुआ होगा (पंच तत्व) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश अवश्य ही इस संसार में व्याप्त होगें। अत: हम कह सकते है कि जितनी पुरानी प्रकृति है उतनी ही पुरानी प्राकृतिक चिकित्सा है। इसलिए हम कह सकते है संसार की समस्त प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों में सबसे प्राचीन चिकित्सा पद्धति प्राकृतिक चिकित्सा है। अगर प्राचीनतम आर्ष ग्रन्थों का अवलोकन करे तो सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ वेद कहे जाते है वेदो में प्राकृतिक चिकित्सा से सम्बन्धित कई बातो का वर्णन मिलता है।

ऋग्वेद में अग्निवदेव का आह्ववाहन करते कहा है।
यदग्ने स्यमहं त्वं त्वं वा धा स्या अहम
स्युष्टे सत्या दूहाशिष: (ऋ 0 8/44/23)

अर्थात हे अग्नि देव यदि मैं तू अर्थात सर्व समृद्धि सम्पन्न हो सकू या तू मैं हो जाय तो मेरे लिए तेरे सभी आशीर्वाद सत्य सिद्ध हो जाय।

पृथ्वी को वेदों में ज्ञान व विज्ञान का प्रतीक माना है-

श्रष्ठात प़थिण्या अहमन्तरिक्षमारूह मन्तरिक्ष्ताद दिवमारूहम दिवों नाकस्य प़ष्ठात स्वजर्यो तिरगामहम इस ऋचा में पृथ्वी अन्तरिक्ष ओर द्यो क्रमश: अन्न, प्राण और मन की भूमिकाओ के प्रतीक है।

प्रिय पाठको स्मरण रहे भारतीय चिन्तन मे हमेशा इन पंच तत्वो को देव स्वरूप माना है हवन, यज्ञ इत्यादि अनुष्ठानो मे इन तत्वो की पूजा की जाती है।

वेद काल के साथ – साथ पुराण काल में भी प्राकृतिक चिकित्सा सर्वव्याप्त थी। राजा दिलीप की अगर कहानी आपने पढी होगी तो कहा जाता है कि जंगल सेवन तथा दुग्धपान उनकी दिनचर्या का एक अभिन्न अंग था। राजा दशरथ ने यज्ञ के बाद फल कल्प कराकर सन्तान लाभ लिया था। प्राचीन समय पर आधुनिक चिकित्सा पद्धति किसी भी रूप में नही थी पुराने वैद्यो के पास जब व्यक्ति जाता था जो उन्हे उपवास कराया जाता थ। भगवान वुद्ध ने भी प्रकृतिक चिकित्सा की उपयोगिता को माना है। वौद्ध दर्शन की पुस्तक महाबग्ग में लिखा है कि एक बार विशेले सर्प ने एक भिक्षु को काट दिया। जब इन बात की सूचना भगवान बुद्ध को मिली तो उन्होनें कहा – हे भिक्षुओ मैं तुम्हे आज्ञा देता हूँ कि विष नाश के लिए चिकनी मिट्टी, गोबर, मूत्र और राख का उपयोग करो। अत: हजारो साल पुरानी यह घटना बताती है कि रोग नाश विषनाश के लिए प्राकृतिक चिकित्सा का उपयोग प्राचीनतम समय से चला आ रहा है। वर्तमान में प्राकृतिक चिकित्सा के कई प्रयोग आधुनिकतम तरीके से हो रहे है पर वे सभी अपनी पूर्वावस्था में प्राचीन समय से भारत में विघमान थे। भलई आधुनिक नाम उनके भिन्न हो पर इनका आधार प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा ही है। उदाहरणार्थ वर्तमान में वाटर-सिपिंग, सिटजबाथ, एनिमा; तथा स्टीमवाथ को प्राचीन समय में आचमन, जलस्पर्श, वस्ति तथा स्वेद स्नान कहत हो। भलई प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली भारत की है पर इस प्रणाली के पुनर्निर्माण का श्रेय पाश्चातय देशो को भी जाता है। ईसा से कई वर्ष पूर्व हिपोक्रेटीज जिसको प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का जनक कहते है अपने रोगियो को नियमित रूप से सूर्य स्नान करवाता था। आधुनिक समय में कई प्राकृतिक चिकित्सको ने प्राकृतिक चिकित्सा के उत्थान के लिए कार्य किया है जिसमें सर जान फ्लायर, विनसेंज प्रिस्निज, सीलास ग्लीसन, जोहान्थ फादर निप, रिक्ली, लुई कुने, डा0 राने, एडोल्फ जस्ट, महात्मा गॉधी, कुलरंजन मुखर्जी, मोरारजी देसाई, गंगा प्रसाद नाहर , डा0 महावीर प्रसाद पोदार, डा0 विटठलदास मोदी इत्यादि प्रमुख है।

अभ्यास प्रश्न

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) रोगों के उपचार में प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार है-

(अ) सरल (ब) सुलभ (स) स्थाई लाभ (द) सभी

(ख) प्राकृतिक चिकित्सा का सम्बन्ध है-

(अ) नियमित दवाईयों के सेवन से

(ब) भोजन त्यागने से

(स) प्रकृति प्रदत्त नियमों का पालन करने से

(द) इनमें से कोई नहीं

(ग) शरीर में स्थित महाभूतों की संख्या है-

(अ) दो (ब) पाँच (स) आठ (द) दस

(घ) एक गाड़ी के दो पहिए कहे जाते है-

(अ) प्राकृतिक चिकित्सा और एलोपैथी (ब) प्राकृतिक चिकित्सा और एक्यूप्रेशर

(स) प्राकृतिक चिकित्सा और योग (द) प्राकृतिक चिकित्सा और होम्योपैथी

(ड.) Return To Nature पुस्तक के लेखक हैं-

(अ) एडोल्फ जस्ट (ब) लुई कुने

(स) आर्नल्ड रिकली (द) जेम्स क्यूरी

(2) सत्य/असत्य बताइए -

(क) वर्तमान समय में रोग एवं रोगियों की संख्या बढ़ रही है।

(ख) प्रकृति के समीप जीवन यापन करने से हम स्वस्थ रहते है।

(ग) शरीर में विजातीय पदार्थो के एकत्र होने से जीवनी शक्ति बढ़ती है।

(घ) प्राकृतिक चिकित्सा में दवाइयों का सेवन किया जाता है।

(ड.) पंचतत्वों के समयोग से स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

1.7 सारांश-

प्राकृतिक चिकित्सा एक चिकित्सा प्रणाली ना होकर जीवन शैली है। जिसके अर्न्तगत प्राकृतिक जीवन एवं प्राकृतिक आहार विहार का समावेश होता है। इसे अपनाने से मनुष्य शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर स्वस्थ रहता है। प्रस्तुत इकाई में आपने प्राकृतिक चिकित्सा की विभिन्न परिभाषाओं को जाना इन परिभाषाओं को सार रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रकृति प्रदत्त साधनों द्वारा चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा है। पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचतत्वों के द्वारा जो चिकित्सा की जाती है वही प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है। प्राकृतिक चिकित्सा का उद्गम भारतवर्ष परन्तु दूसरे विकास का श्रेय पश्चिमी देशों के चिकित्सकों, विचारकों, चिन्तकों एवं दार्शनिक को जाता है। भारत में वैदिक सभ्यता में पृथ्वी, सूर्य, अग्नि रूप पंचतत्वों की देव के रूप् में पूजा अर्चना का वर्णन प्राप्त होता है तथा रोग की अवस्था में उपवास एवं लंघन का वर्णन मिलता है। किन्तु आगे चलकर जब औषध चिकित्सा का प्रयोग बहुत बढ़ा तथा प्राकृतिक चिकित्सा का लोप

हुआ उस समय पश्चिमी देशों के चिकित्सकों ने इसके प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1.8 शब्दावली

प्रकृति प्रदत्त - प्रकृति द्वारा प्रदान किया गया

विजातीय द्रव्य - गन्दगियां

अवधारणा - किसी विषय के प्रति सोच

समावेश - जोडना

उद्गम - शुरूवाद, उत्पत्ति

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) (क) – द (ख) – स (ग) – ब (घ) – स (ड.) - ब

(2) (क) – सत्य (ख) – सत्य (ग) असत्य (घ) असत्य (ड.) सत्य

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

डा. राकेश जिन्दल - प्राकृतिक आर्युविज्ञान (2006) – आरोग्य सेवा प्रकाशन पंचवटी, उमेश पार्क, मोदीनगर

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

(1) प्राकृतिक चिकित्सा से आप क्या समझते हो विस्तार पूर्वक समझाइये।

(2) प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई-2 प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त

2.3.1 प्रथम सिद्धान्त

2.3.2 द्वितीय सिद्धान्त

2.3.3 तृतीय सिद्धान्त

2.3.4 चतुर्थ सिद्धान्त

2.3.5 पंचम सिद्धान्त

2.3.6 षष्ट सिद्धान्त

2.3.7 सप्तम् सिद्धान्त

2.3.8 अष्टम् सिद्धान्त

2.3.9 नवम् सिद्धान्त

2.3.10 दशम् सिद्धान्त

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना-

प्रिय पाठकों पिछली इकाई में आपने प्राकृतिक जीवन की अवधारणा के विषय में जाना तथा प्राकृतिक चिकित्सा के अर्थ का अध्ययन किया। प्राकृतिक चिकित्सा का सम्बन्ध प्राकृतिक जीवन के साथ है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के द्वारा चिकित्सा की जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा के भिन्न-2 अनुप्रयोग वर्तमान समय में चल रहे है परन्तु इसके अनुप्रयोग से पूर्व इस चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्तों को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रस्तुत इकाई में आप प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन किया जा रहा है जिसे जानकर पाठक प्राकृतिक चिकित्सा को भली-भाँति समझने तथा चिकित्सा करने में सक्षम हो सकेंगे-

2.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत इकाई में आप

- रोगों की एकरूपता का अध्ययन करोगे।
- चिकित्सा की एकरूपता को समझ सकोगे।
- विजातीय विष के सिद्धान्त को जान सकोगे।
- तीव्र रोग एवं जीर्ण रोगों का विश्लेषण करोगे।
- उभार के सिद्धान्त को जान सकोगे।
- शरीर-मन-आत्मा तीनों की एक साथ चिकित्सा का अध्ययन करोगे।

2.3 प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त-

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार हैं -

- इस चिकित्सा प्रणाली में दवाईयों का प्रयोग नहीं किया जाता है।
- प्राकृतिक चिकित्सा में रोग एक, कारण एक तथा चिकित्सा भी एक ही होती है।
- तीव्र रोग शत्रु नही मित्र है।
- रोगो के मूल कारण कीटाणु नही होते है।
- प्रकृति स्वयं चिकित्सक है।

- चिकित्सा रोग की नही शरीर की होती है।
- रोग निदान की विशेष आवश्यकता नही है।
- जीर्ण रोगो के आरोग्य में कुछ समय अधिक लगता है।
- प्राकृतिक चिकित्सा में उभार की सम्भावना होती है।
- शरीर, मन, आत्मा का इलाज है प्राकृतिक चिकित्सा

1.4.1 इस प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में दवाईयों का प्रयोग नहीं किया जाता - प्राकृतिक चिकित्सा में केवल 5 तत्व मिट्टी, पानी धूप हवा, आकाश एवं छठा तत्व परम पिता जगत नियन्ता जगत का सृजनहार ईशतत्व है, इस चिकित्सा में फल, साग सब्जी अनाजों का आहार में प्रयोग होता है इनमें भी भरपूर पांच तत्व है,संसार का कोई प्राणी या पौधा जो सजीव है बढ रहा है उन सबमे यही पांच तत्व विघमान है। इन पांच तत्वो के बिना किसी जीव का अस्तित्व नही होगा, हाँ इनमे प्रत्येक आहार के तत्वो मे किस खाद्य पदार्थ मे किस तत्व की प्रधानता है, यह जानकारी होनी चाहिये और किस व्यक्ति मे कौन सा तत्व विशेष रुप से देने की आवश्यकता है वह देना चाहिये। प्रायः रोगी दवाईयो की पद्धति का उपयोग करने के बाद आता है,रोग तो वेसे भी सिद्धान्ततः स्वयं से ही विकार है, उपर से अज्ञानवश अनेक दवाईयॉ जो सभी रासायनिक असाध्य और विजातीय होती है, रोगी के शरीर मे उनका जहर होता है, ऐसे मे हम उन्हे शोधन हेतु आहार देते है, संसोधन की क्रिया एक साधना है, वैसे हम प्राकृतिक चिकित्सा मे आने वाले रोगो को मित्र ही मानते है। अपने आप का बिना दवा निरोग रखने हेतु आकाश तत्व सबसे महत्वपूर्ण है जीवन मे इसकी आवश्यकता अन्य तत्वो की अपेक्षा अधिक है, इससे शरीर मे स्वस्थता, सुन्दरता, आरोग्य व दीर्घायु प्राप्त होती है, आकाश तत्व के सेवन का मार्ग निराहार रहना यानि उपवास करना होता है।

पॉच तत्वो के माध्यम से ही प्राकृतिक चिकित्सा की जाती है इसलिए इस पद्धति में किसी भी प्रकार की औषधि दिये जाने का प्रश्न ही नही उठता। वर्तमान में व्यक्ति की जीवनशैली अनियमित होने के कारण वह कई शारीरिक व मानसिक रोगो की चपेट में है और इनके निदान के लिए वह दवाइयों पर निर्भर रहता है।

दवाइयो से लाभ हो या न हो पर यह निश्चित है इसके दुष्प्रभाव शरीर में अवश्य पडते है।

प्राकृतिक चिकित्सा विशुद्ध व निर्दोष चिकित्सा पद्धति है इसमें चिकित्सा के लिए दुष्प्रभावों से रहित पंच तत्वो का सहारा लिया जाता है। अत- जिज्ञासु पाठको को चाहिए कि प्राकृतिक चिकित्सा के पहले सिद्धान्त का उपयोग उसे दैनिक जीवन में करना चाहिए।

1.4.2 प्राकृतिक चिकित्सा में रोग एक, कारण एक, तथा चिकित्सा एक ही होती है - शरीर मे रोग एक है, शरीर मे संचित जमा हुआ मल, जिसे विजातीय द्रव्य कहते है आयुर्वेद भी रोगो का कारण शरीर में मल संचय मानता है। आयुर्वेद कहता है सभी रोगो का कारण शरीर में मल संचय है और मल के संचय का कारण गलत खाना पीना गलत रहन सहन है। शरीर में जमा विकार रोग है और शरीर के विभिन्न अंगो द्वारा उसको निकालने की जो प्रकिया शरीर की जीवनी शक्ति करती है। बिना किसी दवा के सभी रोग केवल आहार-विहार रहन-सहन के सुधार से ठीक होते है यदि आहार-विहार, रहन-सहन ठीक नही तो सैकडो दवाए लाभ नही करती है यही सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा है। दुनिया के लोग रजस तमस प्रधान है और रजस तमस प्रधान व्यक्ति विलासी होता है। उसे पथ्य रहन सहन सुधारने को कहना ही व्यर्थ होता है। विलासी व्यक्ति भांग, गांजा, अफीम, शराब, तम्बाकू, बीडी, सिगरेट, स्मैक, मिर्च, नमक, गर्म मसाले आदि ना जाने कितने असाध्य आहार लेता है। उसे उपरोक्त सभी वस्तुएं चाहिये, इसमें से कुछ भी नही छोडेगा मांस, मछली, अंडा खाने वालो को ये सब खाते हुए और सदा खाते रहने के लिये शरीर को बनाये रखना है तो भला वे प्राकृतिक चिकित्सा क्यों करेंगे? फिर तो वे दवा ही खायेंगे और दवा के भरोसे जितनी जिन्दगी है उतनी और चला लेते है किन्तु परहेज संयम नही करते है। प्राकृतिक चिकित्सा मे इन्ही सब कुपथ्यो को रोग का कारण मानते है। आयुर्वेद भी मानता है, सभी रोगो का कारण संचित मल और संचित मलो का कारण गलत जीवन है, इसका एक ही इलाज है की गलत आदतो को छोडना तथा जिन गलती के कारण रोग हुआ है, मल संचित हुआ है उनका सुधार करना तथा एनिमा, भाप, उपवास, वमन, नेति, मालिश, भोजन का सुघार करके रक्त शुद्धि, शरीर शुद्धि, मल शुद्धि करके शरीर निरोग किया जाता है। इसी से प्राकृतिक चिकित्सा की जाती है।

1.4.3 तीव्र रोग शत्रु नही मित्र हैं- शरीर में विकार जमा होने पर उस विकार को निकालने की जो शरीर की जीवनी शक्ति द्वारा चेष्टा की जाती है उसे ही रोग की संज्ञा दी जाती है, शरीर के किस भाग में किस तरह का विकार निकलता है या क्या लक्षण दिखता है वैसा नाम उस रोग को समझने के लिये दे देते है, जैसे किसी को दस्त लग रहे हो तो पेट मे गन्दगी (मल) जमा होने पर प्रकृति उसे निकालने का प्रयत्न दस्त के रुप मे कर रही होती है, इसलिये दस्त होना एक रचनात्मक चेष्टा है। यह शरीर के हित के लिये ही हो रहा है। अतः एनिमा देकर उस दस्त को बार-बार होने के कष्ट से बचाया जा सकता है। इसी प्रकार किसी के नाक से बलगम आती है उसे नजला कहते है, तो शरीर मे बलगम बढ़ने पर ही प्रकृति उसे नाक के जरिये बाहर निकाल रही होती है। उसे हमने जुकाम का नाम दे दिया, समझने हेतु यह जुकाम शरीर के हित में प्रकृति की चेष्टा है, हमें जुकाम की सहायता करनी चाहिये। जल नेति नमक को पानी से करने से लाभ होता है तथा कफ रहित भोजन (सब्जी, फल) लेने से भी जुकाम ठीक हो जाता है। श्लेष्मा युक्त आहार, दूध और लेंसदार अन्न होते है, उन्हे बन्द करके हरी सब्जी और फल लेने से श्लेष्मा को बढने से नाक से जो स्राव हो रहा है वह बन्द हो जाता है। यह

प्राकृतिक चिकित्सा की विधि है शरीर मे रोग स्वयं उपचार करने की प्राकृतिक विद्या है रोग नाम हमने अपनी सुविधा के लिये दिया है वैसे शरीर मे जमा हुआ विकार निकालने की प्रक्रिया ही रोग है, रोग का कार्य विधेयात्मक है इसीलिये रोग शत्रु नही मित्र है।

1.4.4 रोगो का मूल कारण कीटाणु नही होते हैं- रोग कीटाणु, जीवाणु या विषाणुओ से होते है यह सिद्धान्त ऐलोपेथी चिकित्सा में मानते है। कीटाणु उसी शरीर मे पैदा होते है जिसके शरीर मे उनके जीने हेतु वस्तुए होगी अर्थात सडा मल कूडा कचरा होगा, वहीं कीटाणु होगें, जिनके शरीर मे रक्त विकार नही होगा वहां कीटाणुओ को आहार प्राप्त नही होगा। वैसे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान वाले भी शरीर मे रोग की सुरक्षात्मक शक्ति की उपस्थिति से रोग नही होना मानते ही है, वह सुरक्षात्मक व्यवस्था कमजोर होने पर ही किसी बाह्य जगत का कीटाणु शरीर पर अपना प्रभाव उपस्थित कर सकता है। यह शरीर अपने आप मे एक सम्पूर्ण व्यवस्था युक्त लोक है। इस शरीर की तुलना ब्रहमाण्ड से की गई है "यथा पिण्डे तथा ब्रहमाण्डे" यह शरीर अपनी टूट फूट की मरम्मत स्वयं करता है, इसमे वे तमाम व्यवस्थायें, जो एक राष्ट्र में या पूरे ब्रहमाण्ड मे है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने ही कहा है कि शरीर में श्वेत रक्तकण ¼WBC½ कीटाणुओं की ऐसी सेना है, जो किसी भी रोगाणु को शरीर में प्रवेश करते ही उसे आत्मसात कर जाती है। हॉ इन श्वेत रक्ताणुओ की फौज अवश्य ही सबल रहनी चाहिये, श्वेत रक्ताणुओ की फौज की सबलता रक्त में पाये जाने वाले शुद्ध सभी रासायनिक तत्व विद्यमान होना आवश्यक होता है,जो संतुलित आहार शुद्ध वायु, सुर्य की खुली धूप खुला आकाश, उचित व्यायाम, विश्राम संतुलित मन होने से वे शरीर की शक्ति बढाने वाले तत्व बनते बढते कायम रहते है, इसे संक्षेप मे यही कह सकते है की प्राकृतिक जीवन होने से शक्ति प्रबल रहती है,जो रोगो के कीटाणुओ से सुरक्षा प्रदान करती है। इसीलिये रोगो के कारण कीटाणु पनपते है।

1.4.5 प्रकृति स्वयं चिकित्सक है - शरीर का स्वभाविक कार्य है पाचन, पोषण एवं निष्कासन। शरीर की रक्षा हेतु शरीर की पुष्टता हेतु शरीर की घिसावट की पूर्ति हेतु आहार की आवश्यकता होती है। आहार यदि फल, सब्जी, जूस प्राकृतिक रुप मे है तो शरीर उसे पचाने मे कम प्राण शक्ति जिसे जीवनी शक्ति कहते है, खर्च होती है बिल्कुल ताजा फल और सब्जियो मे नाम का एक पदार्थ लाभकारी होता है जो रक्त के कोषाणुओ को संगठित करता एवं उनको संपुष्ट करता है यदि अपक्वाहार या उपवास किया जाय तो जीवन शक्ति बडी तेजी से शरीर कि बिगाड़ को ठीक कर लेती है। इलाज के दो तरीके है एक दवा दारु करना दूसरी प्राकृतिक। एक में रोग दूर करने के लिये विष को दवाओ की भॉति प्रयोग किया जाता है दूसरे में प्राकृतिक पदार्थो और शक्तियों को रोग निवारण के लिये ठीक उपायो की भॉति काम में लाया जाता है। यदि रोग होते ही केवल एनिमा

देकर पेट साफ कर दिया जाय पीने को सादा शुद्ध जल या फलों का रस अथवा शहद पानी पर उपवास करा दिया जाय तो रोग शीघ्र ठीक हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

(क) प्रकृति स्वयं ..... है।

(ख) सभी रोग ..... होते है।

(ग) तीव्र रोग ..... होते है।

(घ) सभी रोगों की चिकित्सा ..... ही होती है।

(ड.) दस्त होना एक ..... चेष्टा है।

1.4.6 चिकित्सा रोग की नही शरीर की - प्राकृतिक चिकित्सा की मान्यता जब शरीर में विकार रोग का कारण है और किसी भी एक अंग मे से वह विकार निकलता है, या एक स्थान पर खडा होकर पीडा देकर अपने अस्तित्व का संकेत देता है गठिया को ही लें एक घुटने मे सूजन के रुप में संकेत है कि ये शरीर यूरिक एसिड इत्यादि विषयो से आच्छादित है और एक धुटने मे ज्यादा प्रभाव दिख रहा है। धीरे-धीरे वह सभी जोडो पर चढ बढ कर प्रभाव दिखाने लगता है तब आप ही बताइये की कहां कहां किस जोड या किस भाग की सूजन कैसे ठीक कर लेंगे जबकि विकार पूरे शरीर मे भरा हुआ है। इसलिये एक अंग का इलाज ना करके पूरे शरीर का इलाज करना होता है। रक्त मे जमा तेजाब अम्ल को संतुलित करना गठिया का इलाज है। जिसे कोई दवा संतुलित नही कर सकती उसके लिये क्षारीय आहार देना तथा कब्ज मलावरोध आदि के कारण आंतो मे जमा मल को एनिमा द्वारा रक्त मे जमा यूरिक एसिड को फलो का रस पिला कर कम करना अधिक पसीना तथा मूत्राअम्ल को निकालना ही गठिया से मुक्ति दिलाना होगा। यह रोगी को इतना बडा भुलावा है कि पीडा शामक दवा जो कुछ घण्टे ही रहकर पीडा का ज्ञान नही होने देती देकर उसे दवा की संज्ञा दे दी जाती है। दवा का अर्थ रोग निवारक व्यवस्था होती है और रोग शरीर में जमा हुए विष जहर या मलसंचय है जिसे प्राकृतिक चिकित्सा अपने सामान्य उपचारो तथा भोजन सुधार से ठीक कर देता है इसलिये किसी एक अंग का इलाज ना करके पूरे शरीर का उपचार किया जाता है बहुत बार ऐसा देखा गया है कि रोगी ने अपना रोग गठिया, दमा, उच्चरक्तचाप या मधुमेह बताकर उपचार शुरु किया परन्तु उसको चर्म रोग भी था उसके पेट मे दर्द भी रहता था, या कहीं पर गॉठ सूजन थी और मुख्य रोग बताकर उसी का इलाज हो रहा था। परन्तु बिना बताये रोग बडे रोग से पहले ठीक हो गये इससे स्पष्ट

हो गया की चिकित्सा शरीर की हुई और बिना किसी विधि से वह रोग भी ठीक हुए जिनके उपचार की चर्चा भी नही की गयी थी। ऐसा बहुत बार हुआ है, उससे साफ पता लगता है कि चिकित्सा रोग की नही बल्कि पूरे शरीर की होती है।

1.4.7 रोग निदान की विशेष आवश्यकता नही - वास्तव में शरीर का इलाज करने से यानि शरीर शुद्धिकरण करने मात्र से ही रोग ठीक होने लगते है इसलिये निदान होने से ही उपचार होगा ऐसी कोई अनिवार्य शर्त इस उपचार मे नही है। पाकृतिक चिकित्सा में लक्षणो के आधार पर उपचार हो जाता है। रोग का सही सही निदान आज ऐलोपैथिक चिकित्सा विज्ञान की आधुनिकतम जॉच प्रणाली को ना करना कौन स्वीकार करेगा। जिन लोगो को रोग हुआ है उस बात की जानकारी नही है जो रोग के कारणो से सर्वथा अनभिज्ञ है तथा स्वयं कुछ करने की फुरसत नही है या करना नही चाहते वह डॉक्टरों पर सब कुछ छोड देते है और डॉक्टर की दवा के लिये उनके यहां सही सही निदान होना अनिवार्य है। अलग-अलग रोग की अलग-अलग दवा होती है जब तक रोग का ठीक-ठीक निवारण नही होता तब तक दवा दी ही कैसे जायेगी। इसीलिये उनके यहाँ किसी भी रोगी के डायग्नोसिस अर्थात निदान मे महीने लगाते है। कभी-कभी तो उनका रक्त या मॉस का कोई टुकडा अथवा शरीर का कोई स्राव पदार्थ अमेरिका, जर्मनी, जापान निदान हेतु भेजना पडता है और ऐसे निदान के चक्कर में ही रोगी स्वर्ग सिधार लेता है। डाक्टरों को भी मशीन ही बतायेगी, यहॉ की मशीन बताये या अमेरिका की मशीन बताये बात तो एक ही है। प्राकृतिक चिकित्सा मे यह विवाद नही है क्योकि उपचार तो शरीर का होता है और रोग का कारण शरीर में जमा विकार है विकार मिलते ही रोगी को उपचार मिलना प्रारम्भ हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा मे रोगी की मन की सन्तुष्टि हेतु निदान कर लिया जाता है परन्तु आवश्यक प्रतीत नही होता है। ऐसे बहुत सारे उदाहरण दिये जा सकते है कि रोग का नही मालूम और शरीर के शुद्धिकरण अर्थात एनिमा से मल शुद्धि, ऑत शुद्धि आहार द्वारा रक्त की शुद्धि, विचारो द्वारा मन की शुद्धि करने के उपरान्त शरीर के रक्त को वायु एवं तन्तुए स्वयं रचनात्मक सृजन में लग जाते है। अतः रोगी को अनेक प्रकार की मशीनो के समक्ष ले जाकर रोग का निदान करना रोग बढाना ही है।

1.4.8 जीर्ण रोगो को आरोग्य में कुछ समय अधिक लगता है - प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में लोगो मे एक भारी भ्रम है कि यह इलाज का समय बहुत लेता है। इसका अर्थ है दूसरे इलाज मे आराम जल्दी मिलता है यह बातें अनेक के मुंह से हम भी सुनते है। प्राकृतिक चिकित्सा मे रोगी प्रारम्भ मे नही आता है प्रायः तमाम इलाजो के तरीको से जब उसकी निराशा की अवस्था आती है वह तब प्राकृतिक चिकित्सा की शरण लेता है किसी किसी रोग से वह 30-40 वर्ष रोगी होता है और लगातार वर्षो से दवा चलती ही रही फिर भी रोग नही गया बल्कि रोग का शरीर मे विस्तार ही हुआ होता है। उदाहरणार्थ किसी एक उँगली या घुटने मे दर्द शुरु हुआ था 40 वर्ष पूर्व तबसे दवा

चलती रही दवा से दर्द मे आराम हो जाता है क्योकि वह दवा पेनकिलर अर्थात दर्दशामक थी और संवेदनशील नाडियों को दर्द की सूचना न देने की स्थिति मे पहुचाने की क्षमता उसमें होती थी, इस प्रकार दर्द वही रहता और दर्द का कारण तमाम शरीर मे विजातीय द्रव के रुप में वर्तमान रहता था। रोगी डॉक्टरो अस्पतालो तथा अन्यत्र खाक छानता फिरता कि कोई दर्द मिटा दे दवा से क्षणिक (1,2,4,6,8,10) घण्टा आराम मिल जाता और वह दर्द वर्षो से चलता रहता है और कैसे भी शरीर रुपी गाडी भी चलती रहती है। यदि बीच मे कभी कोई प्राकृतिक चिकित्सक मिला तो भी उसके द्वारा बताया गया संयम इतना कठिन लगा की उसे स्वीकार नही किया गया। शरीर मे भले ही रोग का विस्तार होता रहा किन्तु दवा के द्वारा क्षणिक आराम के सहारे, दर्दशामक के सहारे की लम्बी अवधि पार कर ली गयी। प्राकृतिक चिकित्सा मे जब उपचार शुरु करते है तो दवाईयों को घीरे-घीरे कम करके छुडाना ही होता है, और कई वर्षो में रोगी उतना अधिक आदि हो चुका होता है कि दवा छोडते ही दर्द वेदना असहाय होती है। पाठकों ध्यान रहे - रोग का कारण विजातीय दृव्य का शरीर में जमा हो जाना है,

1.4.9 प्राकृतिक चिकित्सा में उभार की सम्भावना होती है- प्राकृतिक चिकित्सा में रोग शरीर मे मल भार जमा होने का प्रतीक है और शरीर उसे जब बाहर निकालता है उसके नाम अलग-अलग दिये गये है। विकार भी अलग-अलग किस्म के है और शरीर के विभिन्न अंगो द्वारा जहाँ भी अंगो की कमजोरी है वही से निकलते है। इन विकारो निकलने से रोकना या इनके निकलने से होने वाली वेदना शमन किसी दवा के द्वारा की गयी होती है। विकार अन्दर ही दबा हुआ उसी रुप पडा रहता है। दवाईयॉ शरीर को इतना बेदम करती है कि वह विकार शरीर मे रुकने पर अन्य दूसरे रुप में भी निकलने का संकेत करता है परन्तु अज्ञानी मानव उसे नया रोग समझ उसके लिये फिर और कोई दवा जहर देकर दवा देते है। यह क्रम जीवन भर चलता ही रहता है इसी क्रम में एक रोग दबाया, दूसरा पैदा हुआ, उसे दबाया तीसरा पैदा हुआ उसे दबाते-दबाते चौथा, पॉचवा, छठा रोग ही रोग हो जाते है।

1.4.10 शरीर, मन, आत्मा का इलाज है प्राकृतिक चिकित्सा - आमतौर से रोगी अपनी शारीरिक पीड़ा से दुःखी होकर ही चाहे किसी पद्धति में चिकित्सा के लिये भागता है, उसको ज्ञान ही नही है कि स्वास्थ्य किसे कहते है? उसको तो इतना ही मालूम है की उसे भूख नही लगती है तो भूख लग जाए बस और कुछ नही चाहिये। खुजली हो रही है तो खुजली मिट जाय इसलिये कोई पाचक खाता फिरता या मलहम लगाकर खुजली ठीक कर लेता था। किन्तु बहुत दवा लगाने पर भी ठीक नही हुआ तो आ गया प्राकृतिक चिकित्सा में और उसको भूख भी लग गयी और खुजली भी ठीक हो गयी, शरीर स्तर पर अवश्य ही ठीक हो गया लगता है रोगी भी मानता है मै ठीक हूँ फिर क्या चाहिये, चिकित्सक को पैसा रोगी से मिला और रोगी को पीढा शमन से संतोष मिला यह दोनो काम

प्राकृतिक चिकित्सा में आने से पहले भी चल रहे थे। दूसरी पद्धति दवा मे भी ये दोनो बातें चल रही थी किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में यह विशेषता होनी चाहिये वह रोगी का मन और आत्मा दोनो बदलने का इलाज साथ-साथ देते रहे, अस्तु सुबह शाम प्रार्थना और मन की शुद्धता पवित्रता के लिय दैवी गुणो को अपने भीतर धारण करने की क्षमता निर्माण करना रोगी को अवश्य बताया जाय, शरीर शुद्ध तो मन भी शुद्ध शरीर स्वस्थ तो मन भी स्वस्थ कहा भी गया है। ''स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मन होता है, कोई भी व्यक्ति अगर मानसिक रुप से स्वस्थ है तो वह कभी कोई भूल या निम्न स्तर का कार्य नही करेगा स्वस्थ मनुष्य को हमेशा उन्नत मार्ग पर या सन्मार्ग की ओर ही ले जाने वाला है ऐसे सन्मार्गो में चलकर की आत्मा भी परम पवित्र एवं महान हो जाती है इसलिये प्राकृतिक चिकित्सा कराने वाले रोगी को सच्चा प्राकृतिक चिकित्सक रोगी से निरोगी और निरोगी से देवात्मा भी बना देता है, ऐसे अनेक उदाहरण सामने है। अस्तु प्राकृतिक चिकित्सा शरीर मन आत्मा तीनो की चिकित्सा करती है। पाठकों प्रस्तुत ईकाई को पढने के बाद हम संक्षेप में कह सकते है।

- शरीर अपने आप ठीक होता है।
- रोग का कारण नाडी मण्डल की थकान है।
- विजातीय द्रव्य का शरीर में रुकना ही बीमारी है।
- तीव्र रोग उपचारीय प्रयास है।
- रोग के कीटाणु रोग पैदा नही करते बल्कि वे रोगावस्था मे पाये जाते है।
- बाह्य उपचार चाहे किसी भी पद्धति के हो केवल आराम देते है न कि रोग निवारण करते है।
- भोजन शरीर बनाने वाला है जीवन शक्ति बढाने वाला नही।
- उपवास किसी बीमारी को ठीक नही करता परन्तु उससे सारा शरीर ठीक होता है।
- व्यायाम शरीर के पोषण और सफाई में संतुलन रखता है।
- प्राकृतिक चिकित्सा में रोगी की खुद की इच्छा ठीक होने का विश्वास और पक्का इरादा होना।

(2) बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर में संचित मल कहलाता है-

(अ) शुगर

(ब) वसा

(स) विजातीय द्रव्य

(द) पोषक द्रव्य

(ख) आयुर्वेद रोगों का कारण मानता है-

(अ) मल संचय

(ब) परिश्रम

(स) थकान

(द) आहार

(ग) शरीर में रोग का आक्रमण होता है-

(अ) विजातीय द्रव्य एकत्र होने से

(ब) जीवनी शक्ति कम होने से

(स) सुरक्षात्मक व्यवस्था कमजोर होने से

(द) सभी

(घ) श्वेत रक्त कणों की संख्या बढ़ती है-

(अ) संतुलित आहार से

(ब) शुद्ध वायु से

(स) उचित व्यायाम से

(द) सभी से

(ड.) शरीर में किस तत्व का रूकना बीमारी है-

(अ) पोषक पदार्थ

(ब) विजातीय पदार्थ

(स) आयोडीन

(द) आयरन

(च) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार सम्पूर्ण शरीर को ठीक करने का साधन है-

(अ) उपवास

(ब) आहार

(स) जल

(द) अग्नि

(छ) प्राकृतिक चिकित्सा में किस चिकित्सा पर बल दिया जाता है-

(अ) शरीर की चिकित्सा

(ब) मन की चिकित्सा

(स) आत्मा की चिकित्सा

(द) तीनों की चिकित्सा

(ज) जीर्ण रोग का कारण है-

(अ) विजातीय पदार्थो की अधिक मात्रा

(ब) असंयमित आहार विहार

(स) दवाईयों का अधिक सेवन

(द) उपरोक्त सभी

(झ) निदान का अर्थ है-

(अ) रोग को ठीक करना

(ब) रोग की जाँच करना

(स) रोग पर नियंत्रण करना

(द) रोग को दबाना

(3) सत्य/असत्य बताइए

(क) प्राकृतिक चिकित्सा बहुत धीरे-धीरे अपना कार्य करती है।

(ख) रोगी को रोग की जाँच (निदान) अवश्य करानी चाहिए।

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा में रोग विशेष को ठीक किया जाता है।

(घ) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोग का मूल कारण विजातीय पदार्थ (गन्दगियां) है।

(ड.) दवाई द्वारा रोग को दबाने के कारण दवा की संज्ञा दी जाती है।

2.4 सारांश-

जिज्ञासु पाठकों प्रस्तुत इकाई में आपने प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों के विषय में अध्ययन किया तथा जाना कि प्राकृतिक चिकित्सा का सबसे मूल सिद्धान्त विजातीय विष सिद्धान्त है। जिसमें सभी रोगों का मूल कारण विजातीय विष को माना गया है। यह प्राकृतिक चिकित्सा का मूल सिद्धान्त भी रहा है कि सभी रोग एक है जिनका कारण विजातीय विष का शरीर में एकत्र होना है तथा इन सभी रोगों का उपचार शरीर में स्थित इस विजातीय विष को बाहर निकालना है। यह विष शरीर में रहकर शरीर की विभिन्न क्रियाओं में बाधा उत्पन्न करता है जिससे शरीर के कार्यो में बाधा उत्पन्न होती है जबकि शरीर से इस विजातीय विष का बाहर निकालना ही सभी रोगों का उपचार है अर्थात इसको बाहर निकलते ही शरीर के सभी कार्य एवं क्रियाएं सामान्य रूप से ठीक हो जाती है तथा शरीर स्वस्थ हो जाता है। पाठकों इस प्रकार आपने जाना कि सभी रोग एक, उनका कारण एक तथा उनका उपचार भी एक ही है। इस पद्धति में किसी प्रकार की दवाईयों का भी प्रयोग पूर्णतया वर्जित किया गया है क्योंकि दवाईयों का कार्य रोग को दबाना होता है जबकि यहां पर रोग को दबाने के स्थान पर उसे शरीर से निकालने पर बल दिया जाता है। स्मरण रहे कि जो रोग जल्दी आते और जल्दी जाते (तीव्र रोग) है वो शरीर की सफाई करते है अतः ये हमारे लिए लाभदायक होते है। रोगों का मूल कारण कीटाणु और जीवाणु ना होकर विजातीय विष (गन्दगियां) होती है क्योंकि इन विषों पर ही ये कीटाणु जीवित रह सकते है। शरीर अपनी चिकित्सा स्वयं करता है तथा शरीर में रोग आने पर चिकित्सा रोग विशेष की ना करते हुए शरीर की चिकित्सा करने से सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग की जाँच पर विशेष बल नहीं दिया जाता क्योंकि रोगी व्यक्ति के शरीर में विजातीय विषों की उपस्थिति निश्चित है इसमें किसी जाँच की आवश्यकता ही नहीं है परन्तु जीर्ण रोग (जिसमें शरीर में अत्यधिक मात्रा में विजातीय पदार्थ भरे होते है) को ठीक होने में कुछ अधिक समय लगता है। साथ ही साथ चिकित्सा काल में कुछ उभार अवश्य आते है जिसमें शरीर में स्थित पुरानी गन्दगियां बाहर निकलती है।

दूसरी चिकित्सा पद्धतियाँ जहां केवल शरीर को मुख्य मानते हुए केवल शरीर की चिकित्सा को अपना उद्देश्य मानती है वही प्राकृतिक चिकित्सा शरीर के साथ-साथ मन और आत्मा को भी ध्यान में रखते हुए शरीर मन और आत्मा इन तीनों की चिकित्सा एक साथ करने के निर्देश देती है। उपरोक्त सिद्धान्तों का विधिवत ज्ञान प्राप्त कर ही चिकित्सक चिकित्सा कार्य भली प्रकार से करता है।

2.5 शब्दावली

मूल सिद्धान्त - मुख्य सिद्धान्त

तीव्र - रोग जो रोग तेजी से आता तथा तेजी से जाता है

जीर्ण रोग - जो रोग धीरे-धीरे आता तथा शरीर में ही रूक जाता है

विजातीय रोग - शरीर हेतु हानिकारक उर्त्सजी पदार्थ

रोग निदान - रोग की जाँच

उभार - चिकित्सा काल में उत्पन्न तीव्र रोग

एकरूपता - एक जैसा समान

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) (क) चिकित्सक (ख) एक (ग) मित्र

(घ) एक (ड.) रचनात्मक

(2) (क) स (ख) अ (ग) द

(घ) द (ड.) ब (च) अ

(छ) द (ज) द (झ) ब

(3) (क) असत्य (ख) असत्य (ग) असत्य

(घ) सत्य (ड.) सत्य

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन करें।
2. सभी रोग एक कारण एक तथा उपचार भी एक है समझाइये।
3. तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र होते है इस सिद्धान्त को व्याख्या करें।
4. प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर, मन, आत्मा तीनों की ही चिकित्सा क्यों की जाती है।

इकाई – 3 प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सकों का परिचय

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 प्राकृतिक चिकित्सकों का परिचय

3.3.1 पश्चिमी चिकित्सकों का परिचय

3.3.2 भारतीय चिकित्सकों का परिचय

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना-

आपने पिछले अध्याय में पढ़ा कि प्राकृतिक चिकित्सा, चिकित्सा पद्धति ना होते हुए एक जीवन शैली का नाम है जिसमें प्राकृतिक आहार, प्राकृतिक विहार, प्राकृतिक जीवन शैली एवं प्राकृतिक सोच विचार का वर्णन आता है। चूँकि इस पद्धति का सम्बन्ध स्वयं प्रकृति के साथ है अतः इसका आरम्भ प्रकृति के साथ ही माना जाता है। वेद जो सृष्टि के आदि ग्रन्थ माने जाते है इनमें इस चिकित्सा पद्धति का वर्णन प्राप्त होता है।

वैदिक काल में यह पद्धति भारत वर्ष के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व में फैली थी किन्तु जैसे-जैसे कालचक्र आगे को बढ़ा वैसे-वैसे व्यक्ति प्राकृतिक जीवन शैली को छोड़कर अप्राकृतिक जीवन शैली के साथ जुड़ता चला गया तथा इस प्राकृतिक चिकित्सा का स्थान दवाइयों तथा रासायनिक पदार्थो ने ले लिया तथा आगे चलकर औषधियों तथा औषधि चिकित्सकों का जोर बढ़ता गया प्राकृतिक चिकित्सा को लोग भूलते गये। आधुनिक औषधियां, (विशेषकर विषैली औषधियां) रोगों का तत्काल दबा देने वाला अपनी प्रक्रिया का प्रभाव जनता के सामने प्रकट करने लगीं तो अंजान जनता धोखे में आकर रोग के उस चमत्कारिक, तात्कालिक एवं क्षणिक शमन को ही पूर्ण रूपेण

समझने लगी, और समझने लगी कि औषधि चिकित्सा ही जो तुरन्त लाभ पहुँचा देती है, उत्तम चिकित्सा है। उसको क्या पता कि औषधियों से रोग अच्छे नहीं होते, केवल दब भर जाते हैं जो रोगावस्था से भी भयानक अवस्था होती है। साधारण जनता का यही मिथ्या विश्वास औषधि चिकित्सा के प्रचार में विशेष सहायक बना।

औषधि-चिकित्सा में जहां अनेक अवगुण हैं वहाँ एक अवगुण यह भी है कि दवा-लेते-लेते मनुष्य दवा लेने का आदि सा हो जाता है और तब उसकी जीवनी शक्ति इतनी बलहीन हो जाती है कि वह प्राकृतिक चिकित्सा के सजीव नियमों को बर्दाश्त करने में अपने को अक्षम समझने लगता है और उनसे घबड़ाता है। इस जनता का, दवाइयों का आदी बन जाना, प्राकृतिक चिकित्सा के ह्रास का प्रमुख कारण बना।

उपर्युक्त कारणों इनके अतिरिक्त अन्य और भी छोटे-छोटे अनेक कारणों से औषधि प्रचार काल में प्राकृतिक चिकित्सा-रीति को जनता उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगी, साथ ही औषधि चिकित्सा समुदाय, विशेषकर एलोपैथिक चिकित्सा वाले, प्राकृतिक की जड़ खोदने के लिए और उसकी जगह अपनी जड़ जमाने के लिए सभी उचित और अनुचित कार्यवाहियों से काम लेने लगे। फलतः दवाइयों का प्रचार दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता गया और प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली दिन-दिन अवनति के अंधकार में विलीन होते-होते एकदम लुप्त ही हो गयी, परन्तु इस अवस्था में संसार के कुछ विशिष्ट चिकित्सकों, विचारकों, चिन्तकों एवं दार्शनिकों ने इस चिकित्सा पद्धति को स्वयं अपनाकर इसके विकास में अपना योगदान दिया। प्रस्तुत इकाई में हम उन चिकित्सकों का अध्ययन करेंगे जिन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

3.2 उद्देश्य

प्राकृतिक चिकित्सकों के जीवन दर्शन का प्रस्तुत इकाई में आप अध्ययन करेगे।

प्राकृतिक चिकित्सा विभिन्न चिकित्सकों द्वारा रचित पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्राकृतिक चिकित्सा के पश्चिमी चिकित्सकों के विषय में जान सकेंगे।

प्राकृतिक चिकित्सा भारतीय चिकित्सकों के विषय में जान सकेंगे।

3.3 प्राकृतिक चिकित्सकों का परिचय -

प्राकृतिक चिकित्सा की प्राचीनता व इस के सिद्धान्तो से आप अभी तक समझ गये होगे। जिज्ञासु पाठको, आम नागरिको को अक्सर निम्न प्रश्नो के उत्तर जानने की उत्सुकता रहती है –

क्या पश्चिमी देशो में कोई प्राकृतिक चिकित्सक रहे है?
भारत में कौन-कौन से प्राकृतिक चिकित्सक रहे है?
प्राकृतिक चिकित्सको का प्राकृतिक चिकित्सा के विकास में क्या योगदान रहा है?
प्राकृतिक चिकित्सको ने कौन-कौन ली पुस्तके लिखी?
प्राकृतिक चिकित्सको का प्राकृतिक चिकित्सा से जुडने का क्या कारण था?
आगामी पृष्ठो का अध्ययन कर लेने के बाद आपको निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नो का उत्तर मिल जायेगा।

प्राकृतिक चिकित्सा के विकास में निम्न पश्चिमी तथा भारतीय चिकित्सको का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिनका परिचय इस प्रकार है।

3.3.1 पश्चिमी चिकित्सकों का परिचय-

(1)जेम्स क्यूरी और सर जान फलायर- डॉ0 फलायर इंग्लैण्ड के लिचफील्ड नगर के निवासी थे। लिचफील्ड के एक सोते के पानी में कुछ किसानों को नहाकर स्वास्थ्य लाभ करते देख उन्हें जल के स्वास्थवर्द्धक प्रभाव के सम्बन्ध में अधिकाधिक जाँच पड़ताल करने की प्रबल इच्छा हुई।

(2)डॉ0 जेक्स क्यूरी लिवर पुल के रहने वाले थे। सन् 1717 ई0 को लगभग इन्होंने एक जल चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तक लिखकर प्रकाशित करवाई थी।

(3)विनसेंज-प्रिस्निज- जर्मनी के सिलेसियन पहाड़ की तलहटी में स्थित एक गांव के साधारण से गृहस्थ घर में सन् 1752 ई0 में प्रिस्निज का जन्म हुआ। कुछ बड़ा होने पर उनको अन्य किसान बालकों की भांति चरवाहे का काम मिला, एक दिन अपनी गायों को जंगल में चरा रहे इस बालक ने एक लंगड़ाती हुई हिरनी को देखा जो झरने के पास पहुँच लगभग आधा घंटा पानी में खड़ी रहने के बाद चली गई। बालक के मन में जिज्ञासा हुई कि आखिर हिरनी पानी में क्यो खड़ी हुई। अतः यह बालक दूसरे दिन भी वहीं जाकर गायें चराने लगा। निश्चित समय बाद हिरणी फिर आयी और आधे घंटे खड़े रहने के बाद चली गयी। हिरणी का पानी में खड़ने रहने का यह क्रम 3 सप्ताह तक चला। प्रिस्निज बराबर उसकी गतिविधि नोट करते रहे। उन्होंने देखा कि इस क्रम में हिरणी का लंगड़ाना क्रमशः कम होते गया और अंत में वह पूर्ण ठीक हो गई तथा फिर न आई। 8 वर्ष के प्रिस्निज के हृदय पर इसका गहरा प्रभाव हुआ।

इस घटना के 8 वर्ष बाद एक दिन जंगल से लकड़ी काटकर लौटते समय तेज आंधी और ओलों की बौछार के कारण इन्हें एक छप्पर के नीचे रूकना पड़ा परन्तु आंधी के वेग को सहन न कर सकने के कारण वह छप्पर गिर गया और प्रिस्निज उसके नीचे दब गये जिससे उनकी चार पसलियां टूट गयीं। छप्पर के नीचे पड़े-पड़े ही 8 वर्ष पूर्व घटित हिरणी की घटना उन्हें याद आ गयी और उन्होंने मन ही मन अपना उपचार जल से करने की प्रतिज्ञा कर ली। सूती कपड़े की गद्दियों को गीली कर अपनी पसलियों पर रखने लगे। क्रमशः दर्द कम होते-होते कुछ ही दिनों में वे पूर्ण स्वस्थ हो गये।

इस प्रकार एक ग्रामीण अनपढ़ बालक ने जल चिकित्सा के चमत्कार समीपवर्ती लोगों पर भी करने प्रारम्भ कर दिये तथा 28 वर्ष की आयु में अपने घर पर ही एक चिकित्सालय की स्थापना कर दी। सैंकड़ों की तादात में रोगी उनके पास आते और ठीक होकर जाते। बाद में ग्रेफेनवर्ग में एक बड़े चिकित्सालय की स्थापना की जिसमें विश्व के कोने-कोने से रोगियों का आना प्रारम्भ हो गया।

3) जोहान्स स्क्राथ- प्रिस्निज के समकालीन तथा उनके घर से कुछ ही मील की दूरी पर इनका भी जन्म हुआ। चेकोस्लाविया में कोच-वानी करते हुए एक दुर्घटना में इनका घुटना बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया। सब तरह के उपचारों से निराश हो चुके तथा लगड़ापन को नियति मान लेने वाले स्क्राथ को एक साधु ने भीगी ठंडी पट्टी की सलाह दी जिसके परिणाम स्वरूप आप कुछ ही सप्ताह में पूर्ण स्वस्थ हो गये। यही प्रयोग प्रारंभ में इन्होंने कुत्ते, बिल्ली आदि के चोट लगने पर किया और आशातीत सफलता प्राप्त की। सिद्धता होने के बाद रोगी मनुष्यों पर आप धड़ल्ले से प्रयोग करने लगे। प्रिस्निज की तरह ख्याति बढ़ने पर औषधि चिकित्सकों ने इनकी भी खूब निन्दा की। लगभग 20 वर्षों तक इन्हें परेशान किया और अन्ततः जाल रचकर जेल भिजवा दिया। जेल से निकलने के बाद एक घटना ने इनके जीवन की काया पलट के रख दी। सन् 1946 ई0 में वर्टेम्वर्ग को डयूक लड़ाई में बुरी तरह घायल हुआ और लगातार तीन महीने तक सभी प्रसिद्ध चिकित्सकों के उपचार में रहा परन्तु किसी प्रकार का लाभ न हुआ जीवन से निराश डयूक को अचानक स्क्राथ को दिखाने का ख्याल आया, स्क्राथ के उपचार से कुछ ही दिनों में वह स्वस्थ हो गया। अब तो शत्रुओं का कहीं पता ही ना था, आस्ट्रियन फौज में स्क्राथ की ख्याति फैल गई और लिण्डविज स्थित इनके सेनोटोरियम में रोगियों की भीड़ लगने लगी। इनकी चिकित्सा पद्धति स्क्राथ चिकित्सा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

(4) फादर सेबस्टियन नीप - जोहान्स स्क्राथ के समकालीन प्रसिद्ध पादरी प्रकृति उपासक फादर नीप ने जल चिकित्सा पर अनेक प्रयोग व आविष्कार किये। बबेरिया निवासी फादर नीप

जल चिकित्सा के पक्षधर थे। आपने एक स्वास्थ्य गृह का संचालन 45 वर्षों तक बड़ी ही कुशलता से किया और अनेक लोगों को प्रशिक्षित किया। आज भी आपके नाम पर जर्मनी में एक नील स्टोर्स भी हैं। जहाँ पर जुड़ी बूटियों, तेल, साबुन तथा स्नान सम्बन्धी सभी आवश्यक वस्तुएं तथा सभी प्रकार के स्वास्थ्यप्रद प्राकृतिक भोजनों का प्रदर्शन किया जाता है। इनकी मृत्यु सन् 1867 ई0 में हुई इनकी जल चिकित्सा पर अति उत्तम पुस्तक My water cure है, जिसका हिन्दी रूपान्तरण जल चिकित्सा के नाम से आरोग्य मंदिर गोरखपुर प्रचार प्रसार व प्रशिक्षण के लिए समर्पित कर दिया। वे प्रकृति निकेतन विद्यापीठ, पश्चिम बंगाल में प्राकृतिक चिकित्सा के चार वर्षीय कालेज के प्रिसींपल एवं मुख्य चिकित्सक रहे करीब 90 वर्ष की आयु तक सक्रिय रहकर न केवल प्राकृतिक चिकित्सा करते रहे बल्कि एक मासिक पत्रिका प्रकृति-वाणी का सम्पादन भी करते रहे तथा अंग्रेजी एवं हिन्दी में लगभग 40 पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन भी किया। वे केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद के सदस्य भी रहें।

(5) आर्नल्ड रिकली- ये एक व्यापारी थे परन्तु जब इन्होनें प्राकृतिक चिकित्सा के गुणों को देखा और सुना तो मुग्ध हो व्यापार छोड़कर इसमें कूद गये और प्राकृतिक चिकित्सा में एक अध्याय वायु चिकित्सा एवं धूप चिकित्सा का जोड़ दिया।आस्ट्रिया के क्रेन प्रान्त के अन्तर्गत टेल्डास नामक स्थान पर सन् 1848 ई0 में धूप और वायु का एक सेनेटोरियम स्थापित किया जो संसार के सर्वप्रथम अपने ढंग का प्राकृतिक चिकित्सा भवन था। बाद में लगभग सभी प्राकृतिक चिकित्सकों ने इसी आधार पर चिकित्सा गृहों का निर्माण कराया।

(6) लूई-कूने- प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली, विशेषकर जल-चिकित्सा को पुनर्विकास देने तथा उसको वर्तमान उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का श्रेय प्रिस्निज, नीप और कूने तीनों को है किन्तु वस्तुतः इन तीनों में कुने प्राकृतिक चिकित्सा के सबसे बड़े आचार्य माने जाते हैं। यहाँ तक कि प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का दूसरा नाम कूने के नाम पर ही कूने की चिकित्सा प्रणाली ¼Lawis Kunae System of Healing) पड़ गया है, कूने की लिखी जर्मन भाषा में अनेक पुस्तकों में The New Science of Healing और The Science of Facial expression संसार में प्रसिद्ध है। इनका जन्म जर्मनी अन्तर्गत लिपजिग नगर में एक जुलाहे के घर हुआ था। इनके माता-पिता की मृत्यु औषधि चिकित्सकों के हाथ हुई थी। 20 वर्ष की उम्र में इन्हें मस्तिष्क, फेफड़ों तथा पेट के फोड़े के असहाय रोग हुऐ थे। जब ये रोग

औषध चिकित्सा द्वारा ठीक न हुये तो ऊबकर सन् 1864 ई0 के लगभग इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली। जिससे धीरे-धीरे यह पूर्ण स्वस्थ हो गये। परिणामतः यह प्राकृतिक चिकित्सा के पूर्ण रूप से भक्त बन गये और 10 अक्टूबर सन् 1883 ई0 को पर निज का एक स्वास्थ्य ग्रह खोल दिया जिससे इनकी ख्याति कुशल जल चिकित्सक के रूप में फैलने लगी।

(7) एडोल्फ जस्ट - प्राकृतिक चिकित्सा पर संसार प्रसिद्ध पुस्तक Return to nature के लिखने वाले जर्मन प्राकृतिक चिकित्सक एडोल्फ जस्ट साधारण मिट्टी के प्रयोग द्वारा समस्त रोगों को दूर किया करते थे।

(8) हेनरी- लिण्डल्हार - पहले चोटी के एलोपैथ चिकित्सक रहने के बाद प्राकृतिक चिकित्सा के गुणों एवं ऐलोपैथी के दुष्प्रभावों को देख आपने प्राकृतिक चिकित्सा अपनायी। आपका सिद्धान्त था कि तीव्र रोग अपनी चिकित्सक स्वयं हैं अर्थात प्रत्येक तीव्र रोग प्राकृतिक की रोग निवारक शक्ति का परिचायक हैं इन्होंने अपने नाम से शिकागों एवं एल्महर्रट में दो सेनोटोरियम खोले इनकी Practice of natural Homeopathics विश्व प्रसिद्ध हैं।

(9) बेनिडिकट लुस्ट - यह फादरनीप के प्रिय शिष्यों में एक थे। इनका जन्म मिचैल वर्ग, बैंडेन, जर्मनी में 3 फरवरी 1872 ई0 को हुआ था। फादरनीप ने इन्हें अमेरिका जाकर जल-चिकित्सा का संदेश सुनाने और सारे संसार में उसका प्रचार और प्रसार करने के लिए चुना। अमेरिका में इन्होंने ''नीप-वाटर क्योर'' नामक एक मासिक पत्र निकाला, न्यूयार्क में एक स्कूल तथा कालेज स्थापित किया। बाद में इन्होंने एक और पत्र ''नेचर्स-पाथ'' भी प्रकाशित किया। वह स्कूल अमेरिकन स्कूल आफ नैचुरोपैथी'' तथा वह अस्पताल अब सुप्रसिद्ध यंग बार्न्स अस्पताल के रूप में परिणत हो गया है। इनका एक अस्पताल बटलर न्यूजेरसी में और दूसरा हैजरिन फलोरिडा में है।

(10) अमेरिकन स्कूल आफ नैचुरोपैथी की स्थापना करने के अलावा इन्होंने American School of Chiropractice की स्थापना की। इन दोनों संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करके निकलने वाले चिकित्सकों की संख्या हजारों में है जो संसार के हर कोने में चिकित्सा कर रहे हैं। 5 सितम्बर बुधवार को सन् 1945 ई0 को इनका देहान्त न्यूजेरसी के उसी अस्पताल में हुआ जिसकी इन्होंने 50 वर्ष पूर्व स्थापना की थी।

(11) आर्नल्ड एहरेट - ये जर्मनी के थे परन्तु इनका कार्यक्षेत्र अमेरिका था, अपनी चिकित्सा पद्धतियों तियों पक्तयों में यह फलाहार और उपवास पर बहुत जोर देते थे। इनकी बनाई दो पुस्तकें अधिक प्रसिद्ध हैं, पहली का नाम Rational Fasting है और दूसरे का नाम Muculess Diet Healing System.

(12) जे0एच0 के लाँग - आप एम0डी0 अमेरिका के महान सत्व चिकित्सक आहार एवं शल्य क्रिया के विशेषज्ञ, मालिश क्रिया, धूप चिकित्सा आदि अनेक विषयों पर अनगिनत पुस्तकों के लेखक तथा मिचिंगैन अमेरिका के संसार प्रसिद्ध बैटिल क्रोक सैनोटोरियम के डायरेक्टर हैं, जिनको आज संसार विशेषकर प्राकृतिक चिकित्सा संसार खूब जानता और पहचानता है। आपका जन्म 26 फरवरी सन् 1892 ई0 को अमेरिका में हुआ। आपके अनगिनत चिकित्सा सम्बन्धी अविष्कारों में एक Electrical Hight Bath भी है, जिसका इस्तेमाल संसार के आज सभी बड़े-बड़े अस्पतालों में लाभ के साथ हो रहा है। इनके बैटिल ग्रीक सैनेटोरियम में संसार के प्रचलित लगभग सभी चिकित्सा प्रणालियों जैसे जल चिकित्सा, आहार-चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, स्वीडिश मूवमेन्ट तथा विद्युत चिकित्सा आदि द्वारा रोगों का इलाज होता है। दि न्यू डाईटेटिक्स, रेशनल हाईड्रोथैरपी तथा होम हैड बुक आफ हाईजीन एन्ड मैडिसिन आदि आप की लिखी पुस्तकें बड़ी प्रसिद्ध हैं।

(13) जे0एच0 टिल्डेन- आप अमेरिका में जन्मे, आपके विचार अनुसार उपचार की ठीक विधि यह है कि सर्वप्रथम उन कारणों को ही दूर किया जाये जिन से रोग उत्पन्न होते हैं, तत्पश्चात् रोगी को शिक्षा दी जाये कि इसे स्वस्थ रहने के लिए किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए। डॉ0 टिल्डेन एक महान लेखक तथा एक विचारक भी हैं। इनकी सबसे अधिक प्रसिद्ध पुस्तक Impatired Health लोकप्रिय है। इन्होंने दूसरी अच्छी पुस्तक Food की खोज के साथ लिखी है जो प्राकृतिक आहार सम्बन्धी अद्वितीय पुस्तक है।

3.3.2 भारतीय प्राकृतिक चिकित्सकों का परिचय-

भारत में प्राकृतिक चिकित्सा आधुनिक काल में लुई कुने की प्रसिद्ध पुस्तक New Science of Healing के भारतीय भाषा में अनुवाद के साथ आरंभ हुआ। इस का तेलगु भाषा में श्री डी0 वेंकट चेलापति शर्मा ने वर्ष 1894 में तथा बिजनौर निवासी कृष्ण स्वरूप क्षेत्रिय ने वर्ष 1904 के लगभग हिन्दी तथा उर्दू भाषाओं में अनुवाद किया था। इन पुस्तकों के प्रभाव से कई लोग कूने की चिकित्सा

विधियों में रूचि लेने लगे। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी भी प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी थे। वे एडोल्फ जस्ट की प्रसिद्ध पुस्तक "Return to nature" से बडे प्रभावित थे।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी प्राकृतिक चिकित्सा के गहरे अनुयायी थे। वे स्वयं पर प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग करते थे तथा अपने आश्रमवासियों को भी इसकी शिक्षा देते थे आपने अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए भारत के प्रथम प्राकृतिक चिकित्सा आश्रम की स्थापना की। आपने महाराष्ट्र में उरूली काँचन नामक स्थान पर प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की जो अभी तक निर्वाध गति से चल रहा हैं आपने प्राकृतिक चिकित्सा से सम्बंधी साहित्य की भी रचना की तथा भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के एक नये दौर का सूत्रपात किया। निम्न भारतीय प्राकृतिक चिकित्सको का परिचय आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है -

1. डॉ0 जानकी शरण शर्मा- डॉ0 जानकी शरण शर्मा उत्तर प्रदेश के निवासी थे। इनकी पुस्तक 'रोगों की अचूक चिकित्सा' और 'अचूक चिकित्सा के प्रयोग' प्राकृतिक चिकित्सा की सर्वश्रेष्ठ

   पुस्तकों में से है जिनके भारत के प्रसिद्ध जोडरप्रेस ने कई संस्करण प्रकाशित किये हैं। हिन्दी भाषा प्राकृतिक चिकित्सकों और प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमियों में से शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने डॉ0 जानकीशरण शर्मा की दो दुर्लभ पुस्तकों से मार्ग दर्शन प्राप्त न किया हो। वे एक सफल चिकित्सक भी थे लेकिन अपनी इन पुस्तकों के कारण उनका नाम प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास में सदा अमर रहेगा।
2. डॉ0 कुलरंजन मुखर्जी- बंगाल के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक तथा कलकत्ता की विद्यापीठ के प्राचार्य रहे तथा अनेक लोकप्रिय प्राकृतिक चिकित्सा ग्रन्थों का बंगला, हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में लेखन व प्रकाशन किया।
3. डॉ0 के लक्ष्मण शर्मा- इनका जन्म सम्पादित तमिलनाडु में हुआ। उच्च शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने अपना सारा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा के लिए समर्पित कर दिया। अंग्रेजी भाषा में लिखा प्रेक्टिकल नेचर क्योर'' विशाल ग्रन्थ उनकी अमन कृति है। देश विदेश में उनके सैकड़ों शिष्य प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार में कार्यरत हैं।
4. डॉ0 बालेश्वर प्रसाद सिंह- ये महात्मा गांधी से विशेष प्रेरणा लेकर समर्पित भाव से जीवन पर्यन्त प्राकृतिक चिकित्सा की सेवा करते रहे। उन्होंने भारत के कोने-कोने में प्राकृतिक चिकित्सा के शिविरों का आयोजन कर हजारों लोगों को रोग मुक्त किया तथा अनेक युवकों को प्रशिक्षण देकर सुयोग्य प्राकृतिक चिकित्सक बनाया। जिनमें से हमारे राष्ट्रपिता महात्मा

गांधी भी प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी थे। वह एडोल्फ जस्ट की प्रसिद्ध पुस्तक Return to nature से बड़े प्रभावित हुये

5. डॉ0 वेगिराज कृष्णम राजू- (1910-1957) इन्होंने आन्ध्रपदेश के भीमावरम के सुरभ्य स्थान पर एक विशाल प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की तथा एक आदर्श प्राकृतिक चिकित्सा शिक्षण संस्था का संचालन किया और दक्षिण भारत की भाषाओं में साहित्य भी लिखा है आपके प्रमुख शिष्यों में डॉ0 वी0 वेंकटराव व डॉ0 श्रीमती विजय लक्ष्मी के नाम विशेष उल्लेखनीय है।
6. डॉ0 महावीर प्रसाद पोधार - इन्होंने महात्मा गाँधी से प्रेरणा लेकर प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाया। वे आरोग्य मंदिर गोरखपुर के संस्थापक हैं। इन्होंने लम्बे समय तक प्राकृतिक चिकित्सालय में रहकर हजारों निराश रोगियों को जीवन दान दिया और हिन्दी में प्राकृतिक चिकित्सा की अनेकों किताबें लिखीं।
7. डॉ0 शरण-प्रसाद- आपने अनेक वर्षों तक भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा विद्यापीठ कलकत्ता में प्राचार्य एवं मुख्य चिकित्सक के रूप में कार्य किया इसके पश्चात कई वर्षों तक गांधी जी द्वारा संस्थापित निसर्गोपचार केन्द्र उरूली कांचन के मुख्य चिकित्सक रहे, गुजरात प्रदेश में प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के निदेशक के पद पर आसीन रहे।
8. डॉ0 बिट्ठलदास मोदी- आप भारत विख्यात संस्था आरोग्य मंदिर गोरखपुर के संस्थापक व संचालक हैं तथा प्रसिद्ध आरोग्य मासिक पत्रिका के वरिष्ठ सम्पादक है और अनेक प्राकृतिक चिकित्सा के ग्रन्थों के यशस्वी लेखक थे।
9. डॉ0 एस0 जे0 सिंग- भारत के मूर्धन्य प्राकृतिक चिकित्सकों में डॉ0 एस0जे0 सिंह का विशेष स्थान है वे विदेश से प्राकृतिक चिकित्सा का प्रशिक्षण लेकर आए और सारा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा के लिए अर्पित किया।
10. डॉ0 हीरा लाल- आपने डॉ0 महावीर प्रसाद पोधार, डॉ0 बिट्ठलदास मोदी के साथ आरोग्य मन्दिर गोरखपुर में प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य आरम्भ किया बाद में उत्तर प्रदेश के ग्राम मगरवारा जिला उन्नाव में चिकित्सा तथा प्राकृतिक चिकित्सा प्रकाशन का स्वतंत्र कार्य प्रारम्भ किया।
11. डॉ0 बी0 वेंकेटराव वा डॉ0 श्रीमती विजय लक्ष्मी - आप दोनों ने भीमावरम में डॉ0 कृष्णम राजू से विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त कर हैदराबाद में विशाल प्राकृतिक चिकित्सालय और नेचर

क्योर कॉलेज की स्थापना की और उसे उसमानिया यूनिवर्सिटी से मान्यता दिलाई। जहाँ से एम0बी0बी0एस0 की योग्यता के समकक्ष उपाधि प्राप्त अनेक नवयुवक छात्र-छात्रायें देश विदेश में सफलतापूर्वक प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य कर रहे हैं।

12. डॉ0 एस0 स्वामी-नाथन - आप डॉ0 लक्ष्मण शर्मा के शिष्य रहे, आपकी संस्था पुटकोट्टाई (दक्षिण-भारत) में है। आप 1940 में दिल्ली आये। आपने शिवानन्द सरस्वती आश्रम व प्रणव ब्रह्मनन्द आश्रम, ऋषिकेश से योग वेदान्त की शिक्षा पाई। केन्द्रीय सरकार में उच्च अधिकारी होते हुए भी 1948 से प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार व प्रसार निस्वार्थ भाव से सेवा का उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। आप लाईफ नेचुरल अंग्रेजी मासिक पत्रिका के विशेष सम्पादक भी हैं जिनमें से ख्याति प्राप्त शिष्य महात्मा जगदीश्वरानन्द जी व डॉ0 बिट्ठलदास मोदी जी हैं। आपने ''जीवन सखा'' मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया।

अभ्यास प्रश्न-

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) महात्मा गाँधी ने भारत के प्रथम प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना कहाँ की-

(अ) गुजरात में (पोरबन्दर)

(ब) दिल्ली में (राजघाट)

(स) महाराष्ट्र में (बम्बई)

(द) महाराष्ट्र में (उरूली काँचन)

(ख) औषध चिकित्सा (एलोपैथी) करती है-

(अ) रोग को ठीक करती है

(ब) रोग को बढ़ा देती है

(स) रोग को दबा देती है

(द) रोग को उखाड़ देती है

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा की प्रसिद्ध पुस्तक My water cure के लेखक हैं-

(अ) एडोल्फ जस्ट

(ब) हेनरी लिण्डलहार

(स) फादर नीप

(द) रिकली

(घ) लुई कूने की प्रसिद्ध पुस्तक है-

(अ) My water cure

(ब) The New Science of Healing

(स) Massage thereapy

(द) Return to Nature

(ड.) भारत विख्यात संस्था आरोग्य मन्दिर गोरखपुर के संस्थापक है-

(अ) महात्मा गाँधी

(ब) डा0 विट्ठलदास मोदी

(स) डा0 जानकी शरण शर्मा

(द) स्वामी रामदेव

(2) सत्य/ असत्य बताइए

(क) प्राकृतिक चिकित्सा का उद्गम प्रकृति के साथ हुआ।

(ख) प्राकृतिक चिकित्सा के पुनरूत्थान का श्रेय भारतीय वैज्ञानिकों को जाता है।

(ग) एलोपैथी रोगों को तुरन्त ठीक कर देती है।

(घ) New Science of Healing का हिन्दी में अनुवाद बिजनौर निवासी कृष्ण स्वरूप ने किया।

(ड.) प्राकृतिक चिकित्सा रोगो को चमत्कारिक ढग से दबा देती है।

3.4 सारांश-

प्राकृतिक चिकित्सा का उद्गम भारतवर्ष एवं वेद है तथा इसका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण विश्व रहा अर्थात सम्पूर्ण विश्व में इस चिकित्सा पद्धति ने भिन्न-भिन्न रूपों में अपना विकास किया। पिछली में आपने सर्वप्रथम प्राकृतिक चिकित्सा के उद्गम के विषद में जाना तथा इसके लुप्त होने के मुख्य कारणों का भी ज्ञान प्राप्त किया। यद्यपि यह एक सर्वोत्तम चिकित्सा पद्धति रही किन्तु जब से दवाइयों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ तब से इसका विकास क्रम रूका और इसका लोप होना प्रारम्भ हो गया। औषध चिकित्सा ने रोगों का तुरन्त दबा देने का अपना प्रभाव दिखलाना शुरू किया जिसके परिणामस्वरूप जनसाधारण दवाइयों के साथ जुड़ता चला गया।

किन्तु जब इसकी वास्तविकता का ज्ञान जनसाधारण को हुआ तो उसकी नींद टूटी तथा उसने पुनः प्राकृतिक चिकित्सा का अपनाना शुरू कर दिया। इस वास्तविकता का पता लगाने का श्रेय पश्चिमी चिकित्सकों, विचारकों, दार्शनिकों को गया जिनका जीवन परिचय इस इकाई में आपने पढ़ा। इसके उपरान्त भारत के कुछ विशिष्ट गणमान्य व्यक्तियों, विचारकों, समाजसेवकों एवं चिकित्सकों ने भारतवर्ष में भी इसका प्रचार-प्रसार किया।

प्रिय पाठको धीरे-धीरे यह चिकित्सा पद्धति एक बार पुनः समाज में अपना स्थान बनाने में सफल हुई। तथा इस चिकित्सा का चिकित्सा कार्य एवं शिक्षण कार्य एक बार पुनः तीव्र गति से विकास की ओर बढ़ने लगा।

3.5 शब्दावली

प्रलोभन - लालच

उदगम - उत्पत्ति

सेनोटोरियम - उपचार गृह

उद्गम - शुरूवाद, उत्पत्ति

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1		2.	
(क)	द	(क)	सत्य

(ख)	स	(ख)	असत्य
(ग)	स	(ग)	असत्य
(घ)	ब	(घ)	सत्य
(ड.)	ब	(ड.)	असत्य

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तर प्रदेश।

2. सक्सैना ओम प्रकाश, (2009) सरल प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवासदन, मथुरा।

3. शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली।

4. शर्मा श्रीराम, (1998) जीवेम शरद: शतम्, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा।

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास पर प्रकाश डालिए।

2. भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के विकास क्रम को लिखिए।

3. किन्हीं पांच भारतीय प्राकृतिक चिकित्सकों का जीवन परिचय दीजिए।

इकाई-4 पंचतत्वों का सामान्य परिचय एवं पंचतत्वों का शरीर पर प्रभाव

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 पंचतत्वों का सामान्य परिचय

4.3.1 आकाश तत्व

4.3.2 वायु तत्व

4.3.3 अग्नि तत्व

4.3.4 जल तत्व

4.3.5 पृथ्वी तत्व

4.4 पंचतत्वों का शरीर पर प्रभाव व महत्व

4.4.1 आकाश तत्व का प्रभाव व महत्व

4.4.2 वायु तत्व का प्रभाव व महत्व

4.4.3 अग्नि तत्व का प्रभाव व महत्व

4.4.4 जल तत्व का प्रभाव व महत्व

4.4.5 पृथ्वी

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों इस सृष्टि का निर्माण पंच तत्वों से हुआ। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच तत्व मिलकर सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करते हैं। साथ ही साथ मानव शरीर की रचना भी इन पंच तत्वों के द्वारा ही होती है। शरीर ये पांच तत्व एक निश्चित योग से उपस्थित होते हैं जिसे समयोग कहा जाता है। शरीर में पंच तत्वों का समयोग स्वास्थ्य है जबकि इन तत्वों का योग विषम होने पर शरीर में भिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा इन पंच तत्वों को ही शरीर का आधार मानते हुए इसके महत्व को विशेष रूप से स्थान देती है। यहां पर पृथ्वी तत्व सबसे स्थूल तत्व एवं आकाश तत्व सबसे सूक्ष्म तत्व है।

शरीर में जो कुछ भी हमें स्थूल और भारी दिखाई दे रहा है - त्वचा, मांस, अस्थि, बाल आदि-प्रकृति के पृथ्वी तत्व से बने हैं। शरीर के अन्दर दौड़ते रक्त के तरल बनाए रखने के लिए प्रकृति ने जलीय पदार्थों की व्यवस्था की है। भोजन को पचाने के लिए विभिन्न प्रकार की अग्नियों की व्यवस्था की है। वायु द्वारा पोषण और गति के लिए फेफड़े आदि वायु की व्यवस्था की है और कोशिकाओं से लेकर ऊतक तंत्रों तथा अंगों के अन्दर रिक्त स्थान बनाकर आकाश तत्व की भरपूर व्यवस्था की है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश - प्रकृति से लेकर व्यक्ति-शरीर तक समान रूप से अपना कौशल दिखाते हैं और मनुष्य को प्रकृति के साथ निरन्तर जोड़े रहते हैं, उससे निरंतर पोषण प्राप्त करके शरीर को सभी प्रकार से स्वस्थ और सूक्ष्म बनाने में जुटे रहते हैं। इन तत्वों का समयोग ही स्वास्थ्य कहलाता है। प्रस्तुत इकाई में पंचतत्वो के साथ-साथ इनका शरीर पर पडने वाले प्रभाव का वर्णन किया जा रहा है।

4.2 उद्देश्य -

प्रस्तुत इकाई में आप -

पंच तत्वों के सामान्य परिचय का अध्ययन कर सकेंगे।

आकाश तत्व का अध्ययन कर सकेंगे।

वायु तत्व को समझ सकेंगे।

अग्नि तत्व को जान सकेंगे।

पृथ्वी तत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

आकाश तत्व का शरीर पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

वायु तत्व का शरीर पर पडने वाले प्रभाव को जान सकोंगे।

अग्नि तत्व का शरीर पर पडने वाले प्रभाव को समझ सकोंगे।

जल तत्व का शरीर पर पर पडने वाले प्रभाव को प्रस्तुतीकरण कर सकोंगे।

पृथ्वी तत्व का शरीर पर पडने वाले प्रभाव का विश्लेषण कर सकोंगे।

4.3 पंच तत्वों का सामान्य परिचय

4.3.1 आकाश तत्व -

यदि आकाश तत्व का सृजन ना हुआ होता तो न तो श्वांस ले सकते और न हमारी स्थिति और अस्तित्व होता। शेष (4) चार तत्वों का आधार भी यही है आकाश तत्व ब्रह्माण्ड का भी आधार है। उपवास इस तत्व की प्राप्ति का एक साधन है। वैसे भी प्रतिदिन भूख से कम खाना स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है बीमार पड़ने पर उपवास द्वारा शरीर की जीवन शक्ति को अन्य शारीरिक कार्यो से हटाकर हम अपने शरीर में आकाश तत्व की कमी को पूरा करते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप हम स्वस्थ्य हो जाते हैं। शोक, मोह, काम, क्रोध भय ये सभी आकाश तत्व के कार्य है। शरीर में आकाश तत्व के विशेष स्थान- सिर, कण्ठ, हृदय, उदर और कटि प्रदेश है। मस्तिष्क में स्थित आकाश, वायु का भाग है जो प्राण का मुख्य स्थान है इससे अन्न का पाचन होता है। उदर प्रदेश गत आकाश जल का भाग है इससे सब प्रकार के मल विसर्जन की क्रिया सम्भव होती है। कटि-प्रदेश, आकाश, और पृथ्वी का भाग है। यह अधिक स्थूल होता है तथा गन्ध का आश्रय है। आकाश जैसे हमारे आस-पास और ऊपर नीचे है वैसे ही हमारे भीतर भी है। त्वचा के एक छिद्र में तथा 2 छिद्रों के बीच जहाँ जगह है वहीं आकाश है। इस आकाश की खाली जगह को हमें भरने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। यदि हम अपने दैनिक आहार, जितना चाहिए उतना ही लें और भूख से अधिक न खायें तो शरीर स्वस्थ्य रहेगा इसलिए सप्ताह में 1-2 दिन उपवास करना चाहिए पूरा उपवास न कर पाएं तो एक या अधिक समय का भोजन त्याग दें। इससे भी लाभ मिलेगा हमारी जीवन शक्ति की वृद्धि एवं रोग शोक की निवृत्ति के लिए आकाश तत्व की प्राप्ति, उपवास के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य, संयम, सदाचार, मानसिक अनुशासन एवं संतुलन, विश्राम अथवा शिथिलीकरण, प्रसन्नता, मनोरंजन, तथा गाढ़ी नींद से भी होती है।

4.3.2 वायु तत्व -

वायु तत्व पंच आवश्यक तत्वों में दूसरा तत्व है, जल जीवन है और वायु प्राणियों का प्राण है। एक सामान्य व्यक्ति 1 मिनट में 18-20 बार श्वांस लेता है। एक बार श्वांस लेने से 25-30 घन इंच या एक

दिन में 32-37 पौंड तक वायु की आवश्यकता होती है, श्वांस लेने की प्रत्येक क्रिया का संबंध शरीर की 100 मांसपेशियों से है। प्रतिदिन हम जितना भोजन करते हैं और जल पीते हैं उससे दुगुना श्वांस लेते हैं। जिस प्रकार प्रतिक्षण हम नाक से श्वांस लेते हैं उसी प्रकार हमारी अपनी त्वचा के असंख्य छिद्रों द्वारा श्वांस लेना भी अनिवार्य है। उदा0 के तौर पर जिस प्रकार हम घर को शुद्ध और स्वच्छ रखने के लिए घर की खिड़कियां और झरोखे खोलकर अन्दर ताजी हवा का प्रवेश होना आवश्यक है उसी प्रकार इस शरीर रूपी घर में त्वचा छिद्र में तभी वायु का प्रवेश अनिवार्य है। कपड़ों को सदैव शरीर से लपेटे रहने से शरीर पीला पड़ जाता है और रोम कूप शिथिल पड़ जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप कब्जियत, हृदय रोग, मधुमेह आदि भयानक रोग उत्पन्न होते हैं।

वायु की शुद्धि, सूर्य की किरणों, जल, वृक्ष, ऋतु परिवर्तन तथा प्रभात के कारण होती हे, धूल मिश्रित वायु से आर्द वायु अधिक शुद्ध होती है क्योंकि आर्द वायु में तीन आवश्यक पदार्थ- आक्सीजन, नाईट्रोजन तथा कार्बोनिक एसिड गैस मुख्यतः होती है

वायु स्नान से शरीर की त्वचा स्वस्थ, लचीली एवं कोमल हो जाती है। यह शरीर की बाहरी सफाई है इससे भीतरी सफाई भी होती है जैसे- 1 व्यक्ति 1 मिनट में 18-20 बार श्वांस लेता है इसमें शरीर की 100 मांसपेशियां कार्य करती हैं। एक श्वांस में 25-30 घन इंच वायु भीतर जाती है दिन भर में 16-20 किलो वायु हम भीतर खींचते हैं। यह वायु फेफड़ों के 15 वर्गफीट स्थान में चक्कर लगाती है। इस वायु से आक्सीजन (जलवायु) फेफड़ों द्वारा खिंचकर रक्त में चला जाता है और कार्बन डाई आक्साइड का अंश बाहर निकल जाता है। इस तरह शरीर का रक्त लगातार शुद्ध होता रहता है। फेफड़ों में सदैव 60 क्यूविक इंच वायु भरा रहता है जिसको बाहरी विशुद्ध वायु से सदा बदलते रहना आवश्यक है जो वायु स्नान के बिना संभव नहीं है।

हमारे शरीर पर पाँच प्रकार के प्राण तथा पाँच प्रकार के उपप्राण हैं जो कि शरीर के नैसर्गिक कार्य को सुचारू रूप से चलाते हैं, शरीर का ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ वायु न हो और कोई ऐसा कर्म नहीं है जो बिना वायु की सहायता से सुसम्पन्न हो। कफ, पित्त, रक्त, मल तथा धातु आदि की गति वायु की गति पर निर्भर करती है । जो वायु सारे शरीर में विचरण करती है उसे व्यान कहते हैं। शीतल मन्द वायु रोम कूपों द्वारा शरीर में प्रवेश करती है तथा व्यान वायु को शुद्ध करती है जो कि शरीर में शुद्ध रक्त का संचार करता है। मल मूत्र को निकालने हेतु अपान वायु है। पवन स्नान से समान वायु को इन कार्यो के लिए असाधारण शक्ति मिलती है। इसके अभाव में वायु (अपान) विकृत होकर पेट में रोग उत्पन्न करती है। शरीर में जीवनी शक्ति को बनाये रखने के लिए प्राण वायु आवश्यक है। उदान वायु का कार्य शरीर को गिरने से रोकना एवं मस्तिष्क के संपूर्ण छोटे बड़े अवयवों को रक्त पहुंचाने में सहायता प्रदान करना है।

स्नायु दौर्बल्य, मानसिक रोग, अनिन्द्रा, स्वप्न दोष, सर्दी, खांसी, साधारण यक्षमा, कब्ज, दुबलापन, कमजोरी आदि रोगों में टहलना एक उत्तम औषधि है।व्यायाम तथा प्राणायाम का निरन्तर अभ्यास वायु तत्व की मात्रा को शरीर में बढ़ाता है।

4.3.3 जल तत्व -

आकाश, वायु तथा अग्नि के बाद चौथा स्थान जल तत्व का आता है जल भी शेष तत्वों के समान ही हमारे जीवन में महत्वपूर्ण है। जल को अनेकों नामों से जाना जाता है जैसे- नीर, वारि, अमृत, रस, पेय तथा जीवन आदि जल प्राणियों के जीवन का आधार है। जल जीवन के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना सांस लेने के लिए वायु। सांसारिक जीवन का आरम्भ जल से ही माना जाता है जल के द्वारा ही पालन पोषण सम्भव हो पाता है। जल में सभी पदार्थों को अपने में घोलने के गुण के कारण अन्य शेष तत्वों से भिन्न है।

जल में अन्य भौतिक पदार्थो के संयोग से कसैला, मीठा, तीखा, कडुआ, खट्टा, नमकीन तथा गंदला आदि होने का गुण है। जल के द्वारा अग्नि को नियंत्रित किया जा सकता है जिसके द्वारा रोगों के उपचार में बहुत ही सहायक सिद्ध होता है। हमारे शरीर में 70 प्रतिशत भाग केवल जल है। प्राणियों को रोग मुक्त रखने की औषधि जल ही है। जल के द्वारा रोगों को दूर किया जा सकता है। जल केवल प्राण रक्षा के लिए ही प्रयोग में नहीं आता वरन हमारे दैनिक कार्यों में भी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। जल के द्वारा शरीर ही नहीं वरन किसी भी पदार्थ को स्वच्छ किया जा सकता है। जल तीन प्रकार का होता है। मृदुजल, जो कि स्वास्थ्य के लिए अहितकर होता है। तथा बहती दरिया या वर्षा के जल से प्राप्त होता है। प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा जल का प्रयोग कर जल तत्व को नियंत्रित कर रोग का उपचार किया जाता है। कठोर जल, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम होता है। पीने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसे गहरे कुंओं एवं नल का पानी आदि से प्राप्त किया जाता है। तीसरा है अस्थाई कठोर जल, जो कि स्वास्थ्य के लिए कम हितकर होता है जैसे वर्षा का संग्रहीत जल, भूमि पर एकत्र जल या जल को उबालकर उसकी कठोरता को दूर कर तैयार मृदु जल आदि है।

4.3.4 अग्नि तत्व -

संसार में उपस्थित सभी पदार्थो का निर्माण पंच तत्वों से मिलकर हुआ सभी पदार्थ, जीव, जन्तु आदि सभी कुछ पंच तत्वों द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं जब तक यह पांचों तत्व संतुलित मात्रा में बने रहते हैं तब तक स्थिति सामान्य रहती है परन्तु तत्वों के असन्तुलन के कारण किसी भी पदार्थ की स्थिति सामान्य नहीं रह सकती। सभी तत्व अपनी-अपनी जगह उतने ही महत्वपूर्ण है जितना की दूसरा तत्व एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। जल, पृथ्वी, वायु, आकाश और अग्नि ये पांचों तत्व सभी जगह विराजमान हैं।

अग्नि जो कि पंच तत्वों में तीसरा महत्वपूर्ण तत्व है कि उत्पत्ति सूर्य से होती है। अग्नि तत्व की पूर्ति हमें सूर्य के प्रकाश के द्वारा होती है। यह जल और पृथ्वी की भांति दृश्यमान तत्व है। अग्नि तत्व से ही बाकी के चार तत्व भी तृप्त हो पाते हैं। अग्नि के द्वारा ही संसार के प्राणियों को उर्जा प्राप्त होती है। पुराण में सप्तरश्मियों की सप्त मुखी घोड़े की संज्ञा दी गई है। जब सूर्य की किरण से निकलने वाले सातों रंग एकत्र होते हैं तो वह श्वेत रंग का निर्माण करते हैं जिससे हम सभी वस्तुओं को देखने के योग्य होते हैं। सूर्य से प्रकाश और उर्जा ही प्राप्त नहीं होती बल्कि वह पृथ्वी पर सभी रोगों का नाश करने वाला तथा हमें आरोग्य देकर बुद्धिमान व दीर्घायुष्य भी प्रदान करता है। सूर्य के प्रकाश में इतनी शक्ति होती है कि वह रोग को जन्म देने वाले रोगाणुओं का नाश करता है।

संसार की सभी वस्तुओं व पदार्थो की उत्पत्ति केवल सूर्य के द्वारा ही निश्चित हो पायी है। इसके कारण से ही जगत में तरह-तरह के पदार्थों को उत्पन्न किया जा सकता है। अग्नि तत्व से ही बाकी के चारों तत्व तृप्त होते हैं। संसार के पेड़-पौधे, जड़ी बूटियाँ, औषधियां, फूल, फल, अनाज, समुद्र का जल, सोना, चांदी जस्ता, लोहा, हीरा आदि इसी के कारण उत्पन्न होते हैं। इसी से संसार में सौंदर्य है। जीवन है। प्राणधारियों एवं वनस्पतियों के जीवन का आधार भी सूर्य से प्राप्त होने वाला प्रकाश है। इसी के कारण ही हमारा भोजन पचता है और आगे की क्रियाएं सम्भव हो पाती हैं। अग्नि तत्व की कमी के कारण शरीर का निर्माण असम्भव है। इसकी कमी के कारण शरीर में सुस्ती, सिकुडन, सर्दी की सूजन, वायु जनित पीड़ाएं आदि अनेकों बीमारियां घर कर जाती हैं।

जब कभी किसी कारणवश पृथ्वी पर सूर्य का प्रकाश आने में अड़चन होती है तो संसार में विभिन्न प्रकार की उथल पुथल, बाढ़, महामारियाँ, भूकम्प आदि उत्पाद होते हैं। संसार की सभी चेतन या जड़ जो भी पदार्थ है उर्जा के लिए सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है।

4.3.5 पृथ्वी तत्व -

प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी का महत्वपूर्ण स्थान है। शरीर जिन पाँच तत्वों से मिलकर बना है उनमें से मिट्टी भी एक है। पृथ्वी पंच तत्वों में पाँचवा और अन्तिम तत्व है। यह अन्य चार तत्वों- आकाश, वायु, अग्नि तथा जल का रस है तथा यह सभी में प्रधान तत्व है। पृथ्वी में सभी चेतन व अचेतन वस्तुओं को धारण कर सकने का गुण विद्यमान है। पृथ्वी के गर्भ से कई रत्नों, खनिजों, खाद्यपदार्थों, औषधियों, जड़ी बूटियों, शुद्ध जल वनस्पति आदि को प्राप्त किया जाना निश्चित हो पाता है। पृथ्वी के द्वारा ही प्राप्त खाद्य पदार्थो को पाकर हम अपना पालन पोषण कर स्वस्थ बनते हैं। पृथ्वी से हमें कई प्रकार के अमूल्य रत्न और औषधियॉ प्राप्त होती हैं पृथ्वी से ही सम्पूर्ण प्राणी जगत को अन्न प्राप्त हो पाता है। मिट्टी पूरी पृथ्वी पर आसानी से पाई जाने वाली तत्व है। मिट्टी को प्राप्त करना बहुत ही आसान व सुलभ है। मिट्टी के द्वारा पृथ्वी तत्व की पूर्ति कर रोगों की चिकित्सा की जाती है। मिट्टी

जितनी सर्वसुलभ है। उतना ही वह महान गुणों से परिपूर्ण भी है। मिट्टी जितनी सरलता से पाई जाती है अपने गुणों के कारण वह बहुमूल्य बन गई है।

मिट्टी में ताप संतुलन के गुण के कारण सर्दी व गर्मी दोनों को सोखने का गुण है जो कि गर्मी को सोखकर ठण्डक और ठण्डक को सोखकर गर्मी प्रदान करती है जो कि रोग चिकित्सा में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। मिट्टी के निरन्तर प्रयोग से शरीर के भीतर जमें मल भी ढीले होकर बाहर नीचे चले आते हैं। विष को खींचकर बाहर निकालने का गुण भी मिट्टी में विद्यमान है। सांप, बिच्छू, मधुमक्खी, पागल कुत्ते के काटने तथा औषधि के विष को दूर मिट्टी के द्वारा किया जा सकता है। मिट्टी में ही सभी प्राणियों के जीवन निर्वाह के लिए खाद्य पदार्थो का उनसे भिन्न-भिन्न रसों की प्रधानता के साथ उत्पन्न करने की शक्ति होती है।

मिट्टी की विद्युत शक्ति से सारे रोग सरलता और स्थाई रूप से मिट जाते हैं। मिट्टी के द्वारा कीटाणुओं का नाश किया जा सकता है। मिट्टी में धारण गुण के कारण कूड़ा कचरा अपशिष्ट पदार्थ आदि को धारण कर स्वच्छता को बनाए रखती है। मिट्टी में विभिन्न जल स्रोतों से स्वच्छ कर जल को शुद्ध करने का गुण भी है। इसी प्रकार विभिन्न गुणों से सुसज्जित होकर मिट्टी संसार की सबसे बड़ी और सस्ती औषधि है।

4.4 पंचतत्वों का शरीर पर प्रभाव व महत्व -

छिती जल पावक गगन समीरा

पंचतत्व रचित अधम सरीरा।।

अर्थात धरती, जल, अग्नि, वायु और आकाश से हमारा (भौतिक) शरीर बना है।

इनमें केवल चार ही तत्व पृथ्वी, जल अग्नि और वायु हमारे भोजन की कोटि में आते हैं। रस, रक्त, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा, एवं बीर्य इन सात धातुओं से मिलकर बने शरीर को हम देह कहते हैं। या स्थूल शरीर कहते हैं। आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वी ये सूक्ष्म भूत हैं। इन सूक्ष्म महाभूत मिलकर ही हमारे शरीर का निर्माण करते हैं ये पाँच तत्व जब प्रकृति में अलग रहते हैं तो सूक्ष्म होने के नाते अति शक्तिशाली होते हैं परन्तु जब वह स्थूल हो जाते हैं तो अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली होते हैं। प्रकृति एवं हममें समान तत्व होने पर भी प्राकृतिक हमसे कई ज्यादा शक्तिशाली होती है। अतः हमें प्राकृति एवं उसमें पाए जाने वाले तत्वों में सामंजस्य स्थापित करना आना चाहिए तभी हम अपने अन्दर अधिक शक्ति का विकास कर पायेंगे।

4.4.1 आकाश तत्व का शरीर पर प्रभाव व महत्व यह एक अणुविहीन तत्व है, जो उपवास अमाशय को रिक्त रखने से प्राप्त होता है। आकाश तत्व अथवा आमाशय की रिक्तिता का एक विशेष महत्व तो यह है कि जब तक पेट में कुछ स्थान खाली न होगा तब तक खाये गये पदार्थो को गति नहीं मिलेगी, जो पाचन के लिए आवश्यक है। वास्तव में जीवन शक्ति के जागरण का सारा श्रेय उपवास अर्थात आकाश तत्व को दिया जाता है। शास्त्रों में कहा गया है कि आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। आकाश तत्व शरीर को निर्मल कर उक्त चारों तत्वों को यथास्थान उपयोगी एवं प्रभावकारी रूप में कार्य करने की सुविधा और अवसर प्रदान करता है।

आकाश तत्व पंच महाभूतों में से एक महत्वपूर्ण तत्व है जो अन्य तत्वों को जन्म देने वाला भी है और अन्त में सभी तत्वों को अपने भीतर विलीन करने वाला भी है। सबसे सूक्ष्म शक्तिशाली एवं शुद्ध नैसर्गिक साधन आकाश ही है। आकाश का अर्थ है शून्य यानि खालीपन अतः जहाँ खालीपन है वहीं आकाश तत्व पाया जाता है और जहाँ आकाश तत्व है वहाँ वायु स्वयं आ जाती है खाली जगह में वायु स्वयं अपना स्थान बना लेती है। जिनमें आकाश तत्व की प्रधानता होती है वह लोग बहुत ही प्रसन्नचित, हल्कापन, स्फूर्ति एवं शक्ति का संचार तथा उसकी अनुभूति कर सकते हैं। इस तत्व के अभाव में वह आलसी, उर्जाविहीन, कमजोर, थकानयुक्त व अप्रसन्नचित रहते हैं।

पूर्वकाल में ऋषि, मुनि एवं देवता आदि उपवास के द्वारा अपने अन्दर इस तत्व की वृद्धि करते थे तथा किसी भी स्थान पर क्षण में पहुँच एवं वांछित फल प्राप्त कर सकते थे, उड़ सकते थे जहाँ चाहे जा सकते थे और किसी भी शरीर में प्रवेश कर सकते थे। अतः जो अपने अन्दर इस तत्व की प्रधानता कर लेता है वह सदा आकाश की भांति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति में अविजित रहता है।

ये सम्पूर्ण जगत आकाश से ही उत्पन्न होते हैं। प्रथम आकाश की उत्पत्ति होती है उसके पश्चात वायु, वायु के पश्चात अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई और उसी विपरीत क्रम में ये सभी तत्व आकाश तत्व में लीन हो जाते हैं। आकाश की यह विशेषता है कि विशाल होते हुए भी इतना सूक्ष्म है कि छोटे से छोटे स्थान में भी प्रवेश कर सकता है। जब हम प्रकृति को ठीक तरह समझकर उसके साथ सामंजस्य स्थापित करेंगे तो सभी तत्वों को सही रूप में ग्रहण कर सकेंगे। यदि हम आकाश के सीधे सम्पर्क में नहीं आ सकते तो धीरे-धीरे उसको प्राप्त करने के बारे में सोचना चाहिए। प्रथम ढीले व सूती वस्त्र पहनें, अधिक देर खुले आकाश में रहे तथा शुद्ध वातावरण में बितायें। उपवास रखें, आहार विहार में सुधार द्वारा इस अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। जो व्यक्ति अपने अन्दर आकाश तत्व का विकास कर लेता है। वह आकाश के गुण शब्द को उसी प्रकार पकड़ सकता है जिस प्रकार रेडियो। कितने ही योगियों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि अमुक योगी जमीन से ऊपर

उठ जाता था, आग पर चलता था, पानी पर नंगे पैर चलता था और इच्छानुसार कहीं भी चला जाता था इसी प्रकार उपवासी देखने में कुछ भी नहीं खाता पर वास्तव में वह सब कुछ खाता है क्योंकि उसके अन्दर शक्ति स्रोत आकाश का निरन्तर विकास होता है और पूर्ण विकास होता है। पूर्ण विकास होने पर वह प्रभु के निकट रहता है और निरोगी जीवन व्यतीत करता है। आजकल के रहन-सहन विशेष कर शहर में छोटे-छोटे कमरों में पूरे घर का सामान रहता ही है साथ ही ड्राइंग रूम में भी इतनी कुर्सी, मेज रखे रहते हैं कि आकाश की गुंजाइश ही नहीं और इसके अलावा वहां बिछे बिस्तरों एवं कालीनों जो महीनों में नीचे से साफ किए जाते हैं ऐसे वातावरण में तो दम घुटने लगता है इसी प्रकार सब गलत आहार विहार से भी हमारे शरीर के अन्दर विजातीय द्रव्य उत्पन्न हो जाता है जिससे तरह-तरह के रोगों का जन्म होता है। आजकल चुस्त एवं कसकर कपड़ा पहनने का रिवाज तेजी से बढ़ता जा रहा है जिससे कि हमारे अन्दर एवं बाहर आकाश तत्व का अभाव होने से हम रोग ग्रसित होते हैं।

4.4.2 वायु का शरीर पर प्रभाव व महत्व :- पंच महाभूतों में आकाश काश तत्व के बाद स्थान वायु का है आकाश तत्व की प्राप्ति होते ही वायु तत्व स्वयं उत्पन्न हो जाता है। अन्य तत्वों की उत्पत्ति करने वाला भी है। वायु तत्व के बाद अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व उत्पन्न होते हैं और विपरीत क्रम से यह तत्व वापस वायु में ही मिलकर लुप्त हो जाते हैं। वैसे तो मनुष्य के जीवन में पांचों तत्व महत्वपूर्ण हैं परन्तु वायु तत्व अपने आप में महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि अन्न, जल, धूप के बिना मनुष्य कुछ दिन जीवित रह सकता है पर वायु के अभाव में कुछ क्षण में ही दम घुटने लगता है। अतः यह कहा जा सकता है कि वायु ही जीवन है। वायु तत्व हमें जीवन, शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करता है। इसलिए वायु का पूर्ण लाभ उठाने के लिए उसके शुद्ध रूप को ग्रहण करना जरूर हो जाता है परन्तु आजकल के दूषित वातावरण में यह बहुत ही गठिन है। आये दिन अनेकों प्रकार के रोग और विशेष कर कैंसर जैसे तीव्र गति से लोग शिकार हो रहे हैं। यदि हम गम्भीरता पूर्वक रोग के कारणों पर विचार करते तो रोग और रोगी हमसे बहुत दूर होते। क्योंकि देखा जाए तो हमारे रोगी और अस्वस्थ होने के पीछे कारण है तो बस प्रकृति से दूर होना। आज मनुष्य प्रकृति से दूर होकर पंच तत्वों के असंतुलन से ग्रसित हो जाता है। देखा जाए तो गांव के लोग शहरी जीवन से अधिक सुखमय जीवन बिताते हुए दीर्घायु वाले बनते हैं क्योंकि उनकी जीवन शैली अभी भी ऐसी है कि वह प्रकृति के नजदीक रहते हैं। खेतों में काम करना, स्वच्छ वायु का सेवन करना, पौष्टिक आहार का सेवन करना प्रदूषणों से कोसों दूर रहना।

शहरों में रहने वाले लोग इन सभी के अभाव में रोगों को बुलावा दे रहे हैं। अतः वायु के सम्बन्ध में अच्छी तरह जानने के लिए उसके संगठन एवं उसके विभिन्न उपयोगों के बारे में जानना आवश्यक है।

(अ) श्वांस प्रणाली- मनुष्य द्वारा जो आहार ग्रहण किया जाता है उस आहार के दहन के लिए वायु बहुत ही आवश्यक है। हमारी नाक के द्वारा वायु फेफड़ों में पहुँचकर रक्त आक्सीकृत होता है तथा आहार का दहन कर शरीर को उर्जा व शक्ति प्रदान करती है।

(ब) दहन क्रिया- जो आहार हम ग्रहण करते हैं उसके दहन के लिए अर्थात उसे तोड़ने के लिए हमें वायु की आवश्यकता होती है। दहन क्रिया के फलस्वरूप आहार शरीर को उर्जा प्रदान करता है तथा कुछ व्यर्थ पदार्थ जैसे कार्बन डाई आक्साइड तथा अन्य पदार्थ तैयार हो जाते हैं।

श्वसन क्रिया में प्रयुक्त होने वाले अंग-

(क) नाक

(ख) गला

(ग) स्वर यंत्र

(घ) श्वांस-नलिका

(ड़) श्वांस वाहिनी

(च) फेफड़े

(छ) वक्षस्थल

(क) नाक - सर्वप्रथम शरीर में वायु नाक के द्वारा ही शरीर में प्रवेश करती है। नाक चेहरे के ऊपर कोमल हड्डी से निर्मित होती है इसमें दो नथुने होते हैं। नाक के भीतर एक श्लेष्मिक झिल्ली होती है जिसके ऊपर बाल होते हैं जो कि वायु के साथ आने वाले अन्य धूल कणों, प्रदूषण के कणों विजातीय द्रव्य को शरीर के भीतर जाने से रोकते हैं। नाक के भीतर की श्लेष्मिक झिल्ली शरीर के तापमान के बराबर वायु को नियंत्रित करती है तथा इसी झिल्ली के नीचे गंध का ज्ञान करने वाली नाडी तन्तु होते हैं जो कि हमें विशेष गंधों का ज्ञान कराते हैं।

(ख) गला - मुँह एवं नाक के पीछे स्थित बड़े भाग को गला कहते हैं यह नीचे की ओर श्वांस नली से और पीछे की ओर आहार नाल से जुड़ी रहती है।

(ग) स्वर यंत्र - यह गले के निचले भाग में तिकोना तथा खोखला है इसके उपर एक पर्दा होता है। भोजन निगलते समय यह पर्दा स्वर यन्त्र के ऊपर द्वार को ढक देता है।

(घ) श्वांस नलिका - स्वर यंत्र के निले भाग से निकलकर आहार नलिका के आगे से छाती में नीचे की ओर जाती है आगे चलकर यह श्वांस नली दो भागों में विभाजित होकर एक दांये फेफड़े में और दूसरी बांये फेफड़े में प्रवेश करती है।

(ड़) श्वांस वाहिनियाँ - श्वांस नलिका दो भागों में विभाजित होती है तथा फेफड़ों में पहुँचकर यह अनेक शाखाओं एवं उप-शाखाओं में फैल जाती है। इन उपशाखाओं को वायु वाहिनियाँ कहते हैं।

(च) फेफड़ा - फेफड़े को दो भागों में विभाजित होते हैं। दांया फेफड़ा तथा बांया फेफड़ा। दाहिने फेफड़े के तीन भाग हैं और बांयें के केवल दो। सूक्ष्म वायु वाहिनी से वायु फेफड़ों के भीतर प्रवेश करती है जिससे वायुकोष हवा से फूल जाते हैं। फेफड़ों के भीतर धमनी की बारीक शिराएं भी जाल के रूप में स्थित होती हैं। इन शिराओं से अशुद्ध रक्त बहता रहता है।

(छ) वक्षस्थल - छाती के बाहर कशेरूकायें, पसलियाँ और आगे की ओर छाती की हड्डी है। यह एक पिंजरे के रूप में है। इन पसलियों के भीतर फेफड़े सुरक्षित रहते हैं।

मनुष्य श्वांस के द्वारा वायु को नाक से अपने शरीर में प्रवेश कराता है नाक के भीतर श्लेष्मिक झिल्ली तथा बाल होते हैं जो छानकर वायु को शरीर के भीतर जाने देते हैं। फिर वायु नाक से सीधी श्वांस नलिकाओं में होती हुई वायु कोष्ठिकाओं में पहुँचती है। यहाँ पर रक्ताणु जो बारीक रक्त शिराओं में एक समय में एक ही रक्त कण गुजर पाता है। वह वायु से ऑक्सीजन ग्रहण कर लेते हैं। उसी समय वह आक्सीहीमोग्लोबिन बन जाता है तथा कार्बन डाइ आक्साइड, पानी आदि रक्त के अशुद्ध पदार्थ वायु कोष में जाकर उच्छवास के साथ शरीर द्वारा बाहर कर दिए जाते हैं। रक्त का रंग लाल हो जाता है। इसी क्रिया को श्वांस की कार्यप्रणाली तथा रक्त का शुद्धीकरण कहते हैं। जो वायु हम श्वांस द्वारा ग्रहण करते हैं उस वायु में पाये जाने वाले तत्व नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, ओषजन 20.96 प्रतिशत, कार्बनडाइ आक्साइड 0.04 प्रतिशत, पानी का भाप अनिश्चित आदि पाई जाती है। इस प्रकार वायु में पाये जाने वाले तत्व आदि इसका भाग है। शुद्ध वायु ग्रहण करना बहुत ही आवश्यक है उपरोक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि वायु हमारे लिए कितनी आवश्यक है। इसके द्वारा आहार का दहन सम्भव नहीं हैं। प्राकृतिक रूप से वायु को शुद्ध रखने के लिए विभिन्न प्रकार से कार्य किए जा रहे हैं जैसे पेड़ पौधे अधिक से अधिक मात्रा में लगाए जा रहे हैं क्योंकि वनस्पति में क्लोरोफिल नामक हरे रंग का महत्वपूर्ण द्रव्य रहता है जो कार्बन-डाइ-आक्साइड ग्रहण कर सूर्य की किरणों से उनका पृथककरण करता है। दूसरा प्राकृतिक वर्षा के द्वारा भी वायु स्वच्छ व शुद्ध होता है। वर्षा से कार्बन डाइआक्साइड एवं अन्य विषैले तत्व पानी में मिल जाते हैं जिससे हवा की गन्दगी दूर हो जाती है। इसके अलावा तेज हवा, सूर्य का प्रकाश तथा ओजोन की परत के द्वारा प्रकृति स्वयं ही वायु को शुद्ध करती रहती हे। स्वास्थ्य की दृष्टि से पर्याप्त मात्रा में शुद्ध वायु की आवश्यकता होती है जिसमें

तन, मन दोनों स्वस्थ रहते हैं। शुद्ध हवा से त्वचा के रोगों से मुक्ति मिलती है त्वचा का तापमान नियंत्रित होता है तथा जीवनी शक्ति की वृद्धि होती है।

4.4.3 अग्नि तत्व का शरीर पर प्रभाव व महत्व :- यह तत्व विशेष रूप से हमें हमारे भोजन में, फलों के द्वारा प्राप्त होता है। इनमें जल तत्व को भी भरपूर मात्रा होती है। फल सूर्य की गरमी में पकड़ते हैं जब हम धूप लेते हैं या सूर्य को गरमी से पके हुए फल खाते हैं तो शरीर के अन्दर अग्नि तत्व का समावेश होता है। फल भी दो प्रकार के होते हैं-

(अ) रसदार- यह शरीर को शुद्ध करने में अधिक सहायक होते हैं तथा सुपाच्य होते हैं।

(ब) गूदेदार- इनमें पोषक तत्व अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। ये अधिक गरिष्ठ माने जाते हैं।

दोनों ही प्रकार के फल पृथ्वी और जल तत्व वाले भोज्य पदार्थों की अपेक्षा अधिक सुपाच्य होते हैं। इन्हें बिना पकाये कच्चा ही खाना चाहिए- जैसे- खीरा, ककड़ी, गाजर, टमाटर आदि।

वायु तत्व के बाद अग्नि तत्व का आगमन होता है। पंच महाभूत का एक अंग है। इसके अभाव में प्राणी, पशु पक्षी एवं वनस्पति वर्ग आदि का जीवन असम्भव है। क्योंकि इसके अभाव में जीवन को उर्जा, उचित शक्ति आदि का मिलना असम्भव है। इस तत्व के अभाव में पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति और पृथ्वी की उर्वरक शक्ति नहीं बढ़ सकती। संसार के सभी प्राणियों का अस्तित्व ही अग्नि पर टिका हुआ है। मनुष्य का ओज व तेज वृक्षों में हरियाली एवं पक्षियों में चहचहाहट तथा पशु का टहलना सारी नदियाँ आदि सभी सूर्य से प्राप्त तत्व अग्नि के कारण हो पाता है। सूर्य में रोगों के निवारण का एक महत्वपूर्ण गुण है। यह हमारे ऋषि मुनि भी मानते थे। सूर्य की रश्मियों से हमें विटामिन डी प्राप्त होता है जो कि हमारी हड्डियों को मजबूत बनाने के लिए बहुत ही अनिवार्य है। इन रश्मियों से हमें उर्जा, शक्ति व स्फूर्ति भी प्राप्त होती है यह रोगाणुओं को नष्ट करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यही नहीं यह हमारे शरीर से विजातीय द्रवों का निष्कासन कर, रोगाणुओं और कीटाणुओं से हमारे शरीर को मुक्त रखती है।

सूर्य सेवन से बात, पित्त एवं कफ से उत्पन्न रोगों को दूर किया जा सकता है। सूर्य और इसके महत्व को जानकर तथा समझकर आज भी प्रायः अधिकतर धर्मों में इसकी उपासना की जाती हे। ऐसी मान्यता है प्रातः काल के सूर्य रश्मियों में बौद्धिक शक्ति बढ़ाने की होती है। सूर्य का प्रकाश जीवनी शक्ति में वृद्धि करती है तथा इसके अभाव में रक्ताभाव हड्डियों की कमजोरी, त्वचा रूखी, कड़ी व मुरझाई दिखाई देती है जबकि सूर्य की किरणों का सेवन करने वालों की त्वचा सतेज, चिकनी स्वस्थ एवं सुन्दर होती है तथा उन्हें कभी भी सूखा रोग नहीं होता अर्थात यह कहना गलत नहीं होगा कि सूर्य का प्रकाश सभी रोगों का नाश करने वाला है। सूर्य की रश्मि में पसीना निकालने, मोटापा घटाने

की शक्ति होती है। सूर्य रश्मियों का पाचन प्रणाली पर ठीक कार्य करती है। खाद्यों, फल, सब्जी, अनाज में जितनी सूर्य रश्मियाँ सतृप्त होती हैं उनमें उतना ही पोषण तत्व, प्राकृतिक लवण, एवं विटामिन पूर्ण एवं अधिक पाया जाता है।

सूर्य किरणों का प्रभाव हमारी ब्राहा और अन्तः ग्रंथियों पर प्रभाव डालकर सन्तुलन पैदा करती है। अतः हमें सूर्य किरणों से प्राप्त अग्नि तत्व की पूर्ति करने के लिए उसका नियमित सेवन करना चाहिए।

आज अग्नि तत्व की प्राप्ति के लिए कई साधन व उपचार की पद्धतियाँ प्रयोग में लाई जा रही हैं। आज जिन रोगों का कारण अग्नि तत्व की कमी है उन्हें दूर करने के लिए विभिन्न उपचार विधियों को प्रयोग किया जाता है जैसे- 1. सूर्य किरण चिकित्सा इसको निम्न प्रकार से समझते हैं -

सूर्य की किरणो को रंगीन शीशो से गुजारकर काम मे लाना - इस काम के लिये विविध रंगो के शीशे लेकर उनमें स्लेट की तरह उनमे चौखटे लगवा लेने चाहिये जब शरीर के किसी रोगी भाग पर किसी रंग की सूर्य किरण का प्रकाश डालना हो तो उसी रंग का शीशा लेकर धूप में बैठकर शरीर के रोगी भाग पर शीशे से सूर्य की उस रंग की किरण पड़ने देना चाहिये सूर्य की रंगीन रश्मियो का स्नान हमेशा नंगे बदन करना अधिक लाभप्रद होता है। सूर्य-किरणें से समूचे शरीर को नहलाना हो तो इसके लिये ऐसा कमरा चुनना चाहिये जिसमें सूर्य प्रकाश खूब आता हो तथा जिसकी खिडकी मे रंगीन शीशा आवश्यकतानुसार लगाने या निकालने की व्यवस्था हो जिस रंग का सूर्य प्रकाश शरीर के लिये आवश्यक हो उसे सूर्य के सामने वाली खिड़की मे लगाकर बाकि सभी को बन्द कर देना चाहिये ताकि आवश्यक रंग के अलावा अन्य कोई रंग की किरण रोगी पर ना पडे।

सूर्य की रंगीन किरणों का जल मे सम्पुटित करके काम मे लाना- सूर्य की सातो रंगीन किरणों लाल, नारंगी, पीली हरी आसमानी, नीली एवं बैगनी किरणो को उन्ही रंगो की बोतल के माध्यम से जल मे सम्पुटित कर चिकित्सा मे प्रयोग किया जाता है बोतलो के रंग सूर्ख और शुद्ध होने पर परिणाम प्रभावकारी होते है यदि रंगीन बोतल या उस रंग की बोतल ना मिल पाये तो सफेद बोतल पर आवश्यक रंग का सिलोफिन कागज लपेटकर उसमे जल को तैयार कर प्रयोग किया जा सकता है सर्वप्रथम जल तैयार करने के लिये बोतल को खुब अच्छी तरह साफ कर शुद्ध जल से भर 1/4 भाग खाली छोड देना चाहिये बोतल को उसी रंग के ढक्कन या कार्क से बन्द करने के पश्चात एक लकडी की पटिया या मेज पर ऐसे स्थान पर रखना चाहिये सुबह 10 बजे से शाम 5 बजे तक उस पर लगातार धूप पडती रहे शाम 5 बजे बोतल के खाली भाग मे भाप की बूदें दिखायी देंगी जिससे यह स्पष्ट होगा की पानी मे औषधी गुण आ गया है और उसे प्रयोग किया जा सकता है सूर्य तप्त जल को पृथ्वी पर नही रखना चाहिये वरना उसका सब गुण पृथ्वी मे मिल जाता है। यह जल 6 से 8 घण्टे मे दवा बन जाता है विभिन्न रंग की बोतल को तैयार करने के लिये उन्हे धूप मे रखते समय इतनी दूर दूर

रखना चाहिये की उनकी छाया दूसरी बोतल पर ना पडे तैयार जल को सफेद बोतल मे रखने पर 24 घण्टे तक प्रयोग किया जा सकता है बल्कि उसी रंग की बोतल जिसमे जल तैयार हुआ है उसमे रखने पर 72 घण्टे तक प्रयोग किया जा सकता है।

सूर्य किरण चिकित्सा मे फल और सब्जियो का प्रभाव भी देखा जाता है फल और सब्जियॉ अपने अन्दर सूर्य की किरणों को एकत्र करती रहती है इसलिये इन्हें प्राकृतिक रुप से खाने मे हमे अधिक पोषक तत्व मिलते है हरे रंग की तरकारी व फल गुर्दे चक्षु और चर्मरोग मे तथा लाल रंग की सब्जियो का प्रभाव गर्म होता है। बेल मे पीला, नीला दोनो रंगो का प्रयोग होने पर वह ऑतों के लिये सर्वोत्तम माना जाता है सर्दी खॉसी और कफ जनित रोग मे गर्म प्रकृति के पदार्थ देने चाहिये।

सूर्य की रंगीन किरणों को वायु के माध्यम से भक्षण भी किया जाता है जिसमें रंगीन खाली बोतल को खूब कडी डॉट लगाकर उसी प्रकार धूप मे रखा जाता है जिस प्रकार बोतल मे जल भरकर उसे तैयार किया जाता है नियम वही रहेगे। इसमे बोतल को लकडी पर सूर्य के प्रकाश मे दिन मे 12 बजे से 1 बजे तक रखने पर बोतल मे बन्द हवा औषधि गुणो युक्त कि जाती है तैयार हवा का नासिका या मुह द्वारा रोगी के श्वास के साथ खिचंवाकर उसके रोग को दूर करने के प्रयोग मे लाया जाता है।

सूर्य की रंगीन किरणों को तेल मे उतारकर प्रयोग करना- जिस प्रकार जल और हवा को धूप मे रंगीन बोतलो मे बन्द कर रखने पर तप्त किया जाता है उसी प्रकार ही तेल भी भावित किया जाता है तेल को सूर्य किरणों से भावित करने के लिये उसे केवल 8 धण्टे ही सूर्य प्रकाश मे नही रखा जाता बल्कि गर्मियो मे 30-40 दिन और सर्दियों मे 60 दिनो तक प्रतिदिन 8 घन्टे सूर्य के प्रकाश मे रखने पर ही तेल तैयार किया जाता है। इस प्रकार तिल, गोला, जैतुन, सरसों आदि तेलो तथा गिलसरीन को भी भावित कर विभिन्न रोगो मे प्रयोग किया जाता है।

सूर्य की रंगीन किरणों को मिश्री या दुग्ध शर्करा आदि मे भावित कर काम मे लाना भी प्राकृतिक की एक प्रक्रिया है। मिश्री शक्कर और दुग्ध शर्करा की होम्योपैथी वाली गोलियों को सूर्य तप्त कर उन दिनो मे विशेष रुप से प्रयोग किया जाता है जिन दिनो सूर्य का प्रकाश नही निकलता। मिश्री को भावित करने के लिये पहले उसे बारिक पीस लें तथा जल और वायु की भॉति ही रंगीन बोतलो मे भरकर उपयुक्त विधि से धूप मे रखना चाहिये मिश्री को 3 माह और दुग्ध को 15 दिन के बाद प्रयोग किया जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शरीर मे जिस रंग के अभाव के कारण रोग उत्पन्न हुआ है उसी रंग से तप्त जल मे भीगे कपडे की पटटी प्रयोग मे करने पर साधारण जल की पटटी से दोगुना लाभ मिलता है। रंगीन किरण तप्त जल से सनी मिटटी की पटटी का प्रयोग करके रोगो को दूर करना- मिटटी की पटटी बनाने के लिये रंगीन तप्त जल मे तैयार मिटटी प्रयोग कि जाती है जिससे शीघ्र और

अधिक लाभ होता है गर्म मिट्टी के प्रयोग आदि। कई प्रकार के गर्म प्रयोगों के द्वारा अग्नि तत्व की शरीर में पर्याप्त मात्रा में पूर्ति कर बड़े-बड़े रोगों को दूर किया जा सकता है।

4.4.4 जल - हमारे शरीर का 70 प्रतिशत भाग पानी से भरा हुआ है तथा इसकी पूर्ति भोजन में मुख्यतः कुछ सब्जियों से आती है।

इनमें भी दो प्रकार के भेद हैं-

1. ऐसी सब्जियाँ जो जमीन के ऊपर होती है- जैसे- लौकी, परवल, तोरई, टिण्डा, गोभी आदि। इनमें जल तत्व अधिक होता है और इनमें शरीर से मल निकालने को शक्ति भी अधिक होती है।
2. आलू, शकरकंद आदि कंदमूल जिनमें जल तत्व कम तथा पृथ्वी तत्व अधिक होता है ये कंदमूल उपर्युक्त सब्जियों की अपेक्ष अधिक गरिष्ठ होते हैं।

पंच महाभूतों में चौथा स्थान जल का है जल हमारे जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। जल के कारण ही हम सभी स्वाद का अनुभव कर पाते हैं जैसे मीठा, खट्टा, कड़वा, तीखा, कसैला तथा नमकीन। पानी हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है। हमारे शरीर की रचना के अनुसार भी इसका महत्व है हमारे शरीर का 2/3 भाग केवल जल ही होता है। इस तत्व के द्वारा है हम अपने शरीर के आन्तरिक व बाहय अंगों को शुद्ध व स्वच्छ रख पाते हैं जल में विजातीय द्रवों व अन्य विषों को अपने में घोलने तथा उन्हें पेशाब, श्वांस एवं पसीने के माध्यम से बाहर निकालने का गुण है। जल के द्वारा हमारे शरीर का रक्त संचार अच्छा हो सकता है। ठंडे जल से स्नान करने पर थकान-गिरावट दूर होकर, शारीरिक, मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। शरीर पर स्नान के अलग-अलग प्रभाव देखने को मिलते हैं। आज कल स्नान विधि बड़ी ही दोषपूर्ण है क्योंकि स्नान के नाम पर केवल साबुन लगाकर दो लोटे गिराकर उसे स्नान मान लेना गलत है।

स्नान का तभी लाभ प्राप्त हो सकता है जब शान्तिपूर्वक ढंग से आवश्यकतानुसार ठंडे, गर्म, शीतल पानी का प्रयोग कर स्नान किया जाए तथा प्रत्येक अंग प्रत्यंग को ठीक ढंग से रगड़ के मालिश भी की जाये तथा स्नान के पश्चात कोमल तौलिया से पानी को सौखना नहीं बल्कि खुरदरी तौलिया से रगड़ कर पानी को पोछने से हमारी त्वचा स्वस्थ चमकदार तथा कोमल बनती है।

स्नान कई प्रकार के होते हैं उपचार के लिए पानी का विभिन्न प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

1. फौव्वारा स्नान- यह वर्षा स्नान के समान ही लाभप्रद है। इसमें बाजार से मिलने वाले फव्वारे को एक पाइप से जोड़कर पूरे शरीर पर फव्वारे से पानी गिराएं इससे गिरने वाला पानी सम्पूर्ण शरीर पर पड़ना चाहिए। इस स्नान की अवधि 1-6 मिनट हो सकती है।

2. जलधार स्नान- इस स्नान के लिए रबड़ की नली से जल की सीधी धार गिराई जाती है और इस प्रकार गिराई जाती है कि जल पूरे शरीर पर पड़े।

3. सामान्य स्नान- सामान्य स्नान में नदी, तालाब समुन्द्र एवं कुंए के पानी में डुबकी लगाकर नहाना सम्मिलित है या घर में बाल्टी भरकर नहाना झरनों के नीचे बहाना तथा तैरना आदि।

4. दीक्षा स्नान- सामान्य शरीर को ठंडे जल में डुबाकर किए गए स्नान को दीक्षा स्नान कहते हैं।

5. पूर्ण स्नान- रोज रात को मिट्टी के घड़े में रखे हुए जल को शरीर पर उडेलकर हथेली से तेज-तेज रगड़ना या टहलना चाहिए।

इन स्नानों से होने वाले लाभ निम्न है -

1. रक्त संचार में वृद्धि होती है।
2. थकान दूर होती है।
3. पाचन तंत्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।
4. स्फूर्ति बढ़ती है।
5. भूख लगती है।
6. शरीर में हल्के पन का अनुभव होता है।

पशु-पक्षी सभी प्रकृति की गोद में रहते हैं तथा उसके नियमों का पालन करते हुए सुखी जीवन यापन करते हैं वहीं रहते हैं, खाते हैं, सोते हैं तथा बीमार होने पर प्रकृत के नियमों पर चलकर ठीक हो जाते हैं। मनुष्य भी प्रकृति के नियमों पर चलकर सुखी व स्वस्थ जीवन का यापन कर सकता है।

क्रमशः गर्म और ठंडे पानी के प्रयोग से शरीर के अन्दर रक्त परिभ्रमण की प्रक्रिया काफी तीव्र हो जाती है जिसके फलस्वरूप शरीर क्रिया, विज्ञान की दृष्टि से निम्न प्रकार से स्वास्थ्य वर्धक एवं रोग प्रतिरोधक प्रभाव होते हैं।

1. ठंडे जल के प्रयोग से श्वांस की गति तेज हो जाती है, फलस्वरूप शरीर द्वारा आक्सीजन तथा ओजोन ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है। फलस्वरूप विजातीय पदार्थो का दहन तथा आक्सीकरण काफी तेजी से होने लगता है।

2. शरीर में जल की कमी होने पर जैसे कि ज्वर, हैजा, मधुमेह आदि की स्थिति में जलापूर्ति आवश्यक है।

3. शरीर में लाल रक्त कणिकाओं की संख्या बढ़ जाती है। इस अर्थ यह नहीं है कि ठंडे जल के प्रयोग से नये लाल रक्ताण (R.B.C.) बनने लगते हैं बल्कि जो लाल कण सुप्तावस्था में पड़े रहते हैं वे क्रियाशील हो उठते हैं।

4. पानी में नमक, चीनी, नींबू, शहद आदि मिलाकर लेना ज्यादा हितकारी है। गुर्दे के रोग होने पर नमक व पानी का प्रयोग चिकित्सक के अनुसार करें।

5. ऊतकों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

6. शरीर की धनात्मक विद्युतीय शक्ति बढ़ जाती है।

7. शरीर के तापक्रम को खतरे की सीमा से नीचे लाता है क्योंकि त्वचा द्वारा ताप विकरण की क्रिया बढ़ जाती है।

8. विभिन्न शारीरिक संस्थानों द्वारा विजातीय पदार्थ को आसानी से बाहर निकाल फेंकने की क्षमता बढ़ जाती है।

9. दाल का पानी, सब्जी का पानी, शिकंजी, जूस आदि में भी पानी का ही अंश होता है और इनके सेवन से पानी के साथ-साथ खनिज लवणों की भी कमी की क्षतिपूर्ति होती है।

10. रक्त परिभ्रमण सब जगह सामान्य हो जाता है तथा आवश्यकतानुसार वृद्धि भी होती है।

11. स्नायविक संस्थान की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

12. गुर्दा यकृत तथा त्वचा की क्रिया बढ़ जाती है।

13. कार्बोहाइडेट एवं चिकनायी की दहन क्रिया बढ़ जाती है।

14. आकस्मिक चोट के कारण पैदा हुआ दर्द दूर हो जाता है क्योंकि अवरूद्ध रक्त का परिभ्रमण सामान्य हो जाता है।

15. ठंडे जल के प्रयोग से आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड की मात्रा ठीक स्तर पर बढ़ जाती है।

16. शरीर की आक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता बढ़ती है तथा कार्बनडाइक्साइड के निर्यात की क्रिया तीव्र हो जाती है।

17. जल चिकित्सा विशेषज्ञों द्वारा किए गये प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जब ठण्डे जल का सामान्य प्रयोग रक्त के क्षारत्व को बढ़ाता है एवं अम्लत्व को घटाता है।

18. पाचन संस्थान द्वारा खाद्य रसों की प्रचूषण एवं आत्मसात करने की क्रिया बढ़ जाती है।

उपरोक्त को जानने के बाद यह मान लेना ही पर्याप्त नहीं है कि जल द्वारा पुराने तथा भयंकर रोगों से मुक्ति दिलाई जा सकती है अपितु जल चिकित्सा यह सिद्ध कर चुकी है।

ठंडे पानी का शरीर पर अल्पकालीन प्रयोग करने पर निम्न प्रभाव पड़ता है -

- शरीर के तापमान को बढ़ाता है।
- त्वचा की कार्यशीलता में वृद्धि करता है।
- श्वांस की क्रिया को धीमा करता है।
- पोषण शक्ति में वृद्धि करता है।
- अल्प समय के लिए रक्त कोषों को संकुचित करता है।
- मांसपेशियों को संकुचित करता है।
- हृदय की क्रियाशीलता को बढ़ाता है।
- शरीर की नाडियों को उत्तेजित करता है।
- रक्तचाप को बढ़ाता है।

ठंडे पानी का शरीर पर दीर्घकालीन प्रयोग करने पर निम्न प्रभाव पड़ता है -

- शारीरिक तापमान को घटाता है।
- त्वचा की कार्यशीलता में ह्रास उत्पन्न करता है।
- पाचन क्रिया को मध्यम करता है।

- पोषण क्षमता को अधिक प्रभावित नहीं करता है।
- मांसपेशियों को संकुचित करता है।
- हृदय की क्रियाशीलता को कमजोर करता है।
- शरीर की नाडियों पर मृदु प्रभाव डालता है।
- रक्त चाप को घटाता है।
- मांसपेशियों को संकुचित करता है।

4.4.5 पृथ्वी तत्व - मिट्टी में सभी पंच महाभूतों का समावेश है। इस कारण इसे पंच महाभूतों से सम्पन्न माना जाता है। मिट्टी को इसलिए में माँ की तरह पूजा जाता है।

भारत में प्राचीन समय से ही मिट्टी को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। मिट्टी के विभिन्न कार्यो में प्रयोग किया जाता है जैसे मिट्टी को शरीर पर मल-मलकर नहाया जाता है शौच के बाद मिट्टी से हाथ धोना, बर्तनों को मिट्टी से धोना, घर के फर्श को मिट्टी से लीपना मिट्टी से बर्तनों को बनाना, मिट्टी में लेटना, खेलना, मिट्टी का शरीर के विभिन्न अंगों पर लेप करना। मिट्टी पर नंगे पैर चलना, उस पर सोकर एवं मिट्टी के शेष विभिन्न प्रयोग कर पूर्ण स्वास्थ्य एवं आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

मिट्टी अपने विशेष गुणों के कारण और भी उपयोगी व महत्वपूर्ण बन गई है जो इस प्रकार से है -

1. मिट्टी के जल को अपने अन्दर घोलने के कारण इसका महत्व और अधिक हो जाता है।

2. मिट्टी में ठंडे और गर्म दोनों तापमानों को अपने अन्दर सोखकर उसे सामान्य करने का गुण निहित होने के कारण उपचार में बहुत अधिक लाभकारी सिद्ध होती है।

3. मिट्टी बहुत ही सस्ती व सुलभ होती है।

4. मिट्टी में गंध को नष्ट करने का गुण निहित है बड़े से बड़े कूड़े के ढेर को मिट्टी के नीचे दबा देने पर दुर्गन्ध मिट जाती है।

5. मिट्टी में कीटाणुओं को नष्ट करने का गुण है।

6. मिट्टी निर्मल होने के कारण बहुत ही महत्वपूर्ण है।

7. मिट्टी में जल, खनिज लवण तथा कई जरूरी तत्व पाए जाते हैं जो कि चिकित्सा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

8. मिट्टी में जन्म देने की शक्ति है।

9. मिट्टी में सोखने के गुण के कारण शरीर के विष को मिनटों में सोखकर बाहर कर देती है।

वर्तमान युग आधुनिक युग है। जिसने हमें विकास के नाम पर प्रकृति से दूर कर दिया है। आज का मानव प्रकृति से दूर शहरों में बड़ी उंची-उंची इमरतों में रहता है। वह बहुत ही नाजुक भी बन गया है क्योंकि नंगे पैर चलने पर उसे दर्द होता है। इसलिए जूते पहनकर चलता है। शहरी मानव बहुत ही कठोर जीवन जी रहा है। प्रदूषण भरे वातावरण में, अप्राकृतिक भोजन खाकर, प्रकृति के नियमों का उल्लंघन कर ताकि अप्राकृतिक जीवन शैली अपनाकर बड़े-बड़े भयंकर आधुनिक पद्धति के रोगों को भोग रहा है। आज का मानव पैदल मिट्टी पर चलना तो दूर घर में मिट्टी के कणों को देखकर ही विचलित हो जाते हैं। वह जानते भी नहीं कि वह कितने अज्ञानी हैं जो मिट्टी तत्व की अवहेलना कररहा है। वह नहीं जानता की प्राकृतिक जीवन जीना और पंच महाभूतों के निकट रहकर उनका नित सेवन करना वास्तविक आनन्द की अनुभूति कराता है। नंगे पैर चलने से रक्त संचार बेहतर होता है तथा पैर कोमल बनते हैं।

मिट्टी के विभिन्न प्रयोगों के द्वारा स्वस्थ व निरोगी काया को प्राप्त किया जा सकता है। जैसे-धरती पर सोना, मिट्टी की मालिश, मिट्टी, मिट्टी की पट्टी, मिट्टी पर नंगे पैर टहलना, मिट्टी से दाँत साफ मकान बनाना आदि।

यह तत्व हमें हमारे भोजन से भी प्राप्त होता है। खाद्य पदार्थों, फलों आदि में पाया जाता है परन्तु अनाज, दालें और चावल व गेहूँ में भी यह तत्व पाया जाता है। इन भोजन पदार्थों के द्वारा इस तत्व की पूर्ति कर भयंकर रोगों को दूर किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) उपवास किस तत्व की प्राप्ति का साधन है?

अ. पृथ्वी तत्व ब. जल तत्व

स. आकाश तत्व द. वायु तत्व

(ख) एक सामान्य व्यक्ति एक मिनट में कितनी बार श्वास लेता है?

अ. 10 से 12 बार ब. 15 से 18 बार

स. 18 से 20 बार द. 20 से 25 बार

(ग) शरीर में स्थित प्राण के प्रकार है -

अ. एक ब. पांच

स. दस द. आठ

(घ) सूर्य की रंगनी किरणों का तेल तैयार होने में कितने दिनों का प्रकाश आवश्यक है -

अ. एक से पांच दिन ब. 5 से 10 दिन

स. 10 से 20 दिन द. 30 से 60 दिन

4.5 सारांश

पाठकों पंचतत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) ही हमारे शरीर के आधार तत्व हैं इन्हीं के द्वारा हमारे शरीर की रचना होती है तथा शरीर में इन तत्वों का समयोग स्वास्थ्य निमार्ण करता है। इन तत्वों का योग सम रहने पर स्वास्थ्य तथा विषम होने पर व्याधि उत्पन्न होती है।

आकाश तत्व में ही शेष चार तत्व विद्यमान होते हैं जो कि सबसे सूक्ष्म तत्व है। आकाश के बाद वायु का स्थान आता है। यह वायु हमारे शरीर के प्राण तत्व का निर्धारण करता है। अग्नि तत्व का सबसे प्रमुख स्रोत सूर्य है। इस तत्व को हम सूर्य किरण सम्पुटित जल एवं तेल को तैयार करके प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सूर्य प्रकाश में पके फल व सब्जियां इसके प्रमुख स्रोत हैं।

जल तल शरीर के 70 प्रतिशत भाग का निर्माण करता है जिसे हम पेय पदार्थो (फलों, सब्जियों तथा पानी) से प्राप्त करते हैं। यह जल ठण्डे एवं गर्म रूप में शरीर पर अलग-अलग प्रभाव रखता है तथा शरीर का सबसे स्थूल तथा महत्वपूर्ण तत्व पृथ्वी है जिसे मां की तरह पूजा जाता है।

4.6 शब्दावली

स्थूल तत्व	भारी तत्व
सूक्ष्म तत्व	हल्का तत्व
सृजन	निर्माण
समावेष	योग, जुड़ना, मिलाना

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) स (ख) ब (ग) ब (घ) द (ड.) ब

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तर प्रदेश

2. सक्सैना ओम प्रकाश, (2009) सरल प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवासदन, मथुरा

3. शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली

4.9 निबंधात्मक प्रश्न -

1. पंचतत्वों से आप क्या समझते हो? इनके प्रभाव का वर्णन कीजिए।

2. पंच महाभूत चिकित्सा का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

3. आकाश तत्व चिकित्सा को समझाते हुए उपवास के प्रभाव लिखिए।

इकाई 5 जल चिकित्सा की अवधारणा, सिद्धान्त, गुण एवं प्रभाव, जल का उपयुक्त तापमान एवं सामान्य अनुप्रयोग

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 जल चिकित्सा की अवधारणा

5.4 जल के गुण

5.5 जल के प्रभाव

5.5.1 उष्ण जल का प्रभाव

5.5.2 ठण्डे जल के प्रभाव

5.6 चिकित्सा के लिए जल का उपयुक्त तापमान

5.7 जल के सामान्य अनुप्रयोग

5.7.1 जल नेति

5.7.2 कुंजर क्रिया

5.7.3 एनिमा

5.7.4 ठण्डा कटि स्नान

5.7.5 मेहन स्नान

5.7.6 पूरे शरीर की गीली चादर लपेट

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.11संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

हमारे शरीर का निर्माण करने वाले पंच तत्वों में जल तत्व दूसरा प्रमुख तत्व है जिसमें शरीर का लगभग 70 प्रतिशत भाग बनता है। इस जल को जीवन का पर्यायवाची मानकर जल ही जीवन है कि लोकोक्ति समाज में प्रचलित है। शरीर में इस जल तत्व की समअवस्था स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है क्योंकि - शरीर में इस जल तत्व की कमी होने पर भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इस जल तत्व का चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत अधिक महत्व है तथा जल द्वारा चिकित्सा जल चिकित्सा सम्पूर्ण विश्व में स्थान एक विशिष्ट स्थान बनाए हैं। जल चिकित्सा आज वृहद शास्त्र के रूप में विकसित हो गया है। जिसे के नाम से भी जाना जाता है। जहां एक जल को एक महाऔषधी के रूप में प्रयोग किया जाता है। अब यहां पर आपके मन में यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि यह जल चिकित्सा क्या है? जल चिकित्सा के सिद्धान्त क्या हैं? ठण्डे एवं गर्म जल के प्रभाव क्या-क्या हैं ? इस इकाई से आप इन सभी प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम हो सकोगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई से आप

जल चिकित्सा की अवधारणा को जान सकोंगे।

जल चिकित्सा के सिद्धान्तों का अध्ययन करोंगे।

जल चिकित्सा के गुणों को समझ सकोंगे।

चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले जल के तापक्रम का ज्ञान प्राप्त करोंगे।

5.3 जल चिकित्सा की अवधारणा -

प्रकृति ने पृथ्वी पर 3 चौथाई जल ही जल दिया है। शरीर के कुल वजन का 70 प्रतिशत भाग जल ही है। इसी से आप समझ सकते है कि जल तत्व कितना आवश्यक है। गीता मे भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि जल में रस रुप में मै ही विद्यमान है। जल प्राणियों के जीवन का आधार है। जल जीवन के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना सांस लेने के लिए वायु। सांसारिक जीवन का आरम्भ जल से ही माना जाता है जल के द्वारा ही पालन पोषण सम्भव हो पाता है। जल में सभी पदार्थों को अपने में घोलने के गुण के कारण अन्य शेष तत्वों से भिन्न है।

जल में अन्य भौतिक पदार्थो के संयोग से कसैला, मीठा, तीखा, कडुआ, खट्टा, नमकीन तथा गन्दा आदि होने का गुण है। जल के द्वारा अग्नि को नियंत्रित किया जा सकता है जो रोगों के उपचार में बहुत ही सहायक सिद्ध होता है। हमारे शरीर में 70 प्रतिशत भाग केवल जल है। प्राणियों को रोग मुक्त रखने की औषधि जल ही है। जल के द्वारा रोगों को दूर किया जा सकता है। जल केवल प्राण रक्षा के लिए ही प्रयोग में नहीं आता वरन हमारे दैनिक कार्यों में भी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। जल के द्वारा शरीर ही नहीं वरन किसी भी पदार्थ को स्वच्छ किया जा सकता है। जल तीन प्रकार का होता है। मृदुजल, जो कि स्वास्थ्य के लिए अहितकर होता है। तथा बहती दरिया या वर्षा के जल से प्राप्त होता है। प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा जल का प्रयोग कर जल तत्व को नियंत्रित कर रोग का उपचार किया जाता है। कठोर जल, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम होता है। पीने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसे गहरे कुंओं एवं नल का पानी आदि से प्राप्त किया जाता है। तीसरा है अस्थाई कठोर जल, जो कि स्वास्थ्य के लिए कम हितकर होता है जैसे वर्षा का संग्रहीत जल, भूमि पर एकत्र जल या जल को उबालकर उसकी कठोरता को दूर कर तैयार मृदु जल आदि है।

हमारे शरीर की रचना के अनुसार भी इसका महत्व है हमारे शरीर का 2/3 भाग केवल जल ही होता है। इस तत्व के द्वारा है हम अपने शरीर के आन्तरिक व बाहय अंगों को शुद्ध व स्वच्छ रख पाते हैं जल में विजातीय द्रवों व अन्य विषों को अपने में घोलने तथा उन्हें पेशाब, श्वांस एवं पसीने के माध्यम से बाहर निकालने का गुण है। जल के द्वारा हमारे शरीर का रक्त संचार अच्छा हो सकता है। ठंडे जल से स्नान करने पर थकान-गिरावट दूर होकर, शारीरिक, मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। शरीर पर स्नान के अलग-अलग प्रभाव देखने को मिलते हैं। आज कल स्नान विधि बड़ी ही दोषपूर्ण है क्योंकि स्नान के नाम पर केवल साबुन लगाकर दो लोटे गिराकर उसे स्नान मान लेना गलत है

5.4 जल के गुण -

यह शीत और उष्ण को धारक करने की क्षमता रखता है तथा अपनी शीतलता एवं उष्णता को स्थान्तरित भी कर सकता है। जल के इसी गुण का चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयोग किया है।

जल का एक मुख्य गुण सफाई करना होता है यह मल को धोने की क्षमता रखता है तथा शरीर की सफाई करता है। इसी कारण शरीर में स्थित गन्दिगियों एवं मल पदार्थो को जल के माध्यम से आसानी से बाहर निकल जाता है।

यह शरीर की कोशिकाओं पर सकारात्मक प्रभाव रखता है एवं कोशिकाओं की कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि करता है। जल के प्रयोग से शरीर को कोशिकाएं अपने कार्यो को भली-भांति करने लगती हैं। इसी कारण जल से स्नान करने पर ताजगी एवं स्फूर्ति की अनुभूति होती है।

जल का प्रयोग शरीर के आन्तरिक अंगों को भी स्वस्थ बनाता है इसके प्रयोग से आमाशय, आंते, लीवर, किडनी, प्लीहा, आदि अंग स्वस्थ होते हैं।

जल का प्रयोग रक्त को शुद्धि भी प्रदान करता है।

5.5 जल के प्रभाव -

5.5.1 उष्ण जल का प्रभाव

1. अस्थाई तौर पर रकतचाप में वृद्धि तथा बाद में सामान्य रक्तचाप की वापसी।

2. रक्त परिभ्रमण में चमत्कारिक वृद्धि।

3. मांसपेशियों को रक्त परिसंचरण में वृद्धि।

4. पेशियों को आराम मिलना तथा स्नायु के खिंचाव में कमी देखने को मिलती है।

5. हृदय गति में वृद्धि होती है।

6. रक्त की मात्रा में वृद्धि देखने को मिलती है।

7. उष्ण जल के द्वारा शरीर से पसीना तथा अन्य विकारों का विसर्जन करने में सहायता मिलती है।

8. उष्ण जल के प्रयोग से रक्त को अधिक मात्रा में आक्सीजन प्राप्ति से शरीर में पोषक तत्वों का परिवर्द्धन तथा चयापचय की वृद्धि होती है।

9. इसके प्रयोग से श्वांस की गति में वृद्धि होती है।

10. चेतना नाडियों की अक्षमता अशक्ति का शमन करती है।

उष्ण जल के प्रयोग में निम्न सावधानी आवश्यक है -

तेज बुखार, तीव्र हृदय रोग, तीव्र रक्त बहना, खुला घाव, कष्टकारी फोड़ा या व्रण, त्वचा के तीव्र विकार या शीघ्रता से फैलने वाले छूत रोग, रोगों की तीव्रावस्था, रक्त संचार सम्बन्धी रोग, ताप सम्बन्धी नाडी शिथिलता, आमाशय तथा आंतों की अनियमितता, तीव्र जलान्तक रेग, सक्रिय क्षय रोग

5.5.2 ठण्डे जल का प्रभाव

ठंडे जल का शरीर पर अल्पकालीन प्रयोग और ठंडे पानी का दीर्घकालीन प्रयोग शरीर पर अलग-अलग प्रभाव डालते हैं जो कि निम्नलिखित हैं-

(क) ठंडे पानी का शरीर पर अल्पकालीन प्रयोग -

- शरीर के तापमान को बढ़ाता है।
- त्वचा की कार्यशीलता में वृद्धि करता है।
- श्वांस की क्रिया को धीमा करता है।
- पोषण शक्ति में वृद्धि करता है।
- अल्प समय के लिए रक्त कोषों को संकुचित करता है।
- मांसपेशियों को संकुचित करता है।
- हृदय की क्रियाशीलता को बढ़ाता है।
- शरीर की नाडियों को उत्तेजित करता है।
- रक्तचाप को बढ़ाता है।

(ख) ठंडे पानी का शरीर पर दीर्घकालीन प्रयोग -

- शारीरिक तापमान को घटाता है।
- त्वचा की कार्यशीलता में ह्रास उत्पन्न करता है।
- पाचन क्रिया को मध्यम करता है।
- पोषण क्षमता को अधिक प्रभावित नहीं करता है।
- मांसपेशियों को संकुचित करता है।
- हृदय की क्रियाशीलता को कमजोर करता है।
- शरीर की नाडियों पर मृदु प्रभाव डालता है।
- रक्त चाप को घटाता है।
- मांसपेशियों को संकुचित करता है।

रोग उन तत्वों एवं शक्तियों का एक असामान्य अथवा असमनित मानव अस्तित्व को गठित करने वाले भोतिक, मानसिक तथा नैतिक में से किसी एक अथवा अधिक धरातलों पर व्यक्ति से सम्बद्ध प्रकृति के विनाशकारी सिद्धान्त के अनुरूप है।

रोग ध्रुवीकृत अथवा असंतुलित रासायनिक साम्य है। धनात्मक एवम् ऋणात्मक बढ़ी हुई स्थिति का है। नैतिक अथवा मानसिक, व्यक्ति के सम्बन्धी धरातल पर रोग उत्पन्न करती है।

5.6 चिकित्सा के लिए जल का उपयुक्त तापमान -

अति शीतल	Very cold	32 डिग्री से 55 डिग्री थ्
ठण्डा	Cold	56 डिग्री से 65 डिग्री थ्
शीतल	Cool	66 डिग्री से 75 डिग्री थ्
गुनगुना	Tepid	76 डिग्री से 90 डिग्री थ्
सामान्य	Natural	91 डिग्री से 98 डिग्री थ्
उष्ण	Warm	98 डिग्री से 104 डिग्री थ्
अति उष्ण	Very hot	104 डिग्री से अधिक

5.7 जल के सामान्य अनुप्रयोग

5.7.1 जल नेती -

विधि - एक टोंटीदार लोटें में आवश्यकतानुसार ठण्डा या गुनगुना जल डालकर, घुटनों के बल बैठकर, एक नासिका में टोंटी लगाकर, उधर का हिस्सा थोड़ा उंचा करें, तो दूसरी तरफ झुकाते ही पानी दूसरी नासिका से बाहर निकलने लगता है। इसी तरह दूसरी नासिका से भी करें। बाद में भस्त्रिका प्रणायाम करके नाक का पानी बाहर निकाल दें। शुरू में एक नासिका से पानी लेकर मुंह से भी निकाल सकते हैं या मुहं में पानी भरकर नासिकाओं से भी निकाला जा सकता है।

सावधानी - तेज नजला-जुकाम वाले पहले गुनगुने पानी में थोडा नमक मिलाकर प्रयोग करें। शुरू में गुनगुने पानी में नमक मिलकार करें, नहीं तो सिर में जाकर चुभेगा। बाद में अभ्यास होने पर ताजे जल से बिना नमक के ही शौच के बाद नित्य करें।

लाभ - नेत्र-ज्योति और स्मरण-शक्ति बढ़ती है। नजला-जुकाम, नाक, कान और गले के रोग दूर होते हैं।

5.7.2 कुंजर क्रिया

कुंजर क्रिया

विधि - एक-दो किलो गुनगुने पानी में 1-2 तोले नमक मिलाकर एक ही बार में जल्दी से पी लें। कुछ कदम चलने के बाद गले में अंगुली डालकर उल्टी करके निकाल दें। रोगी आवश्यकतानुसार सप्ताह में 1-2 बार, परन्तु अन्य व्यक्ति महीने में 1-2 बार करें।

लाभ - दूषित पित्त-कफ का नाष होता है। भूख खुलकर लगती है। अपच, दमा, खांसी, बेचैनी, भारीपन देर होते हैं।

सावधानी - दाद, एग्जिमा, ब्लड-प्रेशर, हृदय और गुर्दे के रोगी नमक न डालकर सादा पानी न पीयें।

5.7.3 एनिमा

एनिमा

विधि - एनिमा किसी तख्ते, खाट या जमीन पर, उसके पैताने को 3-4 इंच ऊचा रखकर बायें करवट या चित्त लेटकर लें। एनिमा-डिब्बा लेटने के स्थान से 3 फुट की उंचाई तक हो।

पैरों को सीधा न रखकर जरा मोड़ लें। भीतर पानी जाते समय पेड़ू को धीरे-धीरे बायें से दायें मलें। जब पानी पूरा अन्दर जा चुके, तो डिब्बे में थोड़ी पानी रहने पर कैथेडर को, जो गुदा के अन्दर 2-3 इंच तक डाल रखा था, बाहर निकाल दे। थेड़ी देर रूककर पेड़ू को दायें से बाये मलें। इसके बाद 10-15 मिनट तक लेट-लेटे दायें-बायें करवट बदलकर शौच जायं। शौच के लिए जोर न लगायें।

पानी की मात्रा - छः मास से एक साल तक के बच्चे को आधा पाव से एक पाव तक, एक साल से छः साल वाले को आधा किलो तक। इसी तरह आयु के अनुसार बढ़ाते हुए 25 वर्ष के ऊपर वाले को अढ़ाई सेर तक चढ़ाया जा सकता है। अवस्थानुसार मात्रा घटायी-बढ़ायी जा सकती है।

लाभ - जब तुरन्त शरीर में दूषित मल निकाल बाहर करने की जरुरत हो तब एनिमा लेने की सबसे अधिक आवश्यकता पडती है। जुलाव लेने से शरीर को जो हानि पहुंचती हैं, एनिमा लेने से वैसी कोई हानि नही होती। तब बडी अंतडी में इकट्ठा मल बहुत जल्दी निकलकर शरीर को हल्का कर देता है। अगर पानी और शरीर का ताप समान हो तो एनिमा सें बहुत फायदा होता हैं।

सावधानियां - एनिमा हमेशा रोगानुसार सावधानीपूर्वक दें तथा ध्यान रहे शुरूआत में पानी की मात्रा अधिक न हो।

5.7.4 ठण्डा कटि स्नान

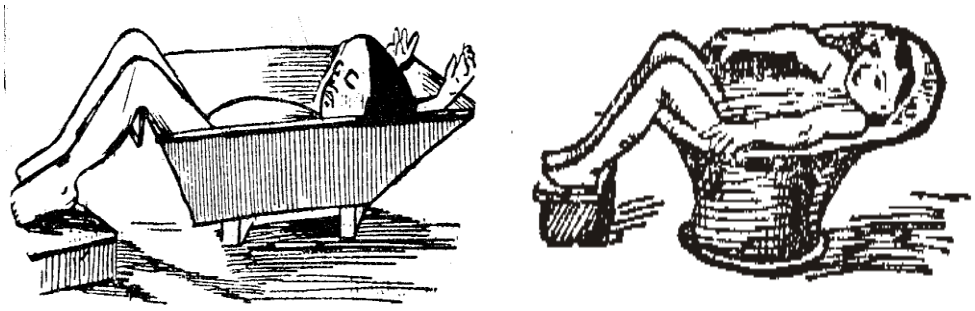

ठण्डा कटि स्नान

विधि - दैनिक साधारण पूर्ण जल-स्नान की आवश्यक-सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए, नाद या कढ़ाहे में इतना पानी भरें कि नाभि तक आये। पैर टब से बाहर चौकी या ईंटों पर रखें। किसी कपड़े से पेट को दायें से बायें और बायें सें दायें और कभी-कभी ऊपर नीचे हल्के-हल्के तेजी से मलें। बीच-बीच में सीवन को भी मलें। सर्दी में ऊपर से नीचे कम्बल गले तक ओढ़ सकते हैं।

विशेष सुझाव - 1. पावं, टांग, छाती, सिर आदि सूखे रहें।

2. पांच मिनट से शुरू करके क्रमशः यथाशक्ति 1-2 मिनट बढ़ाते हुए 30 मिनट तक ले जाये।

3. निर्बल और बच्चे 1 से 5 मिनट तक करें।

4. साधारण स्नान इसके दो घण्टे बाद या पहले करें।

5. स्नान के बाद गीले भाग को सूखे तौलिए से पोंछ डालें।

लाभ - सारे शरीर में धनात्मक विद्युत-चुम्बकीय शक्ति को बढ़ाने में जल-चिकित्सा की यह प्रमुख उपचार-विधि है। ज्वर, अर्जीण, कब्ज, मन्दाग्नि, पेट की गर्मी, बवासीर, सिर दर्द, मोटा, क्षयरोग, लकवा, कैन्सर, अनिद्रा पागलपन, मिर्गी, मूत्र अवरूद्धता, नंपुसकता, बांझपन, प्रदर आदि स्त्री रोगों में रामबाण है। इससे स्नायु-मंडल और आंतें सशक्त होती है। इससे आन्त्रिक स्राव उन्नत होता है।

5.7.5 मेहन स्नान

विधिः- दैनिक साधारण पूर्ण जलस्नान की आवश्यक सूचनाओं को ध्यान में रखकर, टब में अर्द्धचन्द्राकार चौकी या स्टूल या चार ईंटों पर नंगे बैठें और पांव टब के बाहर रखें। अथवा टब व चौकी के अभाव में पानी भरी बाल्टी के आगे स्टूल पर या बाल्टी के आधे भाग के ऊपर फट्टा रखें और उस पर बैठें।

पुरूषः- मूत्रेन्द्रिय के ऊपर की चमड़ी को आगे खींचते हुए, लिंगमुण्ड को पूरी तरह ढककर बायें हाथ की अंगुलियों से पकड़ें रखें। अब दायें हाथ से कपड़े को पानी में भिगो-भिगोकर लिंग के अग्रभाग को धीरे-धीरे मलें।

स्त्रियां- बायें हाथ से यौनि के दोनों छोरों को पकड़कर, दायें हाथ से भागों को उसी तरह धोयें।

लाभः-इस स्नान से अनिद्रा, स्वप्नदोष, हिस्टीरिया, स्नायु-दुर्बलता, नंपुसकता, उन्माद, प्रदर, वीर्य-स्खलन तथा अन्य मासिक व मस्तिष्क एवं रीढ़ सम्बन्धी रोग दूर होते है।

5.7.6 पूरे शरीर की गीली चादर लपेट

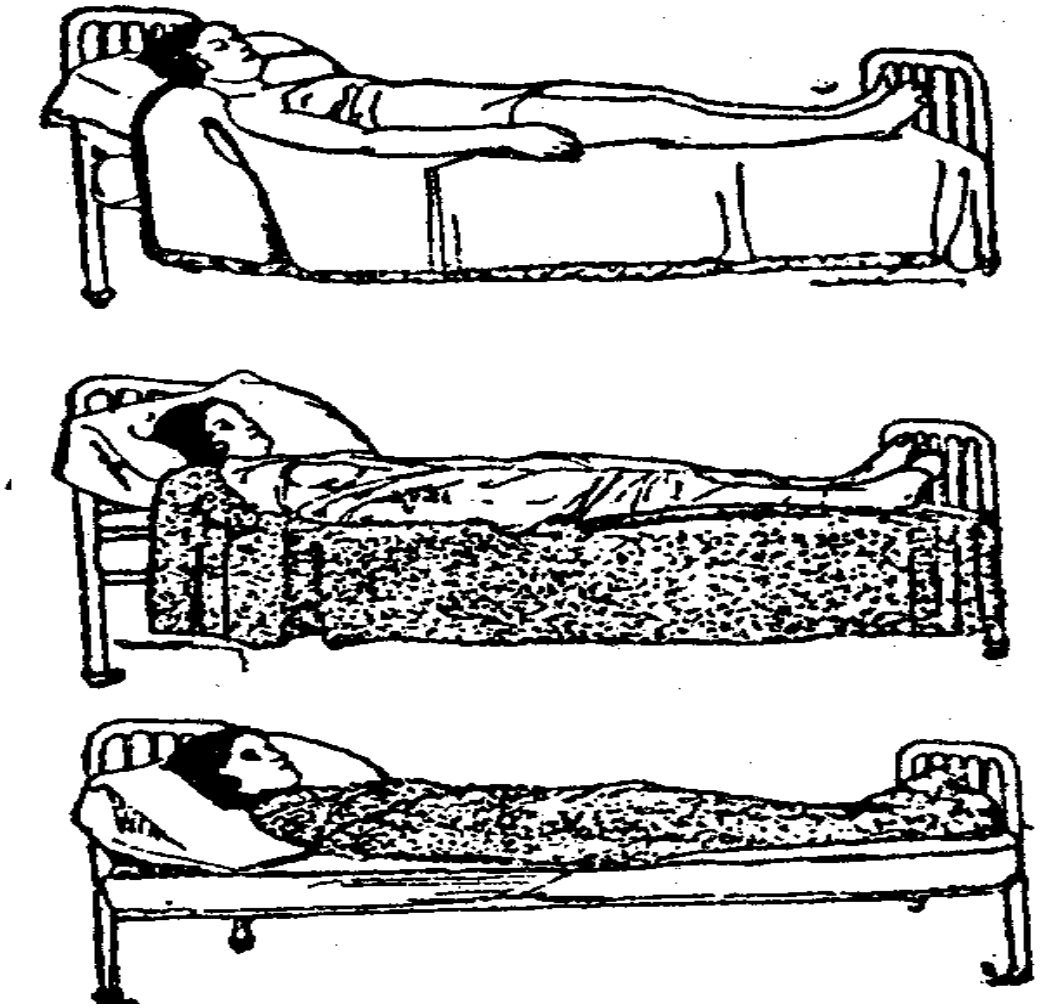

पूरे शरीर की गीली चादर लपेट

विधिः- गीली चादर लपेट को वाष्प-स्नान का प्रतिरूप कहा गया है, क्योंकि वाष्प-स्नान के समान ही गीली चादर लपेट से लाभ होता है। महात्मा गांधी इस लपेट की बड़ी प्रशंसा करते थे। उन्होंने अपने पुत्र को इसके द्वारा भयंकर रोग से मुक्त किया था।

लाभः- तीव्र ज्वर, चेचक, पुराना मलेरिया, खसरा, कब्ज, अपच, मोटापा, उन्माद, यकृत दोष, यकृत दोष, मधुमेह, क्षय, स्कर्वी, स्नायु-रोग, अनिद्रा, डिप्रेशन, जलोदर, मिर्गी, गठिया, एग्ज़िमा आदि में लाभकारी है।

1. छाती की गीली चादर लपेट

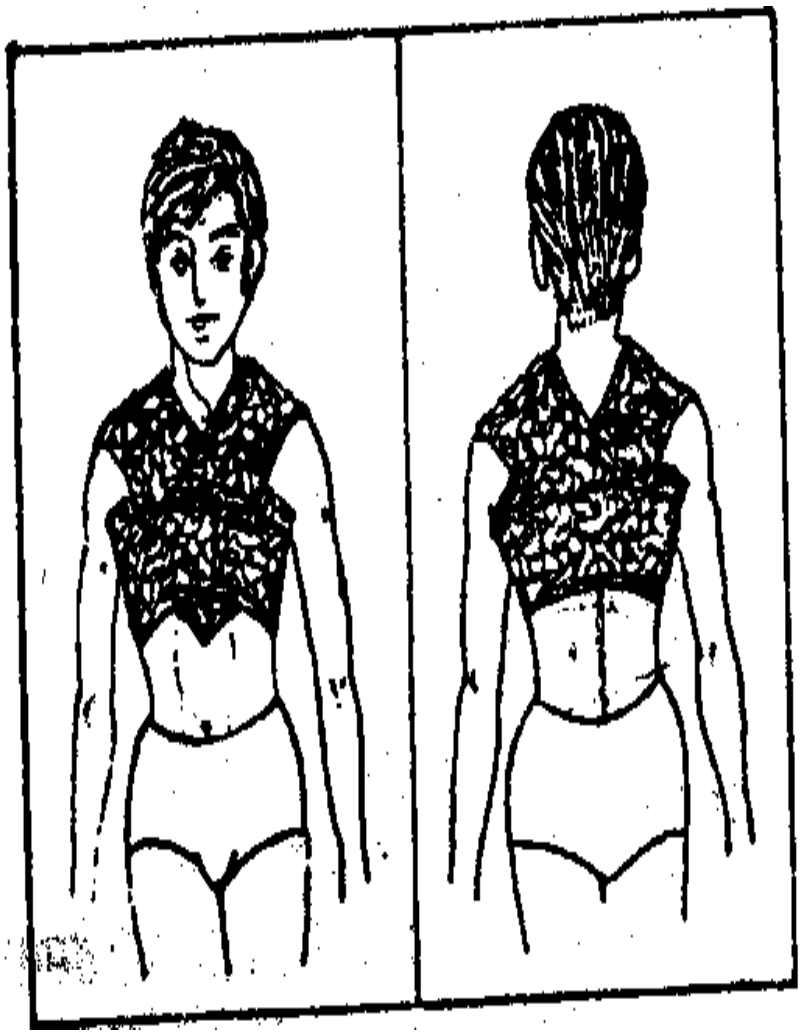

छाती की गीली चादर लपेट

विधियॉ: टब और मिट्टी के अभाव में पानी की गीली लपेट पट्टी काम आती है और शरीर के हर अंग पर उसका प्रयोग हो सकता है। अति दुर्बल रोगी को भी यह सरलता से दी जा सकती है। आवश्यकतानुसार सूती मोटा कपड़ा 9 से 12 इंच चौड़ा तथा 5 से 8 फीट लम्बा हो, ताकि इसकी 3-4 तहें हो सकें या 3-4 बार लपेटा जा सके। हर प्रयोग से पहले सूती कपड़ा पानी में भिगोकर निचोड़े लें। उसके ऊपर लपेटने के लिए ऊनी कपड़ा भी उतना ही होना चाहिए। अंग पर लपेट एयर टाईट हो, परन्तु रक्त संचार में बाधा न पड़े। लपेट से पहले शरीर को व्यायाम, सूर्य-स्नान आदि से गरम कर लें। लपेट के समय आराम करें। लपेट खोलने के बाद गीले स्थान को हथेली से रगड़कर गरम करें। यह लपेट गरम-ठण्डे सेंक का लाभ देती है।

लाभः- यह डिप्थीरिया, खांसी, दमा, श्वास-नली तथा टांसिल्स की सूजन में गुणकारी है।

अभ्यास प्रश्न

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) जल का गुण है -

अ. उष्णता ब. शीतलता

स. सफाई करना द. सभी

(ख) डा. मैकगूगन का कथन है -

अ. जो लोग सुबह जल पीकर मल त्याग करने जाते हैं वे आंतों की शक्ति बढ़ाते हैं।

ब. सभी रोग एक होते हैं तथा उनकी चिकित्सा भी एक है।

स. तीव्र रोग शत्रु होते हैं तथा जीर्ण रोग मित्र होते हैं।

द. प्रकृति स्वयं चिकित्सक है।

(ग) उष्ण जल का प्रयोग नहीं किया जाता -

अ. तेज बुखार में ब. हृदय रोग में

स. तीव्र रक्त बहने में द. इन सभी में

(घ) ठण्डे जल का अल्पकालीन प्रयोग

अ. शरीर के तापमान को बढ़ाता है।

ब. शरीर के तापमान को घटाता है।

स. शरीर को बीमार बनाता है।

द. शरीर में चर्म रोग पैदा करता है।

(ड.) चिकित्सा में प्रयुक्त सामान्य जल का तापक्रम है -

अ. 32 से 550 डि0फ्रा0

ब. 91 से 980 डि0फ्रा0

स. 98 से 1040 डि0फ्रा0

द. 104 से 1100 डि0फ्रा0

5.8 सारांश

जल तत्व हमारे शरीर का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है जिसका प्रयोग चिकित्सा के रूप में भी (महाऔषधि के रूप में) किया जाता है। वास्तव में जल ही जीवन है।

भिन्न-भिन्न तापक्रम का जल चिकित्सा के क्षेत्र में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रमुख होता है। यद्यपि ठण्डे जल का प्रयोग एवं गर्म जल का प्रयोग दोनों ही रूप में जल तत्व उपयोगी है किन्तु फिर भी इसें कुछ सावधानियों की आवश्यकता होती है। इन सावधानियों को ध्यान में रखकर चिकित्सा इस जल तत्व का प्रयोग चिकित्सा के क्षेत्र में करते हुए विभिन्न रोगों का उपचार किया जा सकता है।

5.9 शब्दावली

पर्यायवाची - समान अर्थ वाला

वृहद शास्त्र - बड़ा ग्रन्थ

अनुप्रयोग - अनुशासति ढंग से प्रयोग

दीर्घकालीन - लम्बे समय तक

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) द (ख) अ (ग) द (घ) अ (ड.) ब

5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तर प्रदेश।

2 . शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली ।

4. सक्सेना ओमप्रकाश, (2010)वृहद प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवा सदन मथुरा ।

5. शर्मा श्रीराम, (1998) जीवेम शरद: शतम्, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा।

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. जल चिकित्सा से आप क्या समझते हो इसके महत्व पर प्रकाश डालिये?
2. जल के गुणों पर प्रकाश डालते हुए ठण्डे जल के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रयोगों की व्याख्या करें?
3. विभिन्न रोगों में जल चिकित्सा के प्रयोग लिखते हुए जल चिकित्सा की सावधानियां लिखिए?
4. विभिन्न तापक्रम के जल की तालिका बनाइये तथा उष्ण जल के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रयोगों की व्याख्या करें?

इकाई 6 जल चिकित्सा की विविध विधियां

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 जल चिकित्सा की विभिन्न विधियां

6.3.1 कटिस्नान

6.3.2 रीढ़ स्नान

6.3.3 पैर एवं बाह स्नान

6.3.4 जेट स्प्रे स्नान

6.3.5 ठण्डे पानी से स्नान

6.3.6 गीली चादर स्नान

6.3.7 पूर्ण डूब का ठण्डा स्नान

6.3.8 बैंरड स्नान

6.3.9 तलवा स्नान

6.3.10 रीढ या पीठ स्नान

6.3.11 भाप स्नान

6.3.12 नेत्र स्नान

6.3.13 गुदा स्नान

6.3.14 योनि स्नान

6.4 सारांश

6.5 शब्दावली

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.8 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पंचमहाभूतों में जल तत्व दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है जिसके शरीर में सम अवस्था (संतुलित अवस्था) में बना रहना अत्यन्त अनिवार्य है। जब तक यह तत्व समअवस्था में रहता है तब तक शरीर स्वस्थ बना रहता है तथा इस तत्व के विकृत होने पर भिन्न-भिन्न रोग पैदा होते हैं।

पिछली इकाई में आपने जल के गुणों एवं प्रयोग के विषय में पढ़ा परन्तु इसे पढ़ने के उपरान्त यह प्रश्न आपके मन में उठना स्वभाविक ही है कि इस जल तत्व के प्रयोग की विधियां क्या हैं तथा किन-किन यंत्रों के द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है।

प्रस्तुत इकाई में आप इन्हीं प्रश्नों के उत्तर का अध्ययन करोंगे तथा विभिन्न स्नानों की विधियों तथा लाभों का अध्ययन करोंगे। इसके साथ-साथ इस इकाई में आपको प्राकृतिक चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न यंत्रों की जानकारी मिलेगी।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप

1. विभिन्न स्नानों का अध्ययन करेंगे।
2. प्राकृतिक चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले यंत्रों का अध्ययन करोगे।
3. जल चिकित्सा को समझ सकोंगे।
4. स्नान में प्रयुक्त सावधानियों को जान सकोंगे।

6.3 जल चिकित्सा की विविध विधियाँ -

6.3.1 कटि-स्नान - तीव्र रोगों में स्नान जल्दी-जल्दी और कई बार तथा जीर्ण रोगों में 1-2 बार ही देना चाहिए। कटि स्नान से सभी रोगों में लाभ पहुँचता है कटि-स्नान से पेडू की बड़ी हुई गर्मी कम होती है। इस स्नान से आतों में रक्त का संचार बढ़ जाता है जिससे वहॉ जमा मल शरीर से बाहर होने

में मदद मिलती है। कटि स्नान पेट को साफ करने के साथ-साथ एक यकृत तिल्ली एवं आंतों के रस स्राव को भी बढ़ाता है। जिससे पाचन शक्ति में वृद्धि होती है। ज्वर, सिरदर्द, भू-अवरूढ़ता, कब्ज गैस, बवासीर, पीलिया, मदाग्नि, आंतों की सडान्ध पेट की गर्मी, अजीर्ण तथा उदर सम्बन्धी रोगों से में बहुत ही उपयोगी है।

सामग्री- कटि स्नान टब, छोटा तौलिया।

(अ) गर्म कटि स्नान- पानी का तापमान शरीर के तापमान से कुछ अधिक सहने योग्य अर्थात 100-104 डिग्री से0 हो। इस स्नान को लेने से पूर्व रोगी को ठंडा पानी पिलाना चाहिए तथा सिर पर गीला कपड़ा रख देना चाहिए। स्नान लेते समय रोगी के पैरों को लकड़ी की चौकी पर रखना चाहिए ताकि पैर भीगे नहीं। स्नान लेते समय एक तौलिए से पेट पर मालिश या घर्षण करते रहना चाहिए। पानी के तापमान को बनाए रखने के लिए समय-समय पर उसमें गर्म पानी डालते रहना चाहिए। इस स्नान को 5 से 10 मिनट तक देना चाहिए। स्नान के पश्चात रोगी को ठंडे जल से स्नान भी कराना चाहिए।

सावधानियां - उच्च रक्तचाप, कमजोरी और बुखार की स्थिति तथा रजोधर्म में यह स्नान नहीं देना चाहिए।

लाभ- पेट के भीतरी अवयवों की सूजन, दर्द, रजोधर्म के दौरान होने वाले दर्द से राहत मिलती है।

(ब) ठंडा कटि स्नान- टब में इतनी मात्रा में पानी भरें ताकि मरीज टब में जब बैठे तो पानी नाभि तक पहुच जाए। मरीज को एक तौलिया देकर उसे पेट पर बॉयी से दांयी ओर को धीरे-धीरे रगड़ने

को कहना चाहिए। शरीर के वह भाग जो टब के बाहर है वह पूरी तरह से सूखे रहने चाहिए तथा स्नान के दौरान या इसके बाद भी भगना नहीं चाहिए। पैरों को लकड़ी की चौकी पर रखना चाहिए। इस स्नान को 10 से 15 मिनट तक किया जा सकता हे। इस स्नान के बाद रोगी को तेज गति से घूमना चाहिए।

सावधानियां - पेट के अंगों में सूजन और तंत्रिकाओं की दुर्बलता तथा मूत्राशय मलाशय में पीड़ा, कमर में दर्द, बुखार उल्टी या दस्त में इस स्नान को नहीं लेना चाहिए तथा मासिक धर्म के दिनों में भी यह वर्जित है।

लाभ- ठंडा कटि स्नान से करीब-करीब सारी बीमारियों में आराम मिलता है। कब्ज, बदहजमी, मोटापे से छुटकारा दिलाता है।

(स) गर्म ठण्डा कटि स्नान (आल्टरनेटिव कटि स्नान)- इस स्नान के लिए दो टब रखने चाहिए। एक टब में साधारण ठंडा पानी तथा एक में शरीर से थोड़ा गर्म पानी (104 डिग्री0 फा0) लेना चाहिए।

स्नान कराने से पहले रोगी को ठंडा पानी पी लेना चाहिए। सिर पर गीले कपड़े की एक पट्टी रखनी चाहिए। तथा रोगी को पहले 5 मिनट गर्म पानी के टब में बैठा देना चाहिए। समय होने पर उसे तुरन्त ठंडे पानी के टब में तीन मिनट बैठाना चाहिए और तौलिए से पेड़ पर हल्का घर्षण करते रहना चाहिए। गर्म पानी के टब का तापमान बनाए रखने के लिए उसमें गर्म पानी मिलाते रहना चाहिए। तीन मिनट ठण्डे पानी में बैठने के बाद रोगी को गरम पानी के टब में बैठाना चाहिए। इस प्रक्रिया को तीन बार करना चाहिए। इस प्रकार गर्म पानी के टब में तीसरी बार बैठकर स्नान का अंत कर देना चाहिए। स्नान के पश्चात रोगी को ठंडे पानी से स्नान करा देना चाहिए। गर्म कटि स्नान से प्रारम्भ कर ठंडे पर ही समाप्त करना चाहिए।

लाभ- इस स्नान से गैस और कब्ज के कारण होने वाले रोगों से निजात मिलती है। तंत्रिकाओं की दुर्बलता के कारण काफी समय से बनी हुई सूजन दूर करने में जननांग-मूत्रीय अवयवों के हाईपरएस्थीसिया, शियाटिका, लुम्बैगो आदि में मदद मिलती है।

(द) फ्रिक्शन सिटज स्नान- कटि स्नान टब में इस स्नान के लिए विशेष रूप से बनाया गया स्टूल रखा जाता है। इस टब में ठंडा पानी भरा जाता है तथा स्टूल का ऊपरी हिस्सा सूखा छोड़ दिया जाता है इसके बाद मरीज अपने पैर बाहर रखकर स्टूल पर बैठता है। महिला रोगी नर्म सूती कपड़े को पानी में भीगोकर अपने जननांग को हल्के-हल्के ऊपर से नीचे की ओर धोती है केवल बाहर-बाहर से और पुरूष मरीज को अपने शिश्न की ऊपरी त्वचा को ठंडे पानी से धोना चाहिए। उसे यह त्वचा अपने

बांए हाथ की बीच वाली और आगे की ऊंगली के बीच पकड़कर जहॉ तक संभव हो सके उसे खींचकर शिश्न के शिरोभाग पर रखना चाहिए ताकि यह टब के पानी की ऊपरी सतह को छू सके। तथा शिश्न का पिछला हिस्सा सूती कपड़े से हल्के-हल्के साफ करना चाहिए। शिश्न के अगले भाग से कपड़ा न छुएं इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

सावधानियां - इस स्नान के तुरन्त बाद ही व्यायाम या तेज कदम ताल कर शरीर में पुनः गर्माहट पैदा करनी चाहिए।

6.3.2 रीढ़-स्नान- रीढ़ स्नान एक विशेष प्रकार से तैयार टब के द्वारा कराया जाता है। टब के बीचों-बीच एक नली होती है जिसमें छोटे छिद्र होते हैं। इन छिद्रों की सहायता से पानी की फहारों से पूरी रीढ़ की मालिश में सहायता मिलती है। इस टब पर मरीज को लेटना पड़ता है। यह बहुत ही सुविधाजनक होता है कटि स्नान की भांति यह स्नान भी ठंडे न्यूट्रल और गर्म तापमानों पर कराया जाता है।

SPINAL BATH TUB

(अ) ठंडा रीढ़ स्नान- इस स्नान से पहले रोगी के कपड़े हटाकर उसे टब पर इस प्रकार लिटाना चाहिए जिससे कि गर्दन के नीचे से लेकर आखिरी सिरे तक उसकी पूरी रीढ़ इस नली से छूती रहे।

रोगी को जूते अवश्य ही पहनाने चाहिए ताकि पैर न भीगें। इस स्नान को कराने के लिए पानी का तापमान 18 से 24 डिग्री0 से0 के बीच होना चाहिए तथा 15 से 20 मिनट ही इस स्नान को रोगी को कराना चाहिए। स्नान की अवधि पूरी होने पर रोगी को व्यायाम या तेज कदम ताल करा कर पुनः शरीर को गर्म कराना चाहिए।

लाभ- ठंडे रीढ़ स्नान से थकान, उच्च रक्तचाप और तनाव से मुक्ति मिलती है।

सावधानी - सर्वाइकल व लम्बर की समस्या तथा आर्थराइटिस के मरीजों को यह स्नान नहीं करना चाहिए।

(ब) न्यूट्रल रीढ़ स्नान- इस स्नान से पहले मरीज को 1 से 2 गिलास पानी पिलाना चाहिए तथा सिर पर ठण्डे पानी का तौलिया रखना चाहिए। इस स्नान में पानी का तापमान 34 से 36 डिग्री से0 तक रखना चाहिए। यह स्नान ठंडे रीढ़ स्नान की तरह से ही किया जाता है। स्नान के बाद व्यायाम नहीं करना चाहिए रोगी को आराम कराना चाहिए।

लाभ- इस स्नान से शान्ति, प्रसन्नता व स्फुर्ति से भरकर रोगी अच्छा महसूस करता है। इससे तंत्रिका-प्रणाली को कमर की मांसपेशियों को तथा कमर के निचले हिस्से में होने वाले दर्द की स्थिति में आराम मिलता है। सियाटिका के इलाज में बहुत ही लाभकारी है।

(स) गर्म रीढ़ स्नान- इस स्नान में पानी का तापमान 40 से 45 डिग्री से0 होना चाहिए। इस स्नान को लेने की विधि भी न्यूट्रल रीढ़ स्नान की तरह ही है।

लाभ- इसके द्वारा तंत्रिकाओं को सक्रिय किया जाता है तनाव की स्थिति में यह महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। कमर दर्द व सियाटिका में लाभकारी है।

6.3.3. पैर व बॉंह स्नान - यह पैर और बॉंह का स्नान है। इसके द्वारा रक्त के संचार में वृद्धि होती हे। इस स्नान से विजातीय द्रव को पसीने के रूप में शरीर से बाहर करने में मदद मिलती है। इस स्नान से शरीर के रक्त संचार को स्वस्थ करने में मदद मिलती है।

(अ) ठंडा पैर स्नान-इस स्नान के लिए एक बाल्टी में 8 से 12 डिग्री से0 तक के पानी को 16 से 18 इंच की ऊंचाई तक भर लें। रोगी को एक स्टूल पर बिठाकर उसके पैरां को पानी की बाल्टी में डालना चाहिए। इस स्नान को करने की अवधि 1 से 5 मिनट तक होनी चाहिए।

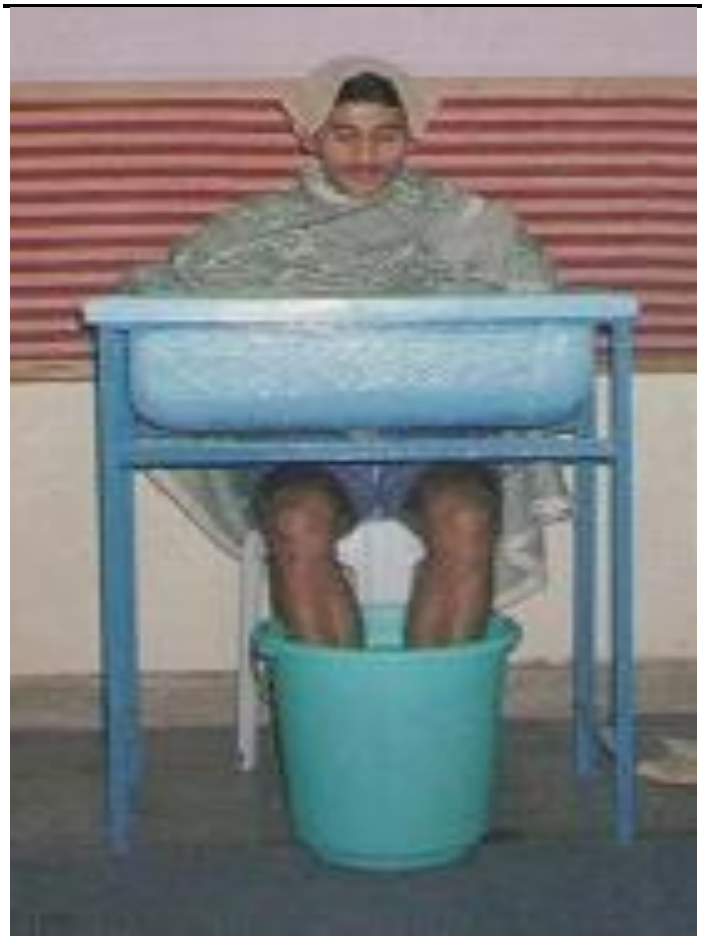

लाभ- रजोधर्म में अत्यधिक रक्त स्त्राव में आराम मिलता है। मोच, दर्द सूजे हुए पैर, तथा मूत्रविकारों में भी लाभकारी है।

सावधानियां - जननांग-मूत्रीय अवयवों, गुर्दे की सूजन, जिगर की सूजन में यह स्नान नहीं कराना चाहिए।

(ब) गर्म पैर स्नान- इस स्नान के लिए, एक बाल्टी में 40-45 डिग्री0 से0 तापमान के पानी में रोगी के पैरों को डालकर एक स्टूल पर बिठाना चाहिए। पैर पिंडलियों तक पानी में डूबे रहने चाहिए और मरीज को कम्बल से पूरी तरह ढक देना चाहिए। केवल सिर खुला रहेगा। इस स्नान को कराने से पहले मरीज को 1-2 गिलास पानी पिलाना चाहिए तथा सिर पर ठंडे पानी का तौलिया रखना चाहिए। इस उपचार को 15 मिनट तक देना चाहिए।

लाभ- गर्भाशय और डिम्बाशय में रक्त के संचार को बढ़ाता है। जोड़ों के दर्द, सिर दर्द, मोच, पैरों के ठंडे रहने की वजह से होने वाले जुकाम से राहत मिलती है। जुकाम, खॉसी और अस्थमा की स्थिति में भी यह स्नान लाभकारी है।

सावधानियां - उच्च रक्तचाप, कमजोरी और हृदय सम्बन्धी रोगों में यह स्नान वर्जित है।

(स) बॉह स्नान- इस स्नान के लिए एक टब या बाल्टी में 40 से 45 डिग्री से0 तापमान पानी भर लें। मरीज को 2 गिलास ठंडा पानी पिला कर उसके दोनों हाथों को पानी में इस प्रकार डुबोना चाहिए कि हाथ कुहनियों तक पानी में डुब जाए। मरीज को छाती से कंबल लपेटकर रखना चाहिए। 15 मिनट के पश्चात हाथों को 1 मिनट ठण्डे पानी में भिगोना चाहिए। तत्पश्चात हाथों को सूखे तौलिए से भली भांति पौछना चाहिए।

लाभ- हाथों की रक्तवाहिकाओं को फैलाकर रक्त संचार को सुचारू करता है। हाथों, गर्दन, कंधों के दर्द में लाभ मिलता है। इससे पसीना भी निकलने में मदद मिलती है।

सावधानियां - उच्च रक्त चाप और हृदय रोगी इस स्नान को न करें।

(द) कंट्रास्ट पैर स्नान- इस स्नान को करने के लिए दो बाल्टीयॉ लें, एक में गर्म पानी (40-45 डिग्री से0) तथा दूसरी बाल्टी में ठण्डा पानी लें रोगी को 2 गिलास ठंडा पानी पिलाकर सिर पर ठंडे पानी का तौलिया रखें तथा उसके पैरों को गर्म पानी की बाल्टी में डालकर उसे 3 मिनट छोड़ दें। रोगी को चादर से चारों तरफ से ढक दें इसके बाद 1 मिनट के लिए रोगी के दोनों पैरों को ठण्डे पानी की बाल्टी में डुबा दें। इसी क्रम से इस पूरी क्रिया को 3 बार करें। तत्पश्चात रोगी के पैरों को सूखे हुए तौलिए से साफ कर हल्का घर्षण देना चाहिए।

लाभ- पैर, घुटना, कमर आदि दर्दों में लाभप्रद है।

(य) कंट्रास्ट बॉह स्नान- इस स्नान को भी कंट्रास्ट पैर स्नान की भांति ही किया जाता है। इसे करने की पूरी प्रक्रिया हाथों पर होगी, पैरों की जगह हाथों को टब में डुबाया जायेगा।

लाभ- इससे हाथों की ओर रक्त संचार अच्छा होता है तथा हाथों का दर्द, गर्दन दर्द, सिर दर्द तथा कमर दर्द में लाभकारी है।

(र) पैर और हाथों का गर्म स्नान- इस स्नान को एक साथ हाथ व पैर पर किया जाता है। इसके लिए मरीज को 2 गिलास पानी पिलाकर सिर पर ठंडे पानी का तौलिया रखकर एक स्टूल पर बैठा देना चाहिए तथा एक टब में उसके दोनों हाथों को और एक टब में उसके दोनों पैरों को डुबा देना चाहिए। पानी के तापमान को धीरे-धीरे बढ़ाते चला जाना चाहिए जो कि 40 से 45 डिग्री0 से0 तक नियंत्रित

रहना चाहिए रोगी को एक कंबल से चारों तरफ से ढक देना चाहिए। इस स्नान की अवधि 15 मिनट है। उपचार के शीघ्र बाद रोगी को ठंडे पानी से स्नान कराना चाहिए।

6.3.4. जेट स्प्रे स्नान - जेट स्प्रे एक ऐसा यंत्र है जिसमें से पानी की तेज धार बड़े दबाव के साथ निकलती है। जेट स्प्रे स्नान सभी तापमानों पर चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। इसमें तेजी से निकलने वाली धार को शरीर के भाग पर डालकर चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है।जेट स्प्रे स्नान कई प्रकार से दिए जा सकते हैं।

(क) ठण्डा जेट स्प्रे स्नान- इस उपचार को करने से पहले रोगी को 1-2 गिलास पानी पिलाकर करना चाहिए। स्प्रे करने के लिए ठंडा पानी (18-24 डिग्री से0) का प्रयोग किया जाता है इसमें रोगी को 5 से 6 फीट की दूरी से जेट स्प्रे से पानी की धार को पहले रोगी के पिछले हिस्से पर लक्षित किया जाता है। स्प्रे पैरों से ऊपर की ओर किया जाता है। इसके बाद सामने वाले शरीर पर पैरों से धीरे-धीरे शरीर के ऊपरी भाग पर स्प्रे करके उपचार किया जाता है। इस उपचार की अवधि 10 सेकंड से लेकर 3 मिनट तक।

लाभ- मांसपेशियों और जोड़ों के दर्द में सहायक है। पाचन तंत्र और रक्त संचार को सुचारू करता है।

सावधानी - 1. जेट स्प्रे छाती पर सावधानी से देना चाहिए। चेहरे पर कभी स्प्रे नहीं करना चाहिए।

2. जेट स्प्रे शरीर के अवयवों मं पुरानी सूजन हो तो नहीं देना चाहिए।

3. हृदय रोगी और त्वचा रोगी को यह स्नान नहीं करना चाहिए।

(ख) गर्म जेट स्प्रे स्नान- इस स्नान को ठंडे जेट स्प्रे की तरह ही रोगी को देना चाहिए। इसमें पानी का तापमान 40-45 डिग्री से0 तक नियंत्रित रखना चाहिए इस स्नान की अवधि 30 सेकंड से 5 मिनट होनी चाहिए।

लाभ- दर्द, थकान, पीलिया, सर्दी में लाभप्रद है।

(ग) न्यूट्रल जेट स्प्रे स्नान- इस स्नान में पानी का तापमान 32 से 36 डिग्री से0 तक बढ़ाया जा सकता है। इस स्नान की पूरी विधि गर्म तथा ठण्डे स्प्रे स्नान की भांति ही होगी। इस स्नान की अवधि 2 से 3 मिनट होनी चाहिए।

लाभ- आर्थराइटिस स्पोडिलाइटिस तथा रक्त संचार में लाभकारी है।

सावधानियां - बुखार, कमजोरी, मासिक धर्म, सूजन, हृदय रोगी आदि को यह स्नान नहीं देना चाहिए।

(घ) आल्टरनेट जेट स्प्रे स्नान- इस स्नान में गर्म और ठण्डे दोनों प्रकार के स्प्रे से उपचार किया जाता है। इसमें गर्म पानी का स्प्रे जिसका तापमान 40 से 42 डिग्री0 से0 तक रखा जाता है। इसकी अवधि तीन मिनट तक होती है। इस प्रकार दोनों स्नानों का प्रयोग करके उपचार किया जाता है।

लाभ- मोटापे, गठिया, रूमेटिज्म, पुराना दर्द, सूजन, लगड़ी का दर्द, तंत्रिकाओं की दुर्बलता आदि की चिकित्सा में बहुत लाभ मिलता है।

6.3.5 ठंडे पानी से स्नान- ठंडे पानी से नहाने की अवधि और तापमान रोगी की दशा पर निर्भर करता है। इसमें केवल ठंडे जल से रोगी को स्नान कराना होता है।

लाभ- ठंडे पानी से स्नान थकान और सुस्ती दूर होती है। मानसिक शान्ति मिलती है। पूरे शरीर का रक्त संचार अच्छा होता है।

सावधानियां - हड्डियों के दर्द व सूजन होने पर रोगी को यह स्नान नहीं कराना चाहिए। कमजोर रोगी को सावधानीपूर्वक स्नान कराना चाहिए।

6.3.6 गीली चादर स्नान - इस स्नान के पूर्व रोगी के पूरे शरीर पर घर्षण कर गर्म कर देना चाहिए तत्पश्चात एक बड़ी चादर को सहने योग्य ठंडे पानी में तर कर निचोड़ लेना चाहिए। अब रोगी कोपानी के टब में खड़ा कर देना चाहिए। रोगी के दोनों हाथों को ऊपर उठाकर गीली चादर बगल के नीचे से पूरे शरीर पर लपेट देनी चाहिए। 5-10 मिनट बाद गीली चादर को शरीर से हटाकर सूखी चादर लपेट कर शरीर को रगड़ना चाहिए।

लाभ- विजातीय द्रव्य निकालने में मदद करता है तथा जीवनी शक्ति बढ़ाता है।

6.3.7 पूर्ण डूब का ठंडा स्नान - इसे ही फुल इमर्सन बाथ कहा जाता है। इस स्नान को देने के लिए रोगी की लम्बाई के बराबर टब की आवश्यकता होती है। टब को ताजे ठंडे पानी से भरकर रोगी के सिर को ठंडे जल से धोकर टब में पीठ के बल इस प्रकार लिटाया जाता है कि उसका सिर टब के बाहर रहे तथा समूचा शरीर पानी में डूब जाये। रोगी को अपने आप पूरे शरीर को मलने को कहा जाता है। इस स्नान की अवधि 10 सेकेण्ड तक होती है। इसके पश्चात रोगी को टब से बाहर निकालकर तौलिया से भली भांति रगड़कर पानी को सुखा दिया जाता है।

लाभ- रक्त संचार को सही करता है तथा जीवनी शक्ति में वृद्धि करता है।

6.3.8 ब्रैंड-स्नान - इस स्नान की खोज ब्रैंड ने की थी। अतः उन्हीं के नाम पर इसे ब्रैंड स्नान कहते हैं। इसमें रोगी के सिर और चेहरे को ठंडे पानी से धोकर सिर पर ठंडे तौलिया को निचोड़कर लपेट दिया जाता है। फिर इमर्सन बाथ की तरह रोगी को ठंडे जल से भरे टब में पीठ के बल लिटा दिया जाता है। सिर को टब से बाहर रखा जाता है। इसमें दूसरे व्यक्ति की सहायता से रोगी के शरीर को 2 से 3 मिनट तक तेज-तेज रगड़ा जाता है। उसके कुछ सेकेण्ड में रोगी टब में बैठ जाता है। उसके सिर पर ठंडे पानी की बाल्टी डाल दी जाती हे। उसके बाद वह पुनः टब में लेट जाता है। रगड़ने की क्रिया पुनः शुरू हो जाती है। 5 मिनट बाद रोगी टब में उठकर पुनः बैठ जाता है फिर सिर पर ठंडे पानी की एक बाल्टी डाल दी जाती हे। यही क्रम 10 से 20 मिनट तक चलता है। इसके बाद रोगी के शरीर को पोंछकर उसे कम्बल ओढ़ाकर बिस्तर पर लेटा देना चाहिए।

लाभ- नाडी केन्द्रो को शक्ति प्रदान करता है।

सावधानी-रोगी यदि ठंड अधिक महसूस करे या उसे कप-कप आने लगे तो स्नान बंद कर उसे तुरन्त तौलिया से घर्षण देकर आराम करनें दें।

6.3.9 तलवा स्नान - ओस से भरी घास या भीगी जमीन, फर्श या पत्थरों पर अपनी शक्ति के अनुसार 5 से 20 मिनट तक टहले और उसके बाद तलवों को सूखी तौलिया से रगड़ें तथा हथेली से थपथपाएं।

लाभ- आंखों के लिए लाभकारी तथा तलवों की जलन में रामबांण हैं।

6.3.10 रीढ़ या पीठ स्नान - इसे Spinal Bath ठंजी भी कहते हैं। एक लम्बी तौलिया को ठंडे जल से भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ लीजिए।उसके बाद उसके दोनों सिरों को दोनों हाथों से पकड़कर और पीछे की तरफ ले जाकर अपनी रीढ़ की हड्डी को उससे रगड़िए। इस स्नान की अवधि 5 मिनट से 10 मिनट तक होती है।

6.3.11 भाप स्नान - सामग्री- लकड़ी या फाईबर की एक विशेष प्रकार की पेटी।

1 स्टूट, 1 कुकर, 1 लम्बी पाईप !

अवधि- 10-15 मिनट

विधि- भाप स्नान में जाने से पहले मरीज को 1-2 गिलास ठंडा पानी पिलाना चाहिए इसके पूर्व गैस पर आधा कुकर पानी में नीम की पत्ती, अजवायन, मेथी, नीलगिरी (यूकेलिप्टिस) की पत्ती आदि डालकर उबालें फिर कुकर के सीटी वाले स्थान पर पाईप लगा दें तथा पाईप से जब भाप निकलने लगे तो उसे फाईबर या लकड़ी की पेटी के अन्दर डाल दें (पेटी के निचले हिस्से में एक छोटा छिद्र होता है) जब पेटी भाप से भर जाए तब मरीज को पेटी के अन्दर रखे हिस्से स्टूल पर बिठा दें व गर्दन तथा सिर को गीला करें व 1 गीला तौलिया मरीज के सिर पर रख दें। भाप स्नान पूर्ण होने पर ठंडे जल का स्नान करवायें।

सावधानी-

- भाप स्नान लेने से पूर्व नींबू, शहद, गुनगुना पानी पिलाने से कमजोरी नहीं आती।
- भाप-स्नान से पूर्व मालिश अवश्य करायें, अत्यधिक लाभ मिलेगा।
- वस्त्र विहीन शरीर पर भाप लें।
- उपवास पर भाप स्नान लेने से पूर्व नींबू पानी अवश्य लें।

- उच्च रक्त चाप, हृदय रोगी तथा कमजोर रोगी की छाती पर ठंडी पट्टी लपेटकर ही भाप स्नान दें।
- भाप स्नान लेने से पूर्व चिकित्सक की सलाह अवश्य लें।

लाभ- इस स्नान से त्वचा के रोमछिद्र खुल जाते हैं जिससे हमारे अन्दर जमा विषैला पदार्थ तेजी से बाहर निकलने लगता है। इससे रक्त संचार में वृद्धि होती है। रक्त शुद्ध होने लगता है तथा त्वचा निखरने लगती है। यह गठिया, सायटिका, मोटापा, त्वचा रोग, दमा आदि में आराम मिलता है।

विशेष- उच्च रक्त चाप अथवा हृदय रोगों में विशेष सावधानी रखनी आवश्यक है।

6.3.12. नेत्र स्नान - बाजार से नेत्र स्नान करने वाला शीशे का गिलास लें इसमें साफ जल भरकर और उसमें एक-एक ऑंख बारी-बारी से डालकर 5-7 मिनट तक आंखों को जल के अन्दर खोलिए और बंद कीजिए। दूसरी आंख को स्नान कराने के लिए नया पानी भरें। नेत्र स्नान के लिए गुलाब जल, त्रिफला जल अथवा फिटकरी का घोल भी नेत्र स्नान के काम में लाया जाता है।

लाभ - आंखों के रोगों में लाभकारी है।

सावधानी - इस स्नान में प्रयोग किए जाने वाला जल स्वच्छ होना चाहिए।

6.3.13 गुदा-स्नान - रोगी बर्तन में ठंडा जल लेकर उसे पखाने के जगह पर हाथ से फेंकता है तथा उसके बाद उस जगह को हाथ से रगड़ता है। एक अंगुली को ठंडे जल में भिगोकर गुदा के भीतर व बाहर निकालता है। इस क्रिया में 1 से 3 मिनट किया जा सकता है।

लाभ - कब्ज को तोड़ने तथा पखाना खुलकर होने में मदद करता है।

सावधानियां - इस स्नान को अधिक देर तक न करना चाहिए तथा सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

6.3.14 योनि स्नान - ठंडे जल को योनि बस्ति नली के द्वारा योनि में चढ़ाकर धोया जाता है। इसकी अवधि 7 से 10 मिनट होती है।

लाभ - योनि को शक्ति मिलती है तथा इससे सम्बन्धी समस्त बीमारियों में लाभ मिलता है।

नोट :- प्रिय विद्यार्थियों उपरोक्त सभी स्नानों के कोई दुष्प्रभाव नहीं होते है। परन्तु फिर भी चाहिये कि एक योग्य प्राकृतिक चिकित्सा के परामर्श से ही इनका प्रयोग करेंगे।

अभ्यास प्रश्न

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) कटि स्नान से लाभ मिलता है -

अ. पेट साफ होता है। ब. पाचन शक्ति में वृद्धि

स. पीलिया रोग दूर होता है। द. उपरोक्त सभी

(ख) रीढ़ स्नान किन रोगियों को नहीं देना चाहिए -

अ. कमर दर्द रोगियों को

ब. उच्च रक्तचाप से ग्रस्त रोगियों को

स. सवाईकिल रोगियों को

द. इनमें से किसी को नहीं

(ग) गर्म पैर स्नान में पानी का तापक्रम लेते हैं -

अ. 0 से 10^0C

ब. 20 से 25^0C

स. 40 से 45^0C

द. 50 से 60^0C

(घ) गरम पैर स्नान की विशेष सावधानी है -

अ. रोगी को दो गिलास ठण्डा पानी पिलाते हैं।

ब. रोगी को ठण्डे पानी में नहलाते हैं।

स. रोगी को पहले मालिश करते हैं।

द. रोगी को एनीमा देते हैं।

(ड.) भाप स्नान किन-किन रोगों में लाभकारी है।

अ. मोटापा ब. उच्च रक्तचाप

स. हृदय रोग द. मानसिक तनाव

6.4 सारांश

जल चिकित्सा का प्राकृतिक चिकित्सा में बहुत महत्व है वास्तव में एक कथन है कि जल ही जीवन है, जीवन का आधार भी जल है। जल तत्व के बिना व्यक्ति जीवित नही रह सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा में जल चिकित्सा देने के कई तरीके बताये गये है। प्रस्तुत इकाई में आपने कटि स्नान, रीढ स्नान के साथ–साथ जल चिकित्सा की अनेको विधियो के लाभ सावधानियो को अध्ययन किया। वास्तव में वर्तमान में इन विधियों को अपनाकर स्वास्थ्य लाभ लिया जा सकता है। पर ध्यान रखे कभी – कभी इनके दुष्प्रभाव भी होते है। अत: उचित मार्गदर्शन में ही चिकित्सा लेना उचित होगा।

6.5 शब्दावली

रजो धर्म - मासिक धर्म
घर्षण कला - रगड़ना
पाखाना - मल
अजीर्ण - अपच
कटि - कमर के नीचे का प्रदेश
अस्थि - हड्डी

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) (क) द (ख) ब (ग) स (घ) अ (ड.) अ

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तर प्रदेश

2. सक्सैना ओम प्रकाश, (2009) सरल प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवासदन, मथुरा

3. शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली

4. सम्सेना ओमप्रकाश, (2010)वृहद प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवा सदन मथुरा

5. शर्मा श्रीराम, (1998) जीवेय शरद; शतम्, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा

6. सिंह राम हर्ष (2006) स्वस्थ वृत्तविज्ञान, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली

6.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. कटि स्नान की विधि, प्रकार, लाभ एवं सावधानियां का वर्णन कीजिए।

2. भाप स्नान की विधि, प्रकार, लाभ एवं सावधानियां का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

3. जल चिकित्सा पर निबन्ध लिखिए।

4. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

   1. रीढ़ स्नान 2. गरम पैर स्नान
   3. गीली चार स्नान 4. ठण्डे पानी से स्नान

इकाई – 7 जल चिकित्सा की उपयोगी पट्टी एवं सेक

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 जल चिकित्सा का सामान्य परिचय

7.4 ठण्डे पानी की पट्टीयां

7.4.1 छाती की गीली पट्टी

7.4.2 पेट पर गीली पट्टी

7.4.3 रीढ़ पर ठण्डी पट्टी

7.4.4 घाव पर गीली पट्टी

7.4.5 आँख की गीली पट्टी

7.5 विविध अंगों की गीली पट्टींया

7.6 सम्पूर्ण शरीर की गीली लपेट

7.6.1 ठण्डी लपेट

7.6.2 गरम लपेट

7.7 जल चिकित्सा की उपयोगी सेंक

7.7.1 ठण्डी सेंक

7.7.2 गरम सेंक

7.7.3 गरम ठण्डा सेंक

7.8 सारांश

7.9 शब्दावली

7.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा में जल चिकित्सा का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। जल चिकित्सा की विभिन्न विधियां विविध रोगों में लाभ प्रदान करती है। पिछली इकाई में आपने विभिन्न स्नानों का अध्ययन किया जबकि इस इकाई में आप विभिन्न प्रकार की उपयोगी जल की पट्टीयों तथा सेक का ज्ञान प्राप्त करोगे। विभिन्न रोगों में इन पट्टीयों के प्रयोगों तथा सेक का अध्ययन भी आप इस इकाई में करोगे। चूंकि इन सभी पट्टीयों तथा सेक को चिकित्सा के रूप में बहुत सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जाता है। अतः इस इकाई में आप इनकी सावधानियों के विषय में भी ज्ञान प्राप्त करोगे तथा किन-किन रोगों में कौन-कौन सी पट्टीयों तथा सेक का प्रयोग किया जाता है। इस प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम भी आप हो जावोगे।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप

जल चिकित्सा का सामान्य अध्ययन करेगें।

जल चिकित्सा में उपयुक्त पट्टीयों का वर्गीकरण कर सकोंगे।

ठण्डे जल की पट्टी की विधि, लाभ एवं सावधानी का अध्ययन करोंगे।

विविध अंगों की गीली पट्टीयों की विधियों एवं लाभों का ज्ञान प्राप्त करोंगे।

7.3 जल चिकित्सा का सामान्य परिचय

महान आचार्य लुई कुने ने अपनी पुस्तक नवीन चिकित्सा विज्ञान New Science of Healing जल चिकित्सा के अत्यन्त सरल तरीकों द्वारा उपचार देने की विधियों का वर्णन किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक द्वारा सरल उपचार की विधियों का वर्णन किया है। मनुष्य शरीर में 70-80 प्रतिशत जल ही है इसलिये जल द्वारा ही रोगों को ठीक कर देने में सफलता प्राप्त की इसी के आधार पर विदेशों में

हाइड्रोपैथी अथवा हाइड्रोथैरेपी के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इसके उपरान्त उसमें धीरे-धीरे प्रकृति के अन्य तत्व मिट्टी, धूप, हवा इत्यादि जुड़ते चले गये जिसका सम्पूर्ण रूप प्राकृतिक चिकित्सा कहलाया। बाद में भारत में इसका जल चिकित्सा नाम पड़ा किन्तु भारत में बहुत प्राचीन समय से जल के महत्व और चिकित्सा के रूप में उसका व्यवहार होता रहा है।

इसका वर्णन आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थों और वेदों में किया हुआ है। उदाहरण के लिये- पित्त ज्वर में रोगी की नाभि पर ठण्डे पानी की धार गिराते रहने का विधान बताया है। उसके बाद पानी द्वारा श्रम की थकान दूर करना बेहोशी दूर करना, प्यास मिटाना असमय की निद्रा दूर भगाने वाला, आलस्य व उल्टी को दूर करने वाला मलबन्द (कब्ज) को तोड़ने वाला शीतलता प्रदान करने वाला अमृत की भांति जीवन प्रदान करने वाला है। जल में अमृत के साथ-साथ औषधि भी है अर्थात आरोग्यदाता है। वेदों में भी इसे रोगनाशक के रूप में वर्णित किया है। महात्मा गाँधी के मतानुसार पानी के दो तीन मुख्य प्रयोग कटि स्नान, मेहनस्नान, भाप स्नान करा देने मात्र से ही शरीर के अन्दर की गर्मी को बाहर निकालकर रोगमुक्त करने मे सहायक होते हैं। जल की विभिन्न विधियाँ विकसित कर उन्हें शरीर को रोगमुक्त करने की चिकित्सा प्रणाली के रूप में आज हम सभी के मध्य उपस्थित हैं। रोगी की जीवनी शक्ति अथवा शारीरिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए उसे निरोग करने हेतु बहुत सारी विधियाँ, पट्टीयाँ व सेक प्रयोग किये जा रहे हैं। डॉ0 केलाँग ने इसे अलग चिकित्सा विज्ञान मानते हुए एक बहुत बड़ा ग्रन्थ (हाइड्रोथैरेपी) नाम से प्राकृतिक चिकित्सा जगत को एक अमूल्य भेंट है। जल चिकित्सा में विभिन्न पट्टीयों एवं सेकों का वर्णन नीचे दिया गया है।

7.4 ठण्डे पानी की पट्टीयाँ -

ठण्डे पानी की पट्टी को शरीर के किसी भी भाग में आवश्यकता होने पर प्रयोग किया जा सकता है।

इसमें सबसे पहले एक तौलिया को ठण्डे पानी (180 से 250 फा0हा0) में भीगाकर निचोड़ लीजिए तथा इस तौलिए की 2 या 3 तह बनाकर, शरीर के जिस भाग पर प्रयोग करना है वहाँ इसे रख दें। इस ठण्डे कपड़े के उपर एक सूखा कपड़ा बाँध दें। पट्टी का जल गर्म होने पर ठंडे पानी को उस कपड़े पर डालकर उसे ठंडा रखें। शरीर में अलग-अलग स्थान पर पट्टियॉ दी जानी है।

7.4.1 छाती की गीली पट्टी-इस विधि में गीली पट्टी की भांति ही उपचार किया जाता है और इसमें गीली पट्टी छाती पर रखी जाती है। बाकी की सम्पूर्ण क्रिया गीली पट्टी की भांति होती है। इसमें छाती को सूखे तौलिया से घर्षण दिया जाता है फिर पट्टी रखी जाती है। इस पट्टी को 5 से 10 मिनट रखा जाता है।

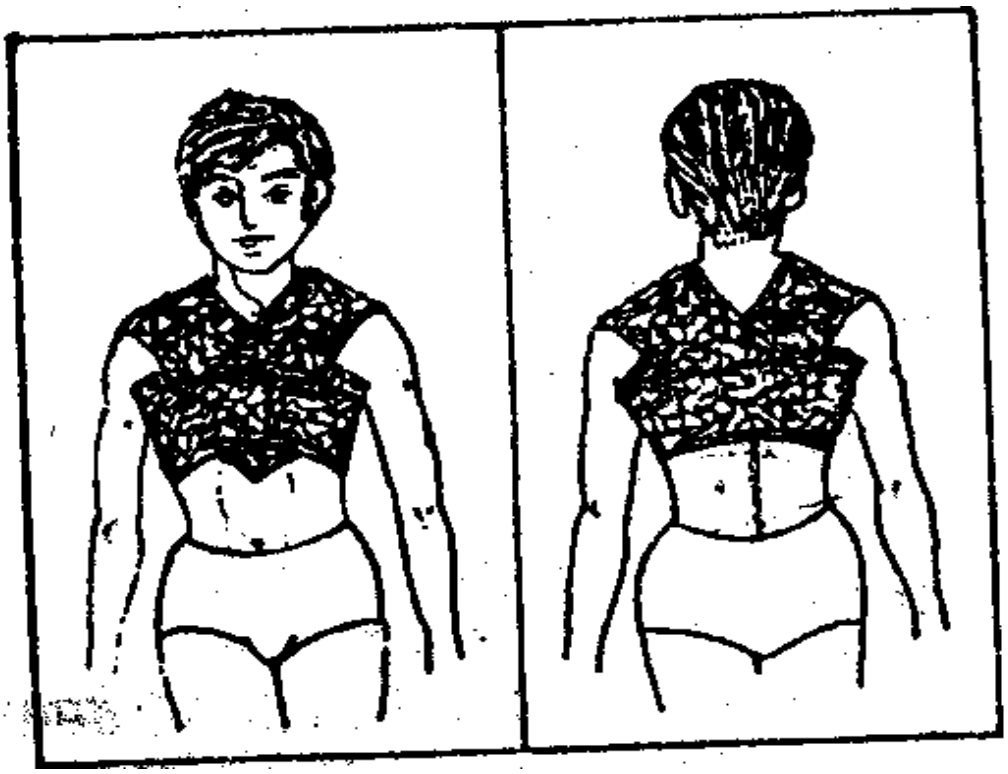

7.4.2 पेट पर गीली पट्टी- इस पट्टी को पसलियों से नीचे पर बाँधा जाता है। सम्पूर्ण प्रक्रिया ठंडी पट्टी की भांति ही है। इसमें समय-समय पर पट्टी को बदलते रहना चाहिए ताकि पट्टी ठंडी बनी रहे। इस उपचार की अवधि 5 से 25 मिनट तक होती है।

7.4.3 रीढ़ पर ठण्डी पट्टी- इसमें ठंडी पट्टी को जो कि $3^{1/2}$ फीट लम्बी तथा $3^{1/2}$ इंच चौड़ी होती है, को रीढ़ पर शुष्क घर्षण देकर गरम करने के बाद, गीली पट्टी को पूरी रीढ़ पर रखकर उपर से सूखे तौलिया से ढक देते हैं।

7.4.4 घाव पर गीली पट्टी- इस पट्टी को घाव पर रखने से घाव जल्दी ठीक हो जाता है। इसमें घाव पर कपड़े की पट्टी की जगह कपास की रूई की गीली पट्टी प्रयोग की जाती है इसमें नीम के पानी को ठण्डा कर उसे प्रयोग करने पर लाभ प्राप्त होता है।

7.4.5 आँख की गीली पट्टी- आँख पर गीली पट्टी रखने से आँख के रोग में लाभ मिलता है। आँखों पर गीली ठण्डे पानी में भीगी पट्टी को निचोड़ कर रखा जाता है तथा उसे उपर से तौलिया से ढक दिया जाता है।

7.5 विविध अंगों की गीली पट्टी

गीली पट्टीयाँ शरीर को आराम देती हैं। पट्टीयाँ शरीर की भीतरी गर्मी को बाहर निकालती है जिससे कि निष्कासन कार्य बढ़ता है। पट्टीयों के प्रयोग हेतु ठण्डा पानी प्रयोग में लाया जाता है किन्तु जिस रोगी का तापक्रम सामान्य से कम हो सर्वप्रथम उसकी कँपकपी दूर करने के उपरान्त हल्का गरम पानी प्रयोग करना चाहिए। जिसके लिये पट्टीयों को भिगोकर, निचोड़कर जहाँ जरूरत हो वहाँ लगाया जाए।

पट्टीयाँ शरीर के किसी भी अंग जैसे सिर, गर्दन, पीठ, टाँग, छाती आदि पर लगाई जाती है।

7.5.1 सिर की गली पट्टी- सर्वप्रथम रोगी को लकड़ी के तखत पर लिटा दें तत्पश्चात मोटे सूती कपड़े को ठण्डे पानी में भिगाकर निचोड़ लें उसके बाद पट्टी को गर्दन के पीछे से ऊपर से लेकर कानों, आँखों और सिर को पूरा ढक दें तथा ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेट दें ताकि हवा अन्दर प्रवेश न कर सके।

लाभ- 1. गीली पट्टी से शरीर की पीड़ा दूर होती है।

2. सिर दर्द में लाभदायक होती है।

3. शरीर की जकड़न दूर करती है।

4. कान की पीड़ा दूर करने में लाभदायक होती है।

7.5.2 गले की गीली पट्टी- रोगी के गले की नाप की पट्टी लेकर ठण्डे एवं ताजे पानी में भिगोकर निचोड़कर गले के चारों तरफ लपेट दें तत्पश्चात उसके ऊपर से ऊनी पट्टी लपेट दें। यह पट्टी रोगी की अनावश्यक गर्मी को खींचने में सहायक सिद्ध होती है तथा रोगी को अनेक रोगों से मुक्त करने में सहायक सिद्ध होती है।

लाभ- इस पट्टी से शरीर के विभिन्न रोगों जैसे खाँसी, सिर दर्द, जुकाम, सर्दी इत्यादि में लाभ मिलता है।

7.5.3 पेडू की गीली पट्टी - यह पेडू की गीली पट्टी होती है। इसका प्रयोग पेडू के अगों में रक्त संचार बढ़ाने के लिए किया जाता है।

सामग्री- 1. सूती की पट्टी (6 से 8 इंच चौड़ी व लम्बी)

7.5.4 ऊनी पट्टी (इतनी की 3-4 लपेट दे सकें)

विधि- सूती पट्टी को ठंडे जल में भीगोकर रोगी के पेडू वाले भाग पर अच्छी तरह लपेट दें तत्पश्चात ऊनी पट्टी इसके ऊपर लपेट दें तथा चिमटी से पट्टी के सिरे को अटका दें।

लाभ- 1. स्त्रियों के रोगों में लाभप्रद है।

2. पेट के विभिन्न रोगों में असरदार है।

सावधानी- पेडू पर पट्टी लगाने से पहले वह शुष्क घर्षण देकर गर्म करना चाहिए।

7.5.5 जोड़ों की गीली पट्टी- इस पट्टी को शरीर के किसी भी जोड़ पर प्रयोग कर सकते हैं। यह जोड़ से सम्बन्धित समस्याओं में लाभकारी है।

सामग्री- 1. जोड़ के अनुसार लम्बी व चौ0 सूती पट्टी।

7.5.6 कमर की गीली पट्टी- यह कमर के रोगों में दी जाने वाली कमर की गीली पट्टी है।

सामग्री- 1. 8-10 इंच चौड़ी खददर की पट्टी जिसकी लम्बाई के अनुसार हो ताकि 3-4 लपेट आ सके।

2. ऊनी पट्टी की लम्बाई भी इतनी हो कि रोगी की कमर पर 3 बार लपेटी जा सके।

अवधि- 2 घण्टे तक।

विधि- सर्वप्रथम खददर की पट्टी को ठंडे जल में भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ लें तथा रोगी की पसलियों के नीचे से पट्टी को कमर के चारों ओर घुमाते हुए पेडू तक के भाग पर लपेटें तथा इसके ऊपर सावधानी से ऊनी पट्टी लपेटें ताकि भीतर हवा न जा सके। ऊनी पट्टी के सिरे को अटका दें। दो घंटे बाद पट्टी खोलकर सूखे तौलिए से घर्षण दें।

लाभ- 1. पेट के रोगों में रामबाण उपचार है।

2. कब्ज, अजीर्ण, स्त्री रोगों, वायु रोगों में, गैसटिक रोग आदि में लाभकारी है।

7.5.7 हृदय/छाती की गीली पट्टी- सूखे तौलिये से छाती पर रगडने के बाद इस पट्टी को छाती के भाग पर लपेटा जाता है। इसमे सूती कपड़ा पानी में गीला कर निचोड़ कर हृदय पर रखते है। साथ ही छाती की पटटी करते समय बायें हाथ की भी पटटी साथ में की जाती है। इससे हृदय/छाती से सम्बन्धित रोगों में लाभ मिलता है।

सामग्री- 1. खददर का कपड़ा

2. ऊनी कपड़ा (छाती की लम्बाई से कुछ लम्बा की उसके इर्द-गिर्द लिपट सके

अवधि- 10 से 15 मिनट तक यह पट्टी रोगी को बाँध सकते हैं।

एक घंटे बाद इसे दोबारा भी दिया जा सकता है।

विधि- खददर की पट्टी को ठंडे पानी में भीगोकर निचोड़ लें तथा इसे रोगी की छाती पर लपेट दे तथा ऊपर से ऊनी कपड़े की पट्टी को भी ठीक ढंग से लपेटें ताकि भीतर हवा न जा सके।

लाभ- 1. निमोनिया, सर्दी-जुकाम, अस्थमा तथा फेफड़ों से सम्बन्धित रोगों में लाभकारी है।

2 जमे हुए कफ को उखाड़ने का बेजोड़ उपचार है।

हृदय की कार्यक्षमता बढाती है।

7.6 सम्पूर्ण शरीर की गीली लपेट

इस लपेट के खोजकर्ता डॉ0 लूकसा हैं। सर्वप्रथम इन्होंने इस लपेट का प्रयोग किया तथा बाद में इसका प्रयोग कर कई भयंकर रोगों को दूर करने में किया जाता है। इस लपेट में रोगी को गीली चादर में लपेट दिया जाता है जिसके द्वारा उसके शरीर से विजातीय द्रव्य को बाहर करने में सहायता मिलती है यह लपेट दो प्रकार की होती है-

1- सम्पूर्ण शरीर की ठंडी लपेट

2- सम्पूर्ण शरीर की गरम लपेट

दोनों प्रकार की लपेट की प्रक्रिया कुछ-कुछ मिलती हुई सी है परन्तु दोनों का प्रभाव भिन्न-भिन्न देखने को मिलता है। विभिन्न-विभिन्न रोगों में लपेट की विशेषता और उसके प्रभाव के अनुरूप ही रोगी को दिया जाता है।

7.6.1 सम्पूर्ण शरीर की ठंडी लपेट-

सामग्री- 1. एक सूती चादर (6 फुट लम्बी और 3 फुट चौड़ी), 2-3 कब्बल

अवधि- 20 मिनट से 1 घंटे तक

विधि- सर्वप्रथम सूती चादर को खोलकर ठंडे पानी में भीगोकर उसे भली भांति निचोड़ लें। एक तखत जिसकी लम्बाई लगभग 6 फीट तथा चौड़ाई 2 फुट के आसपास हो पर एक पतला तकिया

रखना चाहिए तथा उस तख्त पर कम्बल इस प्रकार बिछाएं की कम्बल सिर की तरफ छोड़कर बाकी तीन तरफ 3-3 फीट लटकती रहे। अब ठंडे जल में भीगी चादर को कम्बलों पर इस प्रकार बिछाना है कि तकिया आधा ढक जाए तथा चादर तखत के बीचों बीच रहे। गीली चादर बिछाने से पहले कम्बल के ऊपर एक सूखी सूती चादर अवश्य बिछावें। ध्यान रहे चादरें कम्बल से एक इंच लम्बी लटकती रहे। रोगी को लपेट देने से पहले रोगी का सिर, चेहरा और गर्दन ठंडे पानी से धो दें तथा 1 या 11/2 गिलास गर्म पानी पिला दें। रोगी को वस्त्र विहीन करें तथा तख्त पर लिटाने से पहले उसे पूरे शरीर पर घर्षण देना चाहिए तत्पश्चात उसे तख्त पर इस प्रकार लिटा दें कि चादर का सिरा उसके कंधों से 3-4 इंच ऊपर की ओर रहे। अब रोगी को गीली चादर में कसकर लपेट दें तथा चादर पूरे शरीर से अच्छी तरह सट जाये यह निश्चित कर लें। सर्वप्रथम रोगी का एक हाथ और पैर पर चादर कसकर लपेटें फिर दूसरी तरफ के हाथ और पैर को गीली चादर में लपेट दें। पैर की तरफ लटकी हुई चादर को पैर के ऊपर की तरफ मोड़ दें। अब सिर की तरफ बिछे कम्बल को दोनों तरफ से बारी-बारी उठाकर मजबूती से रोगी के ऊपरी धड़ को लपेट दें। बाद में नीचे वाले कम्बल को भी इसी प्रकार खींच कर लपेट दें तथा पैर की तरफ लटके कम्बल को पैरों की तरफ लाकर मोड़ दें। अब सिर की तरफ की सूती सूखी चादर को गर्दन व गले पर लपेट दें ताकि कम्बल न चूभे। इस बात का निशेषतः ध्यान रहे कि कम्बल और शरीर के बीच हवा का संचार न हो सके। सिर व आंखों पर ठंडा तौलिया लपेट 10-15 मिनट पश्चात रोगी को पसीना आने लगता है। यदि रोगी बीच में सो जाए तो उसे उठाए नहीं। कभी-कभी रोगी का शरीर ठंडा ही पड़ा रहता है तो इसका अर्थ है कि गीली लपेट ठीक ढंग से नहीं लपेटी गई है। इस हालत में रोगी के बगलों में 2-3 गर्म पानी की बोतले रख देनी चाहिए तथा रोगी को कुछ और कम्बलों से ढक देना चाहिए। रोगी को जब तक अच्छा लगे तब तक रोगी को लपेट में रखना चाहिए। वैसे दस मिनट से लेकर आधा घंटा से एक घंटे तक रोगी को लपेट के भीतर रखा जा सकता है। लपेट हटाने के बाद रोगी के शरीर को भीगे तौलिया से पोछना चाहिए तथा रोगी की स्थिति के अनुरूप उसे ठंडे जल से भी स्नान कराया जा सकता है। जो रोगी बहुत कमजोर हो उन्हें आराम करना चाहिए तथा सबल रोगियों को तेज-तेज चलना या हल्का व्यायाम करना चाहिए।

लाभ- तीव्र ज्वर, खून की कमी, मोटापा, मधुमेह, गठिया, एग्जिमा, अनिद्रा आदि रोगों में लाभदायक है।

इससे फेफड़े गुर्दे तथा त्वचा की क्रियाशीलता बढ़ने से विजातीय द्रव शरीर से बाहर हो जाता है।

रक्त संचार तेज होकर रक्त शुद्ध बनाता है।

सावधानियाँ- 1. रोगी को लपेट देने पर यदि रोगी का शरीर गर्म न हो तो उसे किसी तरह गर्म बोतलों की सहायता से गर्म कर उसे आराम पहुँचाना चाहिए।

2. कमजोर रोगियों को लपेट देते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

3. दमा के रोगियों को ठंडी लपेट देते समय उनकी छाती पर मोटी खादी का एक टुकड़ा रखकर लपेट लगानी चाहिए।

7.6.2 सम्पूर्ण शरीर की गरम लपेट-

सामग्री- गर्म पानी (140 से 165 डिग्री0 से0)

1 सूती चादर (6 फीट लम्बी और 3 फीट चौड़ी)

अवधि- 20 मिनट से 45 मिनट तक।

विधि- इसमें सूती चादर को गर्म पानी में भीगोकर निचोड़ लें तथा झटककर पानी निकाल दें। अब चादर को सम्पूर्ण शरीर की गीली लपेट की भांति प्रयोग में लाए तथा पूरी प्रक्रिया समान ही होगी।

लाभ- 1. जीवन शक्ति की कमी, दुर्बल व कमजोर व्यक्तियों के लिए यह लाभ देने वाली लपेट है।

2. यकृत दोष, मधुमेह, स्नायु, अनिद्रा, तीव्र ज्वर, वात रोग इत्यादि में लाभदायक है।

सावधानी-1. उपचार के दौरान रोगी को अकेला न छोड़ें।

2. आवश्यकता होने पर रोगी को बीच-बीच में जल अवश्य देते रहें।

3. सिर, गर्दन और छाती को गीला कर सिर व गर्दन पर ठंडी तौलिया लगाना न भूलें

7.7 जल चिकित्सा की उपयोगी सेंक

7.7.1 – ठंडी सेक

यह एक ठंडे पानी के उपचार की पद्धति है इसके द्वारा अंग विशेष का रक्त संचार बढ़ाकर, आक्सीजन की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है।

सामग्री- ठंडा पानी (35 से 45 फा0 हा0)

फलालेन का कपड़ा, सूती तौलिया

अवधि- 5 मिनट से 20 मिनट।

विधि- कपड़े को ठंडे पानी में भीगोकर निचोड़ लें तथा हवा में झाड़ दें ताकि अतिरिक्त पानी निकल जाए। कपड़े की 2 या 3 तह बनाकर जिस अंग पर प्रयोग करना हो करें, गीली पट्टी को एक सूती सूखी तौलिया से ढक दें तथा अंग को हवा के प्रभाव से दूर रखें। पट्टी गरम होने पर उस पर ठण्डा पानी डालकर ठण्डा करें।

ठंडे जल के सेक का प्रभाव - ठंडे जल का शरीर पर अल्पकालीन प्रयोग और ठंडे पानी का दीर्घकालीन प्रयोग शरीर पर अलग-अलग प्रभाव डालते हैं जो कि निम्नलिखित हैं-

(।) ठंडे पानी के सेंक का शरीर पर अल्पकालीन प्रभाव-

- शरीर के तापमान को बढ़ाता है।
- त्वचा की कार्यशीलता में वृद्धि करता है।
- श्वांस की क्रिया को धीमा करता है।
- पोषण शक्ति में वृद्धि करता है।
- अल्प समय के लिए रक्त कोषों को संकुचित करता है।
- मांसपेशियों को संकुचित करता है।
- हृदय की क्रियाशीलता को बढ़ाता है।
- शरीर की नाडियों को उत्तेजित करता है।
- रक्तचाप को बढ़ाता है।

(ठ) ठंडे पानी के सेक का शरीर पर दीर्घकालीन प्रभाव-

- शारीरिक तापमान को घटाता है।
- त्वचा की कार्यशीलता में ह्रास उत्पन्न करता है।
- पाचन क्रिया को मध्यम करता है।
- पोषण क्षमता को अधिक प्रभावित नहीं करता है।
- मांसपेशियों को संकुचित करता है।

- हृदय की क्रियाशीलता को कमजोर करता है।
- शरीर की नाडियों पर मृदु प्रभाव डालता है।
- रक्त चाप को घटाता है।
- मांसपेशियों को संकुचित करता है।

7.7.2 गर्म सेंक-

- सामग्री- सूती कपड़ा, गर्म पानी (120 फा0ह0)

अवधि- रोगी के अनुसार।

विधि- सर्वप्रथम एक बर्तन में गर्म पानी (120 फा0ह0) ले उस पानी में सूती कपड़े को भीगोकर निचोड़ लें तथा उस कपड़े की 3-4 तह बनाकर प्रभवित भाग पर रखें तथा इस गर्म कपड़े को एक सूखे कपड़े से अच्छी तरह ढक दे ताकि हवा न लगे।

लाभ- कमजोर रोगी या दुर्बल रोगी के लिए अच्छा है। इससे रक्त वाहिनियाँ फैलकर रक्त संचार को बढ़ाती हैं तथा विजातीय द्रव को रक्त के द्वारा उस भाग से हटाकर शरीर से बाहर करने में लाभप्रद है।

7.7.3 गरम ठण्डा सेक- इस सेक की विशेषता यह है कि इसमें दोनों प्रकार के (ठंडा व गर्म) सेक के साथ रोगी को उपचार में दिए जाते हैं। इस सेक से रक्त वाहिनियों की फैलने और संकुचित करने की क्रिया को व्यवस्थित कर समस्या का समाधान किया जाता है। इसकी लेने की विधि निम्न प्रकार से है-

- आवश्यक सामग्री- 4 तौलिये, दो बर्तन, गर्म पानी (170 फा0ह0)
- अवधि- 15 मिनट से 20 मिनट तक।

विधि- इस सेक को देने के पहले रोगी को आराम की स्थिति में लिटा या बैठा दें। प्रभावित अंग से वस्त्रों को हटाकर पर उस भाग पर तौलिये से थोड़ा शुष्क घर्षण दें। तत्पश्चात गर्म पानी (170 फा0ह0) में भीगी तौलिया को निचोड़ कर प्रभावित अंग पर 3 मिनट के लिए रखें तथा समय पूरा होने तक तौलिया के तापमान को बनाकर रखें इसके तुरन्त बाद ठण्डे पानी (45 फा0ह0) में भीगी तौलिया को उस स्थान पर 2 मिनट रखें। इसी क्रम से इस पूरी प्रक्रिया को तीन बार दोहराएं। ध्यान रहे उपचार के

दौरान पानी के तापमान को बनाकर रखने पर ही सही प्रभाव देखने को मिलेंगे। गर्म ठंडी पट्टियों को रखने के बाद उन पर सुखी तौलिया अवश्य रखें ताकि सीधी हवा अंग पर न पड़े।

लाभ- दर्द, सूजन, लीवर पर सूजन, मोच आदि में लाभकारी है। स्त्री रोगों जैसे गर्भाशय में सूजन तथा संक्रमण आदि में पुरूष ग्रंथि में सूजन होने पर, मूत्राशय के विभिन्न रोगों में इसे प्रयोग किया जाता है।

सावधानी-

1. शरीर के कुछ भागों व अंगों पर यह सिकाई नहीं दे जैंसे हृदय पर, सिर, जले हुए भाग पर, जख्मों पर, त्वचा के रोग में।
2. मासिक धर्म में इसे नहीं करना चाहिए।
3. पानी का तापमान पहले सहने योग्य होना चाहिए धीरे-धीरे उसमें वृद्धि कर सकते हैं।

नोट: सेंक शरीर के विभिन्न अंगों पर रोग और रोगी की स्थिति को ध्यान में रखकर दिए जा सकते हैं जैसे गर्दन पर, हाथ पर, छाती पर, पेट पर, पेडू पर, लीवर के स्थान पर, कमर पर, रीढ़ पर, पैर पर, घुटने पर, कंधों पर, शरीर के विभिन्न जोड़ों पर दिया जा सकता है परन्तु इन सेकों में यह ध्यान रखना व जरूरी है कि रोगी को किसी स्थिति में कौन सा सेंक देकर उसे लाभ पहुँचाया जा सकता है। गलत सेंक से रोगी की स्थिति बिगड़ भी सकती है। उसे आराम मिलने के बजाए उसकी समस्या को बढ़ा सकती है। अतः सेक और उसके प्रभावों को देखते हुए ही उन्हें रोगी के उपचार में प्रयोग करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) छाती की गीली पट्टी लाभप्रद है -

अ. सर्दी जुकाम में ब. अस्थमा में

स. कफ रोग में द. सभी में

(ख) सम्पूर्ण शरीर के लपेट से लाभ नहीं मिलता है-

अ. मोटापा ब. मधुमेह में

स. अनिद्रा में द. तीव्र ज्वर में

(ग) ठण्डे जल से सेक का अल्पकालीन प्रभाव पड़ता है -

अ. शरीर का तापमान घटता है। ब. तापमान बढ़ता है।

स. रक्तचाप घटता है। द. मांसपेशियां संकुचित होती हैं।

(घ) सम्पूर्ण शरीर की गरम लपेट से किन रोगों में लाभ मिलता है -

अ. यकृत दोष

ब. मधुमेह

स. अनिद्रा

द. सभी में

(ड.) कमर की गीली पट्टी की अवधि है -

अ. एक घंटें ब. दो घंटें

स. तीन घंटें द. चार घंटें

7.8 सारांश

प्रिय पाठकों इस इकाई में आपने जल चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न प्रकार की पट्टीयों तथा सेक का अध्ययन किया तथा जाना कि ठण्डे जल की पट्टीयां श्वास रोगों, कफ रोगों, पेट रोगों में तथा स्त्री रोगों में लाभ प्रदान करती है जबकि सम्पूर्ण शरीर की गली लपेट शरीर की जीवनी शक्ति को बढ़ाती है तथा शरीर के विभिन्न दोषों एवं रोगों को दूर करती है।

इसके अतिरिक्त जल की सेक का भी शरीर पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इन ठण्डे पानी की सेक, गरम पानी की सेक तथा ठण्डी गरम सेक शरीर से विजातीय द्रव्यों को दूर करती है तथा रक्त संचार को तीव्र बनाती है। इन सेकों के प्रभाव से शरीर के विभिन्न स्थानों के दर्दो, सूजन, मोच तथा ग्रन्थियों से सम्बन्धित रोग दूर होते हैं।

7.9 शब्दावली

विधान नियम

पेडू	कमर का निचला भाग
एग्जिमा	त्वचा रोग

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) (क) द (ख) अ (ग) ब (घ) द (ड.) ब

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तर प्रदेश

2. सक्सैना ओम प्रकाश, (2009) सरल प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवासदन, मथुरा

3. शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. जल चिकित्सा का सामान्य परिचय देते हुए ठण्डे जल की सेक की विधि एवं लाभ लिखिए।
2. विविध अंगों की गीली पट्टीयों की विधि एवं लाभ लिखिए।
3. जल की सेक से आप क्या समझते हो? इसके प्रकारों, विधियों एवं लाभों पर प्रकाश डालिए।
4. ठण्डे पानी की पट्टीयों के विषय में समझाइये।

इकाई 8 मिट्टी चिकित्सा अर्थ परिभाषा, मिट्टी के गुण धर्म, मिट्टी के प्रकार महत्व एवं सावधानियॉं

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 मिट्टी चिकित्सा अर्थ एवं परिभाषा

8.4 मिट्टी के गुण धर्म

8.5 मिट्टी के प्रकार

8.6 मिट्टी का महत्व

8.7 सारांश

8.8 शब्दावली

8.9 अभ्यास प्रश्नो

8.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

जिज्ञासु पाठकों मिट्टी चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा का एक अभिन्न अंग है तथा कुछ स्थानों पर तो मिट्टी चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा के पर्यायवाची के रूप में जाना जाता है। शास्त्रों में पृथ्वी को माता कहा है और मिट्टी चिकित्सा पृथ्वी तत्व चिकित्सा में आती है। मिट्टी में चुम्बकीय शक्ति है जो विविध विकारों को खींच लेती है तथा रोगी को जल्दी लाभ मिलता है। मिट्टी में सृजन, विकास, समृद्धि के गुण व्याप्त रहते है।

पाठकों को चाहिये कि मिट्टी के इन गुणों को आत्मासात् कर समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति करें।

8.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत इकाई में आप-

मिट्टी चिकित्सा के अर्थ एवं परिभाषा का अध्ययन करोंगे।

मिट्टी के गुणों को समझ सकेंगे।

मिट्टी के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण कर सकेंगे।

8.3 मिट्टी चिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषा-

मिट्टी का अर्थ है, इस सृष्टि पर हर प्रकार की नित्य नई वस्तुएं बनाकर उन्हें मिटाना व मिट्टी में मिलाना। लगभग सारे रोगों को दूर करने के कारण इसे सर्वरोगहारी भी कह सकते हैं।

पृथ्वी, पंचतत्वों में पांचवा और अन्तिम तत्व है। यह अन्य चारों तत्वों- आकाश, वायु, अग्नि तथा जल का रस है। यथाः-

छांदोग्य उपनिषद के अनुसार-

''एषां भूतानां पृथ्वी रसः''

जिन पांच तत्वों से हमारा शरीर बना है, मिट्टी तत्व उसमें सबसे अधिक प्रधान है। धरती में सभी महाभूतों का समावेश है श्रुति में पृथ्वी को अन्न भी कहा है।

बाईबिल के मतानुसार-

'' ईश्वर ने धरती की धूल से आदमी का पुतला बनाया, उसके नथुनों में प्राण फूंके और वह सजीव प्राणी हो गया।

वेदों के अनुसारः-

'' पृथ्वी माता धौः नः पिता''

अर्थात्- पृथ्वी हमारी माता और आकाश पिता है।

तैत्तरीय उपनिषद में लिखा है कि आत्मा से आकाश की उत्पत्ति हई, आकाश से वायु, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की, जल से पृथ्वी की, पृथ्वी से औषधि वनस्पतियों की, औषधि से अन्न की और अन्न से मनुष्य की उत्पत्ति हुई। अतः मानवी सृष्टि का उत्पादक पृथ्वी अन्न ही है।

प्रो0 स्टांकलासा के अनुसार-

''मिट्टी में एक प्रकार का रेडियम होता है, जो शरीर की ग्रन्थियों को प्रभावित करके स्वास्थ्य वृद्धि करता है। मशीनों द्वारा रेडियम चिकित्सा प्रायः हानिकारक होती है, जबकि मिट्टी के प्राकृतिक रेडियम से तनिक भी हानि नहीं होती, बल्कि लाभ होता है।''

डॉ0 लिण्डल्हार के अनुसार-

''मिट्टी त्वचा के रोम कूपों को खोलती, रक्त को ऊपरी भाग में खींचती, अन्दर के दर्द एवं रक्त संचय को दूर करती है और विजातीय द्रव्य को बाहर निकालती है।''

गीता में कहा है:-

अन्नाद्भन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः

अर्थात्- सम्पूर्ण प्राणी अन्न ;पृथ्वी से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति पृथ्वी से होती है।

शुद्ध शुक्रार्तव होने पर जब माता-पिता के युक्तिपूर्वक संयोग से बालक गर्भ में आता है, जब पूर्व जन्मों के शुभाशुभ कर्मों से प्रेरित जीवात्मा, उस गर्भ में प्रवेश करता है। जैसे अन्न-बीज में उसका वृक्ष सन्निहित रहता है, अरणी-काष्ठ में अग्नि रहती है, किन्तु युक्तिपूर्वक बीज संचय करने पर ही समय पाकर वृक्ष उगता है, युक्तिपूर्वक घर्षण करने से ही अरणी से अग्नि निकलता है इसी तरह शुक्रार्तव से गर्भ स्थिर होता है और जिस प्रकार स्फटिक मणि, बिल्लोर पत्थर को सूर्य रश्मि पार करती है, किन्तु पार करते समय उसका पार करना दिखता नहीं, उसी तरह स्त्री के गर्भाशयस्थ गर्भ में जीव प्रविष्ट होता है, फिर वह गर्भ माता के आहार रूपी अन्न-रस (पृथ्वी-तत्व) द्वारा क्रमशः बढ़कर भूमिष्ट होता है। यही कारण है जो पृथ्वी को हम माता कहते हैं। क्योंकि हम सबकी उत्पत्ति धरती से ही हुई है।

8.4 मिट्टी के गुण धर्म

मिट्टी जितनी सर्व सुलभ एवं नगण्य समझी जाती है, उसकी गुण गरिमा उतनी ही महान है इसकी सिद्धांत यह है कि-

- सब प्रकार की दुर्गन्ध को मिटाने के लिये मिट्टी से बढ़ कर संसार में और कोई वस्तु नहीं है। यही कारण है जो लोग मिट्टी से अपने घरों को लीपती है और दुर्गन्ध की जगह पर मिट्टी का प्रयोग करती है। सड़ी चीजों पर मिट्टी डालने से ही उसकी दुर्गन्ध जाती है। अपवित्र हाथों को मिट्टी से ही धोकर हम उन्हें पवित्र करते हैं। गुदा भाग की अपवित्रता भी मिट्टी के ही योग से मिटाई जाती है। मुर्दे सड़कर दुर्गन्ध न फैलावें इसलिये उन्हें मिट्टी में गाढ़ देने की प्रथा है।

लोग मैदान में पृथ्वी पर मल त्याग कर देते हैं पृथ्वी कुछ ही घंटों में उसका रंग रूप बदल कर सुन्दर साफ और गन्धहीन मिट्टी में उस मल को परिणित करके रख देती है।

- मिट्टी में सर्दी और गर्मी रोकने की शक्ति होती है यही कारण है कि योगी लोग अपने शरीर पर मिट्टी लगाये रहते हैं जिससे कड़ी से कड़ी धूप और कड़ाके की सर्दी-दोनों से उनके नंगे बदन की रक्षा स्वतः होती रहे।
- जल को निर्मल कर देने की अदभुद शक्ति मिट्टी में होती है। कूपों, सरिताओं और स्रोतों का जल इसी कारण सदैव निर्मल रहता है। वैसे भी गंदे पानी को साफ करने के लिये बालू या मिट्टी में से उसे छानते हैं।
- मिट्टी में विलक्षण विद्रावक Dissolving शक्ति होती है। बड़े से बड़े फोड़े पर मिट्टी की पट्टी चढ़ाने से अपनी विद्रावण शक्ति से वह उसे पका देती है बहा देती है और घाव का भर भी देती है।
- मिट्टी में विषादि को शोषण करने की विचित्र शक्ति होती है। सांप, बिच्छू आदि के काटने पर मिट्टी का युक्तिपूर्वक, लेप आश्चर्यजनक रूप से काम करता है।
- मिट्टी में जल तथा सब प्रकार की धातुएँ अर्थात् खनिज पदार्थों को धारण करने की शक्ति है। समुद्र, नदियां, तड़ागादि पृथ्वी पर ही हो टिके हुए हैं।
- मिट्टी में ही सभी प्राणियों के जीवन-निर्वाह के लिये खाद्य पदार्थों को उनमें भिन्न-भिन्न रसों की प्रधानता के साथ उत्पन्न करने की शक्ति होती है।
- मिट्टी जल के वेग को रोक सकती है। इसी से मिट्टी का बांध बांधकर बाढ़ का पानी रोका जाता है।
- मिट्टी अग्नि की उष्णता का शोषण करके उसे शान्त कर सकती हैं इसी से आग लगने पर मिट्टी डालकर उसे बुझाते है।
- मिट्टी वायु के वेग को भी रोकने की क्षमता रखती है यही कारण है जो मजबूत मकान आंधी में नहीं गिरते और सुरक्षित रहते हैं।
- मिट्टी जल के योग से तरह-तरह के आकार धारण कर सकती है। मिट्टी के मकान, खेल के सामान, तथा बर्तन इसके उदाहरण हैं।

- मिट्टी, वायु के योग से आकाश में उड़ सकती है। वातावरण में असंख्य धूल के कण हरदम विद्यमान रहते ही हैं।
- जिस प्रकार सारी सृष्टि की रचना मिट्टी से हुई है उसी प्रकार अंत में सब को आत्मसात कर लेने की शक्ति भी पृथ्वी में निहित है।
- मिट्टी में रोगों को दूर करने की अपूर्व शक्ति होती है क्योंकि मिट्टी में जगत की सभी वस्तुओं का एक साथ रासायनिक सम्मिश्रण Chemical Composition सर्वाधिक विद्यमान होता है, जबकि किसी एक दवा या कई दवाओं के मिश्रण में उतना रासायनिक सम्मिश्रण कदापि सम्भव नहीं हो सकता।

8.5 मिट्टी के प्रकार

मिट्टी कई प्रकार की होती है, और प्रत्येक प्रकार की मिट्टी का उपयोग उसके गुण-अनुसार अलग-अलग है। काली मिट्टी अधिकतर कछार में पायी जाती है। यह मिट्टी बालों की रक्षा करने और उनको साफ और स्वच्छ रखने में अद्वितीय है।

8.5.1 लाल मिट्टी- विन्ध्यप्रदेश और चुनार जैसी पहाड़ी जगहों में पायी जाती है। गेरू भी इसी किस्म की एक प्रकार की मिट्टी है जो मकान की पुताई में विशेष काम आती है।

8.5.2. पीली और सफेद मिट्टी- खेतों, तालाबों और दरियाओं के किनारे पायी जाती है। रोगों के उपचार में इसी प्रकार की मिट्टी से काम लाभ के साथ लिया जाता है।

8.5.3. सज्जी मिट्टी- एक प्रकार की मिट्टी ही होती है, जिससे कपड़ा खूब साफ होता है।

8.5.4. मुल्तानी मिट्टी- एक और खास किस्म की मिट्टी होती है जिसे स्त्रियां उबटन की तरह शरीर पर मलती हैं, जिससे उनकी त्वचा सुन्दर एवं कान्तिमय हो जाती है।

8.5.5. बालू मिट्टी- बालू मिट्टी ही है जो मनुष्य शरीर के लिए वैसी ही आवश्यक है जैसे भोजन और जल। परन्तु इसके स्वास्थ्य वर्द्धक गुणों को केवल प्राकृतिक चिकित्सक ही भलीभांति जानते हैं।

हिन्दू ग्रंथों में बालु या रेण फांकना एक धार्मिक कृत्य माना जाता है, जो इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है। प्राकृतिक दशा में खाई जाने वाली खाद्य वस्तुओं, जैसे साग-भाजी, खीरा-ककड़ी आदि के साथ सदैव बालू का अंश कुछ न कुछ जरूर रहता है, पर हम अज्ञानता के कारण धोकर बहा देते हैं। ये

बालू के कण हमारी पाचन शक्ति को ठीक रखने में बड़ा काम करते है।। पहाड़ी झरनों का पानी क्यों स्वास्थ्यवर्द्धक होता है? इस प्रकार का पानी पीने से भूख अधिक क्यों लगती है? पाचन क्यों ठीक रहता है? इसीलिए कि स्रोतों के पानी में बालू की कुछ न कुछ मात्रा मिली होती है, जिसे हम पानी के साथ पी जाते हैं। लोग कहते हैं, अमुक कूप का पानी पीने से अन्न पच जाता है। इसका अर्थ यही है कि उस कुंए के पानी में बालू मिली हुई है अथवा उसका पानी बालू के ढेर से गुजरता है और थोड़ी-बहुत बालू अपने साथ लाता है, जिसे पीकर हम लाभ उठाते हैं। यही कारण है कि उन नदियों जो पहाड़ों से बहकर आती हैं और अपने साथ बालू का ढेर लाती हैं का पानी असाधारण रूप से पाचक सिद्ध होता है। बालू में जहर को मारने की भी शक्ति होती है। बालू प्रकृति की ओर से मानो छूत और जहर मारने वाली दवा का काम करती है। प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि बालू मानव स्वास्थ्य के लिये बड़े लाभ की चीज है।

''जिसको पेट की बीमारी हो, कोष्ठबद्धता हो, पाखाना खुलासा न होता हो, वह अगर खाना खाने के बाद ही एक चुटकी समुद्री महीन बालू दिन में दो-तीन बार निगल ले तो दूसरे ही दिन पेट की आंतें ढीली पड़ जायेंगी और मल आसानी से निकलने लगेगा और अंत में कब्ज दूर हो जायेगी।''

माटी ओढ़ना माटी बिछौना, माटी दाना-पानी रे।'

कबीरदास जी ने अपनी इस बानी में इस बात की ओर संकेत किया है कि मनुष्य थलचर प्राणी है। अर्थात् पृथ्वी पर विचरने वाला जीव है अतः उसका कल्याण इसी में है कि वह सदा-सर्वदा पृथ्वी से ही संसर्ग रखे। यहां तक कि मिट्टी ही शरीर पर धारण करके (जैसा योगी लोग करते हैं) उससे ओढ़ना का काम ले और मिट्टी के ही बिस्तर अर्थात पृथ्वी पर सोये ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वह मिट्टी से उपजे फल-अन्नादि का भोजन करके जीवित रहता है। क्योंकि मनुष्य की उत्पत्ति मिट्टी से ही हुई है और उसे एक दिन मिट्टी में ही मिलना है। अतएव उत्पति और मरण के बीच की अवधि में भी प्रकृतितः उसे मिट्टी से ही सम्पर्क बनाये रखना चाहिए तभी वह सुख-शांति का भागी हो सकता है अन्यथा नहीं। एक शायर ने क्या खूब कहा है-

खाक का पुतला बना है खाक की तसवीर है।

खाक में मिल जाएगा फिर खाक दामनगीर है।।

मनुष्य के अतिरिक्त इस पृथ्वी पर और बहुत से थलचर प्राणी हैं, जैसे पशु, सांपादि। ये सभी जीव जीवन पर्यन्त अपना सम्पर्क धरती माता से बनाये रखते हैं जिसके फलस्वरूप वे आनन्दपूर्वक जीवन-यापन करते हैं। इनमें मनुष्य की भांति सभी बातों में कृत्रिमता नहीं होती। इनके लिये ओढ़ने

पहनने को न तो अलग से वस्त्र की जरूरत होती है और न बिछाने को अलग से नरम बिस्तरे की। जिसका फल यह होता है कि वे स्वस्थ और बलशाली जीवन-भर बने रहते हैं।

प्रकृति का यह नियम है कि उसने जिस जीवन को जिस जगह के लिए, जिस ढंग से रहने के लिये है, उसे उस जगह, उसी ढंग से रहना युक्तिसंगत है। संसार में तीन प्रकार के जीव वास करते हैं नभचर, जलचर तथा थलचर। जिनमें नभचर तथा जलचर तो इस प्राकृतिक नियम का पालन करते हैं और मनुष्य के अरिरिक्त सभी थलचर जीव भी। परन्तु मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी इच्छा से या विवश होकर पर अवश्य ही अज्ञानवश, प्रकृति के इस लाभदायक नियम को भंग करके अपने को अपनी स्नेहमयी माता से धरती माता से दूर-दूर बहुत दूर रहता है। ऐसी दशा में अपनी माता की गोद से बिछुड़ कर उसके आशीर्वाद से वंचित रह कर, कौन सी सन्तान दंड की भागी न होगी। कौन सी संतान जीवन पर्यन्त कमजोर और रोगी रह कर समय से पहले ही काल कवलित न हो जायगी?

मछली, जल का जीवन है जल ही उसका निवास स्थान-जल ही ओढ़ना, जल ही बिछोना है, जल के ही संसर्ग से उसका सुख चैन है। उसे जल से अलग कर दीजिये उस वक्त वह बेचैन ही नहीं होगी, अपितु तड़प-तड़प कर मर भी जायगी। इसी प्रकार पक्षी आकाशचारी होता है। आकाश ही उसका निवास स्थान एवं सब कुछ है। अतः आकाश के ही संसर्ग से उसे आनन्द प्राप्त होता है। जल वा थल उसके लिये उपयुक्त एवं स्वास्थ्यवर्धक नहीं हो सकता। इसी तरह पृथ्वी के जीवन पृथ्वी के सीधे संसर्ग से निरोग रह कर लम्बी आयु प्राप्त कर सकते हैं।

प्राचीन काल में जब वर्तमान कथित सभ्यता का नामोनिशान न था उस समय मनुष्य जूतों से अपने पैरों को तथा कपड़ों से अंग प्रत्यंग को कसे रहना जानता तक न था। वह सीधे, पृथ्वी के सम्पर्क में रह कर नंगे पैर चलता था पृथ्वी पर सोता बैठता था, और पृथ्वी से ही जीवन की अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता फलतः वह दीर्घजीवी, बली और निरोग होता था। लेकिन आज का मानव प्राचीन काल के मानव से भिन्न है। वह पृथ्वी पर बिना जूता पहने पांव रखना पसंद नहीं करता। कपड़ों में धूल लग जाने के डर से पृथ्वी पर लेटने या बैठने से घोर घृणा करता है। इसके लिये उसे अच्छे-अच्छे सोफे और गद्देदार पलंग चाहिये। एक वाक्य में, आज का मानव यह भूल चुका है कि वह पृथ्वी के संसर्ग में सीधे रह कर, उसकी आरोग्यदायक शक्ति का उपयोग करके ही प्राचीन काल के मानव के सदृश बलवान मेधावी एवं दीर्घजीवी हो सकता है।

वर्तमान समय में डा. ए0 जुस्ट तथा डा. रिकली सभी प्राकृतिक चिकित्सक एक स्वर से प्रकृति की ओर पुनः लौटने की सलाह दे रहे हैं, जिसमें वे मानव का कल्याण समझते हैं। भगवान हमें सुबुद्धि दे कि हम उनकी नेक सलाह पर अमल कर सकें।

8.6 मिट्टी-चिकित्सा का महत्व

1. नंगे पांव पृथ्वी पर चलने से लाभ- यह प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है कि खुली पृथ्वी पर नंगे पांव स्वच्छन्दता से चलने फिरने में जितनी शान्ति और सुख मिलता है, वह आनन्द पक्के आंगन में लकड़ी या पत्थर पर नंगे या जूता पहन चलने से नहीं मिल सकता है। यह भी अनुभव किया जा सकता है कि नंगे पांव सूखी पृथ्वी या सूखी दूब पर चलने की अपेक्षा गीली धरती या ओंस में भीगी घास पर चलना विशेष सुखप्रद एवं लाभप्रद होता है। हमारे छोटे बच्चें जो प्रकृति के अति निकट रहते हैं, यदि उनका बस चले, और यदि हम अपनी कम अक्ली की टांग उनके बीच में न अड़ावें तो वे न तो कभी जूते पहनें और न कपड़े बल्कि मस्ती से मिट्टी में लोटें, पोटें, खेलें और दौड़ें, तथा प्रसन्न रहें।

पृथ्वी में एक विलक्षण विद्युत शक्ति होती है जो नंगे पैर चलने वालों के शरीर में ताजगी एवं जीवनशक्ति का संचार करती है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वृक्षों में वह शक्ति और जीवन भरती है जो उस पर स्थाई रूप से स्थिर होते हैं इस मत में मानव को एक प्रकार से चलता हुआ सजीव वृक्ष ही मानना चाहिये और यह समझना चाहिये कि जिस प्रकार एक वृक्ष, पृथ्वी से अलग होकर कभी पनप नहीं सकता उसी प्रकार मानव भी पृथ्वी से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके सुख शान्ति का अधिकारी नहीं हो सकता। जिस प्रकार वृक्ष और पौंधों को पृथ्वी से पोषण मिलता है उसी प्रकार मनुष्य भी नंगे पांव पृथ्वी पर चलकर पृथ्वी से आरोग्य, बल एवं दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। नंगे पांव चलने वाले को नेत्र रोग कभी होते ही नहीं। आज जो छोटे-छोटे बच्चों की आंखों पर चश्मा देखा जाता है उसकी एक खास वजह यह भी है कि हमारी आजकल की सभ्यता ने हमें नंगे पैरों चलना मना कर रखा है।

नंगे पैरों पृथ्वी पर चलने से पैर मजबूत, स्वस्थ, सुडौल और रूधिर का संचरण बराबर होने के कारण लाल लाल निकल आते हैं, साथ ही साथ उनमें गंदगी और दुर्गन्ध नाम को नहीं पायी जाती जैसा कि पैरों को जूतों से निकालने के बाद पायी जाती है। शहरों के रहने वाले मजे से बाहर मैदानों, पगडंडियों, जंगलों, नदी के किनारे तथा पार्कों में नंगे पांव टहलकर लाभ उठा सकते है जाड़ों में नंगे पैरों घूमने से सर्दी लगने का डर केवल भ्रम और बहम मात्र है जिसमें सत्यता लेश मात्र भी नहीं हैं।

धार्मिक दृष्टि से नंगे पैर चलने का रिवाज हमारे यहां साधु सन्यासियों में है ही। ये लोग अपने शिष्यों को नंगे पैरों चलने की शिक्षा भी देते हैं।

नंगे पैरों चलने से भूख अधिक लगती है उच्च रक्तचाप व शरीर के बहुत से रोग आश्चर्यजनक रूप से दूर हो जाते हैं।

फादर नीप के अनुसार- ''नंगे पांव चलने से सिरदर्द, गले की सूजन, जुकाम, पैर और सिर का ठंडा रहना आदि दूर हो जाते हैं।''

2. नंगे शरीर पृथ्वी पर बैठने, लेटने अथवा सोने से लाभ - नंगे पांव चलने की अपेक्षा, पृथ्वी पर नंगे बैठना अधिक लाभदायक है, और बैठने की अपेक्षा उस पर नंगे लेटना और सोना और भी अधिक गुणकारी है। क्योंकि इन हालतों में पृथ्वी से हमारा संसर्ग बहुत अधिक रहता है। पृथ्वी के स्पर्श एवं संयोग से ही प्राणियों में जीवन शक्ति की यथेष्ठ उपलब्धि होती है। अतः उत्तम स्वास्थ्य के चाहने वालों को पृथ्वी से सीधा संसर्ग रखने के लिए, उस पर बैठना, लेटना और सोना होगा ही। प्रकृति-पुत्र कृषक या बाग का माली जब तक खेत में खुली धरती पर बिना कुछ बिछाये बैठता या सोता है तो उस समय जिस सुख-शांति की अनुभूति उसे होती है उसका अन्दाजा कुछ भुक्त भोगी ही लगा सकता है।

हमारे पूर्वज पृथ्वी की अदभुत शक्ति से परिचित थे। तभी तो वे लोग पूर्ण रूप से पृथ्वी की अमोघ शक्ति का उपयोग करके संसार में ऐसे-ऐसे कार्य कर गए हैं जिनका आज हमें विश्वास नहीं होता।

योग-साधना के लिए बिना कुछ बिछाए भूमि पर सोना एक आवश्यक नियम है। जिसका पालन प्राचीन भारत के योगी लोग करते थे और आश्चर्यजनक शारीरिक व आध्यात्मिक शक्तियां प्राप्त करके संसार को चकाचौध कर देते थे। प्रसिद्ध योगी भरतृहरि व गोपीचन्द भूमि पर ही सोकर बड़ी-बड़ी सिद्धियों के मालिक हुए थे। भगवान राम 14 वर्षों तक पृथ्वी पर नंगे पैरों चले और उसी पर बैठे-सोये जिससे उन्हें वह अपार शक्ति प्राप्त हुई जिससे वह रावण जैसे शक्तिशाली राक्षस पर काबू पा सके। मेघनाद न मरता यदि लक्ष्मण 14 वर्षों तक खुली धरती पर शयन करके योगसाधना न किये होते। इसी तरह अनेकों महान आत्माएं भी जिनसे बड़े-बड़े कार्य आज तक सम्भव हुए हैं, सब पृथ्वी की अपारशक्ति को जानते थे ओर उससे लाभ उठाते थे।

प्राचीन भारत के गुरूकुलों में विद्यार्थीगण भूमि पर ही सोकर ज्ञान प्राप्त करते थे। वानप्रस्थियों एवं सन्यासियों को भी पृथ्वी पर ही सोने की व्यवस्था थी।

नंगे बदन खुली पृथ्वी पर खुले आसमान के नीचे सोना-बैठना सर्वोत्तम है। क्योंकि मनुष्य के शरीर पर तारों भरे आकाश के नीलमण्डल की विशालता और सौन्दर्य का गहरा और स्फूर्तिदायक प्रभाव पड़ता है बरसाता में वरांडे की खुली पृथ्वी पर सोना बैठना चाहिए। सर्दियों में कम्बलों का उपयोग ऊपर से किया जा सकता है। खुली धरती के बजाय पर बिना बिस्तर के सोना बैठना मध्यम है। रेत का बिस्तरा बनाकर उस पर सोना-बैठना भी उपयोगी है। यदि पहले-पहल पृथ्वी पर बिना कुछ बिछाएं नहीं न आवे तो चटाई या पतली चद्दर बिछाकर अभ्यास कर लेना चाहिए।

जिन लोगों को रात्रि कष्ट से बीतती है, चिंता, बेचैनी तथा घबराहट घेरे रहती है, और जो आत्महत्या करना चाहते हैं, ऐसे लोगों को खुली पृथ्वी पर सोने से बड़ी शान्ति मिलती है। पेट के रोगों को दूर करने में पृथ्वी पर का सोना अद्वितीय है। पृथ्वी पर उपुर्यक्त रीति से सोने से उदर, आंतें, ह्रदय आदि सभी अंग अपना-अपना काम जोरों के साथ करने लगते हैं, और शरीर का विजातीय द्रव बड़ी आसानी से पसीना, मूत्र एवं मल के रूप में बाहर फेंक दिये जाते हैं जिससे शरीर निर्मल और नवीन हो जाता है और उसमें एक नयी संजीवनी शक्ति भर उठती हैं।

जाड़ों में सही सूर्यप्रकाश में बैठकर धूप तापना हमें सुख कर होता है और उससे हमारे स्वास्थ की उन्नति होती है। फिर पृथ्वी पर उठने-बैठने तथा सोने-बैठने से हमें चिढ़ और झिझक क्यों? सूर्य की भांति पृथ्वी भी तो हमारे शरीर पर स्वास्थ्य-रस की वर्षा करती है। पृथ्वी, अन्य चारों तत्वों का रस है, ऐसा ऊपर उल्लेख हो चुका है।

पाठको हिन्दुओं में मरणोन्मुख प्राणियों को मृत्यु के कुछ समय पूर्व जमीन पर लिटा देने की प्रथा क्यों है? यह इसलिए कि धरती माता की पावन गोद ही उनकी वास्तविक सुख सेज थी जिसको वे जीवन पर्यन्त भूले हुए थे। कम से कम मरते वक्त तो एक बार उन्हें इस बात का मौका दे दिया जाये ताकि वे उसका उपभोग करके शांति का अनुभव कर लें। परन्तु उस वक्त देर हो चुकी होती है।

प्राकृतिक चिकित्सकों के आदेशानुसार सैंकड़ों हजारों रोगी रात को नंगे बदन खुली पृथ्वी पर या घास लगी भूमि पर सोकर पूर्णरूप से स्वस्थ एवं निरोग हो गये हैं। अनिद्रा रोग की जमीन पर सोना एक ही दवा है।

पृथ्वी पर सोने से बड़ा लाभ होता है कि जितना विश्राम गुदगुदे बिस्तर पर पड़े रहकर 6 या 8 घंटों में हमें मिलता है, वह पृथ्वी पर सोने से उसके आधे या चौथाई समय में ही आसानी से प्राप्त हो जाता है और शरीर निरोग भी रहने लगता है, और रात का बाकी समय हमें भगवद्भजन करने या अन्य आवश्यक कार्य करने के लिये मुफ्त में मिल जाता है।

पहलवान और मल्ल लोग जो मिट्टी से अपने बदन को आच्छादित रखते हैं अनेक लाभों के अधिकारी होते हैं।

बिजली के मारे हुए व्यक्ति या सांप के काटे हुये व्यक्ति को यदि जमीन में करीब दो हाथ गहरा गढ़ा खोद कर उसमें बैठा दिया जावे और गीली मिट्टी से गर्दन और सिर खुला रख कर उसे भर दिया जावे तो 1 से 24 घंटों तक में रोगी के शरीर से जहर बिलकुल निकल जायगा और वह मरने से बच जायगा।

यह देखा जा कसता है जब कोई जानवर बीमार होता है तो सदा की अपेक्षा रोग की दशा में पृथ्वी की शक्ति का वह खास तौर से उपयोग करता है। वह बिना कुछ खाये रोग अच्छा होने तक पृथ्वी पर बैठ कर या लेट कर आराम करेगा। घायल हुये जानवर तालाब या पोखरे के कीचड़ में जा लेटते हैं। एक बार एक पालतू सूअर बहुत बीमार हो गया। उसके मालिक ने उसे पिंजरे से बाहर निकल जाने दिया ताकि मरने के पहले वह थोड़ी आजादी की जिन्दगी जी ले। सूअर पिंजरे से निकल कर सीधे एक गोभी-शाक के खेत में चला गया और वहां एक गडढ़ा खोद कर उसकी मिट्टी में शान्ति से तट कर पड़ा रहा और सात दिनों तक लगातार बिना कुछ खाये-पिये उसी तरह पड़ा रहा। आठवें दिन पूरा स्वस्थ होकर ही वह वापस हुआ। यह है मामूली मिट्टी का प्रताप जिसका ज्ञान सूअर तक को है पर हम मनुष्य उससे अनभिज्ञ हैं। हालांकि हम रात दिन देखते हैं कि चूहा, सांप, खरगोश, लोमड़ी, हिरण, गाय, भैंस, घोड़ा, बकरी आदि जानवर पृथ्वी पर सोना-बैठना कितना अधिक पसंद करते हैं और ऐसा करके वे कितना लाभान्वित होते हैं लेकिन हम हैं कि इस मानी में पशुओं से भी सबक नहीं लेते।

जंगल के जानवर साफ की हुई या कुछ खोदीं हुई जमीन पर बैठते हैं। और लेटते हैं। लोमड़ी आदि पशु अपनी अपनी गुफाएं रखते अवश्य हैं पर सोने के समय में वे हमेशा खुली जमीन का ही उपयोग करते हैं ताकि विश्राम करते समय उनके शरीर का सम्बन्ध पृथ्वी से सीधा बना रहे और उसकी अलौकिक शक्ति उन्हें प्राप्त हो सके। ये जानवर सोने के लिये पृथ्वी पर पत्ते आदि कुछ नहीं बिछाते। ऊंट, खच्चर तथा घोड़े जब जब मंजिल तय कर के आते हैं तो थकान मिटाने के लिये धूल भरी जमीन पर खूब लोटते-पोटते हैं, जिससे वे पृथ्वी से नयी शक्ति प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार शेर, भालू तथा गधा आदि जानवर भी पृथ्वी से शक्ति अर्जन करना भलीभांति जानते हैं।

3. सूखी और गीली मिट्टी से स्नान और उससे लाभ - शुद्ध साफ मिट्टी को कपड़छान कर लीजिये, विशेष कर कोठली की मिट्टी को, और उससे अंग-प्रत्यंग को रगड़िये। जब सारा बदन मिट्टी से रगड़ा जा चुके तो 10-20 मिनट तक धूप में बैठ जाइये। तत्पश्चात् ठंडे पानी से स्नान कर डालिये। यही सूखी मिट्टी का स्नान है। इस स्नान से त्वचा नरम, लचीली, एवं कोमल तो हो ही जाती है, साथ ही साथ त्वचा के छिद्रों के खुल जाने से शरीर का विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में भरपूर बहिष्कृत होने लगता है और त्वचा के छिद्र भरपूर सांस लेने के लायक हो जाते हैं जिससे त्वचा के अनगिनत रोग दूर हो जाते हैं। बरसाती फोड़े-फुन्सियां इस स्नान से मन्त्रवत दूर हो जाती हैं। आयुर्विज्ञान में इस स्नान को रज स्नान कहते हैं और इसे गौओं के खुरों से उड़ती हुई मिट्टी से करने की व्यवस्था है। अखाड़े की मिट्टी में बार-बार गिर शरीर को मिट्टी से घिसना, व्यायाम द्वारा पसीना निकाल और रोम कूपों को खोल कर मिट्टी से निकली हुई एक प्रकार की गैस को कूपों द्वारा शरीर के अन्दर खींचकर मांस, अस्थि, तथा त्वचा को सुगठित करना भी रज स्नान कहलाता है।

घना और पक्का रंग, पुष्टता, सुगठित शरीर एवं प्राकृतिक सौन्दर्य रज स्नान से प्राप्त होते हैं। इस रज-स्नान से सन्तान न होने वालों को सन्तानोत्पत्ति तक सम्भव है। श्रीमद्भागवत पुराण में एक कथा आती है कि श्री कश्यप जी को जब सन्तान की कामना हुई थी, तो उन्होंने बारह दिन तक केवल दूध पीकर और मिट्टी से अपना समस्त शरीर मल कर नदी में स्नान किया था।

शरीर में मिट्टी मलते समय उन्होंने धरती माता की निम्नलिखित वन्दना भी नियमित रूप से की थी जिसके फलस्वरूप उन्हें सन्तान हुईः-

त्वं देव्यादि वराहेण रसायाः स्थानमिच्छता।

उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं में प्रणाशय।।

अर्थात् हे देवि मृत्तिके! प्राणियों को स्थान देने की इच्छा से वराह भगवान ने रसातल से तुम्हारा उद्धार किया था। तुम्हें मेरा नमस्कार है। तुम मेरे पापों को नष्ट कर दो।

महीन पिसी हुई और कपड़छान की हुई मिट्टी को जब पानी के साथ घोलकर उसे लेई या कीचड़ सदृश बना लेते हैं, तब इस प्रकार की गीली मिट्टी से किया हुआ स्नान गीली मिट्टी का स्नान कहलाता है। सूखी मिट्टी के स्नान की भांति ही इस गीली मिट्टी का स्नान किया जाता है। फर्क केवल

इतना है कि इसमें बालों को मलने के लिये एक खास किस्म की काली मिट्टी काम में लायी जाती है जिससे बाल मुलायम और चमकीले हो जाते हैं।

यह स्नान बहने वाले फोड़े-फुन्सियों वाले शरीर के लिये अत्यन्त उपयोगी है। त्वचा की गंदगी और सफेदी के लिए यह स्नान लाभप्रद है।

इस स्नान के बाद जब तक गीली मिट्टी थोड़ी सूख न जाय, जल से स्नान न करना चाहिए। इस स्नान के भी लाभ अनेक हैं।

यह कीचड़ स्नान भी नया नहीं है। अमेरिका में आदि निवासियों में यह स्नान बहुत पहले प्रचलित है। वहां पर प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति भी महीनों में एक बार कीचड़ स्नान जरूर करता है। वे लोग इस स्नान को करने के लिए एक छोटी कोठरी में पत्थर की शय्या बनाते हैं जिस पर स्नानार्थी कम्बल से अपना सारा शरीर ढककर बैठ जाता है और कोठरी का एक मात्र दरवाजा बंद कर दिया जाता है। तत्पश्चात कोठरी के अन्दर पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े आग में गरम कर-कर के पानी में डुबोये जाते हैं। (यह स्टीम बाथ है) जिसके फलस्वरूप कोठरी भाप से भरकर गरम हो जाती है और स्नानार्थी पसीने-पसीने हो जाता है। इसके बाद उसी पसीने की दशा में दो तगड़े जवान, स्नानार्थी के अंग-प्रत्यंग की एक घंटे तक मालिश करते हैं। और तब स्नानार्थी उस कोठरी से निकलकर किसी निकट के जलाशय पर जाकर गीली मिट्टी से अपने सारे बदन को मलता है और सबके बाद स्वच्छ शीतल जल से स्नान कर डालता है। जिसका फल यह होता है कि चमड़ा चिकना, कोमल, दृढ़ और उज्जवल हो जाता है, पर्याप्त पसीना निकलता है, और शरीर हल्का, सबल तथा निरोग बन जाता है। इस प्रकार से नियमित रूप से स्नान करने वाला कभी बीमार नहीं पड़ता।

फ्रांस और अमेरिका की शौकीन महिलाएं भी एक प्रकार की कीचड़ मिट्टी, सादा जल-स्नान के पहले अपने बदन पर नित्य मलती हैं, जिससे उनकी चमड़ी मुलायम और चमकीली हो जाती है। हमारे देश में पंजाब की स्त्रियां मुलतानी मिट्टी के उबटन का प्रयोग करती हैं, जो गीली मिट्टी के स्नान के सिवा और क्या है।

4. मिट्टी का नित्य के कामों में लाभकारी उपयोग - चूँकि मिट्टी से सब प्रकार की दुर्गन्ध आसानी से दूर हो जाती है इसलिए इससे अच्छे से अच्छा साबुन का काम लिया जा सकता है। बालू मिली हुई मिट्टी से दांत खूब साफ होता है इसलिए मिट्टी सबसे बढ़िया दन्त मंजन है। मिट्टी के घर अपेक्षा पक्के घरों से अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं और सस्ते भी।

अभ्यास प्रश्न

1. बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) पृथ्वी माता धौ नः पिता' कथन है-

अ. वेद का

ब. उपनिषद का

स. पुराण का

द. गीता का

(ख) मिटटी के गुण है-

अ. दुर्गन्ध नाशक

ब. विद्रावक

स. विष शोषक

द. सभी

(ग) चिन्ता, बेचैनी तथा घबराहट से पीड़ित व्यक्ति को क्या करना चाहिए-

अ. खुली पृथ्वी पर सोना चाहिए।

ब. सात्विक आहार विहार करना चाहिए।

स. प्राकृतिक जीवन यापन करना चाहिए।

द. उपरोक्त सभी करने चाहिए।

(घ) रज स्नान कहते है-

अ. ठंडे जल से स्नान को

ब. शुद्ध मिट्टी से स्नान को

स. सूर्य स्नान को

द. शुद्ध वायु से स्नान को

(ड.) निम्न में से सही है-

अ. मिट्टी का प्रयोग त्वचा रोगों को ठीक करता है

ब. मिट्टी का प्रयोग शरीर की दुर्गन्ध को दूर करता है

स. बालू मिट्टी दातों को साफ करती है।

द. सभी सही है।

8.7 सारांश-

प्रिय पाठकों यह शरीर मिट्टी से उत्पन्न होता है तथा अंत में इस मिट्टी में ही मिल जाता है। वेद पृथ्वी को माता के नाम से पुकारते है तथा वैज्ञानिक विश्लेषण भी इस मिट्टी के महत्व पर प्रकाश डालता है। संसार के जीतने जीव इस मिट्टी के जितने सम्पर्क में रहते है वे इतने ही स्वस्थ रहते है इसी प्रकार जो व्यक्ति इस मिट्टी के जितना समीप वास करता है वह उतनी ही स्वस्थ,सुखी, सन्तोषी एवं ईश्वर के समीप वास करता है इसके विपरित इस मिट्टी से दूर जाना भिन्न-भिन्न शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों को जन्म देता है।

यह मिट्टी जितनी सुलभ है इसकी महिमा उतनी ही महान है यह शरीर की गन्दगियों विषों को बहुत शीघ्रता एवं सहजता से दूर करने का कार्य करती है चिकित्सा के क्षेत्र में भी इसका प्रयोग अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है। चूंकि प्राकृतिक चिकित्सा की मूल मान्यता के अनुसार शरीर में रोग का मूल कारण विजातीय पदार्थ (गन्दगियाँ) होती है। यह मिट्टी इस सिद्धान्त पर ही कार्य करती हुई शरीर से विजातीय पदार्थो को दूर करती है एवं शरीर को स्वस्थ बनाती है।

8.8 शब्दावली-

विलक्षण - विशिष्ट गुण

विद्रावक - घोलक

आत्मसात् - प्रत्यक्ष करना (अनुभव करना)

खाक - मिट्टी

संसर्ग - सर्म्पक

भुक्त भोगी - स्वयं अनुभव करना

8.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

(1) (क) अ (ख) द (ग) अ (घ) ब (ड.) द ;

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तर प्रदेश

2. सक्सैना ओम प्रकाश, (2009) सरल प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवासदन, मथुरा

3. शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली

5. शर्मा श्रीराम, (1998) जीवेम शरद: शतम्, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मिट्टी चिकित्सा से आप क्या समझते है। मिट्टी के गुण-धर्मो की विस्तार पूर्व चर्चा कीजिए।

2. मिट्टी के विविध प्रकार व मिट्टी चिकित्सा के महत्व को वर्णन कीजिए।

इकाई 9 सूर्य किरण चिकित्सा: अर्थ, परिभाषायें, सिद्धान्त, उपयोग, वैज्ञानिक विश्लेषण तथा सूर्य चिकित्सा के प्रकार व सावधानियॉं

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 सूर्य किरण चिकित्सा अर्थ एवं परिभाषायें

9.4 सूर्य किरण चिकित्सा के सिद्धान्त एवं उपयोग

9.5 सूर्य किरणों के गुण

9.6 सूर्य किरणों के रंगों का वैज्ञानिक विश्लेषण

9.7 सूर्य किरण चिकित्सा के प्रकार

9.8 सूर्य चिकित्सा में सावधानियॉं

9.9 सारांश

9.10 शब्दावली

9.11 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

9.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना-

शास्त्रों में सूर्य को इस संसार

की आत्मा कहा गया है अर्थात इस सूर्य से ही संसार को प्राण (ऊर्जा) प्राप्त होती है वेदों, उपनिषदों में परमात्मा का स्वरूप मानकर इसकी उपासना का वर्णन किया है।

प्राकृतिक चिकित्सा में सूर्य के महत्व को ध्यान में रखकर सूर्य किरण चिकित्सा का वर्णन किया है। सूर्य किरण में सात रंगों का समावेश होता है, अलग-अलग रंग अलग-अलग गुणों से युक्त होता है इस चिकित्सा पद्धति में इन अलग-अलग रंगों के अलग-अलग गुणों का अलग-2 रोगों में प्रयोग की विधि का वर्णनकिया गया है। चूंकि हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अंग भिन्न-भिन्न रंगों के होते हैं, शरीर के इन भिन्न-भिन्न रंगों के अंगों पर सूर्य किरणों के रंगों का प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत इकाई में चिकित्सकीय प्रयोग, सूर्य किरणों के गुणों तथा इन किरणों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

9.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत इकाई में सूर्य किरण चिकित्सा तथा इसके सिद्धान्तों को जान सकेंगे।

समझा सकोगे कि सूर्य किरण कितनी गुणकारी होती है, इनका वैज्ञानिक विश्लेषण किस प्रकार हैं।

सूर्य किरण चिकित्सा के प्रकार व सावधानियों का अध्ययन करोंगे।

9.3 सूर्य चिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषायें

सूर्य आत्मा जगस्तसथुषच (यजु. 7/42)

सूर्य संसार की आत्मा है। संसार का संपूर्ण भौतिक विकास सूर्य की सत्ता पर निर्भर है। सूर्य की शक्ति के बिना किसी प्राणी, पशु-पक्षी एवं वनस्पति वर्ग आदि का स्वस्थ्य एवं जीवित रहना असंभव है। सूर्य से ही हमें उचित शक्ति, गर्मी मिलती है, जहॉ धूप नहीं पहुंचती है, वे लोग निश्चय ही निस्तेज, निष्प्राण और पीले पड़ जाते हैं। सूर्य चिकित्सा एक प्राचीन रोम चिकित्सा पद्धति है। इसे रोमन में हिलियोथैरपी एवं क्रोमोपैथी भी कहते हैं।

अग्नि, सृष्टि से उपादान पंच तत्वों में तीसरा उपयोगी तत्व है। परन्तु दृष्ट तत्त्वों (अग्नि-जल तथा पृथ्वी) में प्रमुख दृश्य तत्व अग्नि ही है। अग्नि को अग्निदेव मानकर उनकी पूजा अर्चना का विधान शास्त्र कारों ने बताया है। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र अग्नि मीडे पुरोहितम् आदि में ईश्वर के प्रत्यक्षरूप अग्नि

की ही प्रार्थना की गयी है। गायत्री मंत्र में भी जो भगवद रूप महामंत्र (मूल मंत्र) है इस तत्व के अधिष्ठाता सूर्य की उपासना हैं। धार्मिक रूचि के हिन्दू और पारसी आज भी सूर्य को देवता मानते हैं और नियमपूर्वक उनकी पूजा करते हैं।

सूर्य केवल प्रकाश और गर्मी ही नहीं देता बल्कि वह बुद्धि और दीर्घायु भी देता है। यथा-

सवितानः सुवतु सर्वातीतं सवितानो रसतांदीर्घमायुः।

अर्थात- यह श्रेष्ठ प्रकाश जो विश्व को प्रकाशित कर रहा है, हमें सुबुद्धि और दीर्घायुष्य प्रदान करे।

यह सत्य है कि जो व्यक्ति सूर्य प्रकाश का जितना ही अधिक सेवन करेगा उसकी दिमागी शक्ति उतनी ही विकसित होगी। सूर्य प्रकाश के सेवन से मस्तिष्क में एक प्रकार की चुम्बकीय शक्ति आती है जो मनुष्य को बुद्धिमान बना देती है। हमारे पूर्वज मुनि-ऋषि इसी सूर्योपासना के बदौलत बुद्धिमान बने जिनकी जोड़ का एक भी बुद्धिमान व्यक्ति भविष्य में अब पैदा होगा या नहीं, संदिग्ध ही है।

अग्नि तत्व से हमें धन जन की प्राप्ति एवं रक्षा होती है। यथा-

''सूर्यो नो दिवस्पातु''

''अग्निः पार्थिवेभ्यः।''

(ऋग्वेद)

अर्थात् सूर्य हमारे दिन की रक्षा करे और अग्नि हमारे धन-जन की रक्षा करें। और भी -

''नमः सूर्याय शांताय सर्व रोग विनाशिने।

आयुरारोग्यमैश्वर्यंदेहिदेव नमोऽस्तुते।''

अर्थात् शांतिप्रदान करने वाले, सर्व रोग नाश करने वाले सूर्य भगवान को नमस्कार है। हे! सूर्यदेव आयु आरोग्य, और ऐश्वर्य हमें दो। आपको नमस्कार है।

विश्व के अन्य भागों के निवासी भले ही सूर्य के महत्व को भली प्रकार न समझे हों, पर भारतवर्ष में तो आदि काल से ही सूर्य को समस्त जड़, चेतन तथा सुर आदि को उत्पन्न करने वाला माना गया है। भारतीयों की दृष्टि में सूर्य ईश्वर का प्रमुख अंग नेत्र है, क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देता है और प्रत्येक प्राणी उसको देख सकता है, जबकि अन्य देवताओं के सम्बन्ध में यह बात नहीं है।

तैत्तरीय ब्राह्मण में लिखा है कि उदय तथा अन्त होते हुए सूर्य को ध्यान करता हुआ ब्राह्मण सभी सुखों को प्राप्त करता है।

यजुर्वेद में आया है- 'चक्षोः सुर्यारिजायत' अर्थात सूर्य भगवान का नेत्र है। परन्तु वास्तव में सूर्य हम सबों का ही नेत्र है। क्योंकि सूर्य के ही प्रकाश से हम अपने नेत्रों का प्रयोग कर पाते हैं और उस प्रकाश के अभाव में हम लगभग अंधे ही रहते हैं।

सूर्य का मनोहर वर्णन है-

एक चक्रो रथो यस्य दिव्य कनक भूषितः।

समें भवतु सुप्रीतः पद्महस्तो दिवाकरः।

अर्थात् जिस सूर्य का अकेला चलने वाला एक पहिये का अद्भुत सुवर्ण में अलंकृत रथ है वह हाथ में कमल लिए हुए सूर्य मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आगे वर्णन है

''तामं आवह जात वेदो लक्ष्मी मन पगामिनीम्।

यस्यां हिरणयं विन्देयं गामश्वं पुरूषान हम्।''

अर्थात्, हे जात वेद अग्रे। नहीं जाने वाली लक्ष्मी हमें लादे जिससे हम हिरण्य स्वर्णादि मूल्यवान पदार्थों को प्राप्त करें, तथा गायों और उत्तम पुरूषों को प्राप्त करें।

''स्वस्ति श्रद्धां यशः प्रज्ञान विद्यांबुद्धिश्रियं बलम्।

आयुषं तेज-आरोग्यं देहिमे हव्य वाहन।।''

अर्थात हे हव्य वाहन! हवन ग्रहण करने वाले अग्निदेव! कल्याण, यश, श्रद्धा, विद्या, लक्ष्मी, बल, आयुष्य, तेज, एवं आरोग्य प्रदान करो।

इस तरह देखते हैं कि हमारे ग्रन्थ वेद में सूर्य उपासना सम्बन्धी अनेक ऋचाये विद्यमान हैं जो इस बात का प्रमाण है कि हम भारतवासी अनादि काल से सूर्य की उपयोगिता मानते आ रहे हैं। हम आरम्भकाल से ही सूर्य एवं अग्नि को देवता के रूप में पूजते आ रहे हैं। क्योंकि सूर्य के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भारतवर्ष के साथ-साथ रोम, यूनान, मिश्र सभी जगह सूर्य को देवता माना गया है। जापान में सूर्य के अनेक मन्दिर हैं। दक्षिण अमेरिका में भी एक विशाल सूर्य मन्दिर है।

भगवान सूर्य की रोचमाना दीप्ति अर्थात् सुन्दर प्रभा शरीर के मध्य में मुख्य प्राणरूप होकर रहता है। इसी से सिद्ध है कि शरीर का स्वस्थ एवं दीर्घजीवी होना भगवान सूर्य की कृपा पर निर्भर है।

प्रश्नोपनिषद में उल्लेख हैः-

यत्सर्वें प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणन् रश्मिषु सनिघने।

अर्थात् - जब आदित्य प्रकाशमान होता है तब वह समस्त प्राणों को अपनी किरणों में रखता है।

उपर्युक्त श्लोक में एक रहस्य छिपा है। वह यह कि प्रातः काल की सूर्य किरणों (नीलोत्तर किरणें) में अस्वस्थता का नाश करने की जो अद्भुत शक्ति है, वह दोपहर या सायंकाल की किरणों में नहीं होती।

वेद भगवान कहते हैं कि प्रातः काल की आदित्य किरणों से अनेक व्याधियों का नाश होता है। सूर्य रश्मियों में विष दूर करने की अपूर्व शक्ति है।

सूर्यातपः स्वेदवंलह सर्व रोग विनाशकः।

मेदच्छेद करश्चैव बलोत्साह विवर्धनः।।

अर्थात, सूर्य की किरणें शरीर में स्वेद प्रवाहित करती हैं और सभी रोगों का नाश करती हैं। वे शरीर से चर्बी को छांट कर शक्ति और आनन्द प्रदान करती हैं।

ददु्र विस्फोट कुष्ठघ्नः कामला शोथ नाशकः।

ज्वरातिसार शूलानां हार को नात्र संशयः।।

अर्थात सुर्यरश्मियां दाद, कष्ट पूर्ण दाने, कोढ़, जल ज्वर, अतिसार तथा उदर शूल रोगों को नष्ट कर देती हैं। इसमें किचिंत भी सन्देह नहीं है।

सूर्यरश्मियों के दैनिक प्रयोग से मनुष्य कफ, पित्त एवं वायु के दोष से उत्पन्न सभी रोगों से मुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रह सकता है।

अर्थात् सूर्य ही समस्त जगत की आत्मा है।

प्लीनी का कथन है कि रोम में छः सौ वर्षो तक कोई चिकित्सक ही नहीं था और रोम निवासी चिकित्सक का काम केवल सूर्य रश्मियों से लेते थे।

इग्लैंड के सेन्ट ल्युकस अस्पताल के चर्म रोग चिकित्सालय के प्रमुख डॉक्टर वेपर्ड लाग एम0डी0 ने 2 जुलाई 1932 में स्कीयर नामक पत्र के अंक में एक लेख निकाला है, उसमें वे लिखते हैं ''लोगों की यह धारणा है कि सूर्य रश्मि में शरीर को अनावृत रखने से जो लाभ प्राप्त होते हैं यह हाल का अन्वेषण है। पर सच बात यह है कि प्राचीन काल में भी लोग सूर्य प्रकाश चिकित्सा के अनभिज्ञ न थे और ईसाई सन के प्रारम्भ से पूर्व में भी यह उपाय काम में लाया जाता था। प्राचीन महापुरूषों के लेखों से और आधुनिक पुरातत्व सम्बन्धी खुदाई से यह बात सिद्ध हो जाती है। युनानी लोग धूपस्नान अपने भवनों की अट्टालिकाओं में लेट कर करते थे युनानी देवता के मन्दिर के पास खुदाई के एक लम्बा पथ मिला है जो रोगियों के कमरे में लगाया हुआ है और जहाँ रोगी धूप स्नान करते थे। पोम्पीआड्डे के खंडहरों से यह भलीभांति ज्ञात होता है कि प्रत्येक रोमन भवन में धूप स्नान गृह होता था।

ईसा से चार पांच सौ वर्ष पूर्व हिपोक्रेटीज जिसको प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का जनक कहते हैं अपने रोगियों को नियमित रूप से सूर्यस्नान करवाता था। मिश्र का सम्राट फिरऊन द्वितीय धूप स्नान का बड़ा प्रेमी था। ग्रीक निवासी घर के बाहर सूर्य प्रकाश में लगभग नंगे ही व्यायाम करते थे जिससे उनके शरीर पर वायु और प्रकाश का भरपूर प्रभाव पड़ता था। डिमोस्थनीज युनान का एक विख्यात व्यक्ति था प्रतिदिन नियमितरूप से एक घंटा धूप तापता था और औरों को भी सलाह देता था। उपरोक्त विवेचन से आप सूर्य चिकित्सा के अर्थ, परिभाषा, महत्ता तथा ऐतिहासिकता को समझ गये होगे।

9.4 सूर्य किरण चिकित्सा के सिद्धान्त एवं उपयोग

जिस सूर्य प्रकाश से संसार का तम क्षणमात्र में नाश को प्राप्त हो जाता है, जिस सूर्य प्रकाश से सृष्टि के कण-कण में जीवन का, शक्ति का, सौन्दर्य का और ऐश्वर्य का संचार एवं प्राकाट्य होता है तथा जिस सूर्य प्रकाश की सुनहरी किरणें सागर से ढेर का ढेर वारि-बिन्दु खींचकर अमृत वर्षा करके ग्रीष्मताम से झुलसी हुई वसुन्धरा पर अपनी रंगीनियों की माया बिखेर सकती हैं, उस सूर्य प्रकाश अथवा उसकी जीवनदायिनी स्वर्णिम रश्मियों के दो सिद्धांत हैं-

1. प्राणी का सम्पूर्ण शरीर रंगीन है। बाहर से देखने वाले सभी अंगों का रंग भिन्न है, और भीतर के अवयव अलग-अलग रंग लिए हुए है। मनुष्य की वाणी एवं विचारों के प्रकम्पन भी रंगीन है। मनुष्य का पूरा का पूरा शरीर रंगों का पिण्डं है।

2. शारीरिक विकास का मुख्यता सूर्य की शक्ति, किरणों, रोशनी, रंगों और ताप पर निर्भर होना। यह प्राकृतिक विज्ञान का सर्वोत्तम तथ्य है। जब प्राणी के जीवन और स्वास्थ्य का आधार सूर्य है तो सूर्य

किरणों से उत्पन्न रंगों से सही चिकित्सा होने में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। प्राकृतिक नियम है जो चिकित्सा जितनी स्वाभाविक होगी उतनी ही प्रभावशाली होगी।

अब प्रश्न उठता है कि सूर्य किरणो के क्या उपयोग है-

मानव की रोग निवृति के लिये सूर्य प्रकाश को भगवान का एक वरदान ही समझना चाहिए। कारण प्रसिद्ध डॉक्टर रिकली के अनुसार मानव जलचर न होकर वायु और प्रकाश का प्राणी है। इसलिए वायु और प्रकाश के ऊपर जहां हमारा विकास और जीवन अवलम्बित है, वहीं उनमें हमारे रोगों का दूर करने के गुण भी विद्यमान होने ही चाहिए। मानव-कल्याण के लिए तो उपर्युक्त डॉक्टर ने प्रकाश को सर्वोपरि बतलाया है। वह कहता है-&**Water is good, but air is better and light is best of all."सूर्य प्रकाश की स्वास्थ्यवर्द्धक एवं रोगनाशक शक्ति - एक कहावत है-' जिस मकान में सूर्य प्रकाश का प्रवेश नहीं होता, डॉक्टर का प्रवेश होता है' इस कहावत में बहुत कुछ तथ्य है। क्योंकि रोग के कीटाणु अन्धकार में ही वृद्धि पाते हैं, और प्रकाश उनके लिए काल है। अतः जिस स्थल पर सूर्य की किरणें बरसती हैं, वहां रोग टिक ही नहीं सकते। पौधों के लिए ही सौर-किरण विकरण नितान्त प्रयोजनीय नहीं है, बल्कि जीव-जीवन के लिए भी उसकी सर्वप्रथम आवश्यकता है।

विज्ञान से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि सूर्य-किरणों के अभाव में कोई भी प्राणी पनप नहीं सकता। संसार के जिस भाग में प्रकृति की यह देन बरस रही है, उसे बड़ा भाग्यवान भाग समझना चाहिए। नदियों और जलाशयों के जल सूर्य प्रकाश के प्रताप से ही शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल रहते हैं। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी, जिन्हें सूर्य की विपुल शक्ति का पता नहीं है, वे उसके लाभ से वंचित ही रहते है।

सूर्य प्रकाश से शरीर में प्राणों का संचार होता है।, जिसकी आवश्यकता हमें सदैव रहती है, अतएव हमें सोने बैठने, रहने तथा भोजन करने के स्थान को खूब हवादार और प्रकाशमय रखना चाहिए। घर इस प्रकार बनाना चाहिए जिसमें सूर्य किरणों का प्रकाश अनवरत आता रहे।

उत्तम स्वास्थ्य के जिज्ञासुओं को कभी-कभी नंगे बदन धूप में टहलना या बैठना चाहिए। इससे न केवल स्वास्थ्य सुधरेगा, अपितु नैसर्गिक सौन्दर्य वृद्धि भी होगी। शरीर चर्म के लिए सूर्य-रश्मियां, 'टानिक' का काम करती हैं। सूर्यकिरणों में स्नान करने वाले बच्चे बली पुष्ट और निरोग होते है। अब तो पाश्चात्य देशों में एक नंगा-सम्प्रदाय ही खुल गया है, जिसका सूल सिद्धान्त सूर्य किरणों की स्वास्थ्य सम्बन्धी असाधारण गुणकारिता पर ही निर्भर है।

सूर्य प्रकाश द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हर समय धूप में ही रहा जाये। प्रतिदिन प्रातःकाल कम से कम 10-20 मिनट नंगे बदन सूर्य प्रकाश लेना यथेष्ट है। सिर और आंखों

को धूप से बचाये रखना चाहिए तथा धूप स्नान के बाद जल से स्नान करना जरूरी है। शरीर को तंग कपड़ों से कभी भी नहीं जकड़ना चाहिए। बल्कि इसके बदले स्वच्छ, हवादार, एवं ढीला-ढाला वस्त्र पहनना चाहिए जिसमें सूर्य की किरणें शरीर की त्वचा तक पहुंचकर लाभ पहुंचा सके। सूर्य का गुणगान अनेको विद्धानो ने भी किया है - मिस्टर ए0बी0 गारडेन- 'आदि काल से मानव, पशु पक्षी तथा वनस्पति, सभी सूर्य प्रकाश से लाभ उठा रहे है। धूप से ही उनमें सुन्दरता आती है और स्वास्थ्य भी। हिन्दुओं में जो सूर्य को भगवान मानकर उसकी पूजा की जाती यही रहस्य है।''

डॉ0 जेम्स कुक-'' सुर्य- प्रकाश में निस्सन्देह स्वास्थ्य वर्द्धक शक्ति है।''

डॉ0 फीर्ब्सविंसलो- अपनी रचना Light, its Influence on life and health में लिखते हैं- यह मानी हुई बात है कि जो लोग अंधेरे मे रहते या काम करते हैं, उनके शरीर और मस्तिष्क दोनों की हालत बड़ी खराब रहती है.....।

डॉ0 बैबिट- सुर्य प्रकृति की प्रयोगशाला में विशेष स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तु है। हर प्रकार के रोग चाहे वे कितने ही पुराने और पेचीदा हों, सूर्य-किरणों की सहायता से अच्छे किये जा सकते हैं। विजातीय पदार्थ, जिसकी रहना रोग का कारण है, दूर करने में सूर्य की शक्ति बड़ी कारगर है, सूर्य की किरणें रक्त को शुद्ध करती हैं तथा उसके प्रवाह और शक्ति को बढ़ाती है।

डॉ0 स्टीबेंस- '' जब सूर्य-रश्मियां मनुष्य के नंगे शरीर पर सीधी पड़ती हैं, तो वे शरीर के केवल ऊपरी भाग के रोगाणुओं का ही नाश नहीं करती अपितु शरीर के भीतरी भाग के रोगाणु भी उससे नष्ट हो जाते हैं। प्रकाश अपनी उष्णता एवं रोगनाशक शक्ति द्वारा केवल त्वचा के छिद्रों को ही नहीं खोलता तथा मस्तिष्क को भी प्रकाशित करता है। वह केवल रक्त को ही नहीं शुद्ध करता बल्कि शरीर की नस-नस में प्रवेश कर उसे स्वच्छता प्रदान करता है।

मि0 फेंकक्रेन-'' जब कभी सम्भव हो, सूर्य प्रकाश में अपना अधिक से अधिक समय व्यतीत करों।''

डॉ0 रड्डौक-'' शारीरिक विकास एवं सुन्दर स्वास्थ्य के बनाये रखने में सूर्य प्रकाश का महत्व कभी पूरी तरह नहीं समझा गया। खुले प्रकाश में कुछ घंटो तक प्रति दिन रहना प्रत्येक नर-नारी को अपनी दिनचर्या का एक अंग बनाना चाहिए।

डॉ0 एफ.जी. वेल्श-दक्षिण- पुर्वी अफ्रीका के निवासियों की अद्भुत शक्ति का रहस्य केवल उनका खुली हवा और प्रकाश में नंगे शरीर रहना है। डॉ0 जेम्स सी0 जैक्सन- सूर्य प्रकाश सेवन से मस्तिष्क में चुम्बकीय शक्ति की वृद्धि होती है जो एक अनूठी चीज है।

9.5 सूर्य किरणों के गुण

9.5.1 लाल किरणें- सूर्य-रश्मि पुंज में 80 प्रतिशत केवल लाल किरणें और तीव्र लाल किरणें होती हैं। ये गर्मी की किरणें होती हैं जिनको हमारे चर्म भाग 100 प्रतिशत सोख लेते हैं। स्नायु-मण्डल को उत्तेजित करना इनका विशेष कार्य है। लाल रंग के कमरे में बैठकर खाने से पाचन बिगड़ जाता है और पेट के कितने ही रोग हो जाते हैं। लाल रंग गर्मी बढ़ाता है। यही कारण है कि जाड़ों में हम लाल रंग के अस्तर की रजाइयां इस्तेमाल करते है। रक्तहीनता तथा गठिया आदि रोगों में लाल कपड़े पहनना उपकारी है। जिसका हृदय दुर्बल हो वह लाल रंग का वस्त्र न पहने। जिसके पांव सदैव ठण्डे रहते हों वह लाल रंग का मोजा लाभ के साथ पहन सकते है। यह रंग चंचलता उत्पन्न करता है और स्वभाव में प्रखरता लाता है। परन्तु गुलाबी रंग प्रेम का प्रतीक है।

यह रंग वायु से जोड़ो का दर्द सर्दी का दर्द, सूजन, मोच, लकवा, शीतांग आदि स्नायु मण्डल के सभी रोगों में उपकारी है। इससे लूले-लंगड़े मनुष्य तक अच्छे हो जाते हैं। यह रंग विद्युत गुण वाला भी होता है। शरीर के निर्जिव भाग को चैतन्यता प्रदान करने में अद्वितीय है। शरीर के किसी भाग में यदि गति न हो तो लाल प्रकाश डालने से उस भाग में चैतन्यता आ जाती है। विशेष-विशेष रोगों में ही लाल किरण तप्त जल पीने के काम में आता है। इस जल को बहुत सोच समझकर पीना चाहिए। यह जल विशेषर मालिश करने या शरीर के बाहरी भाग में लगाने या पट्टी देने के काम में आता हैं। यह जल एलोपैथी से भी अधिक गुणकारी होता है। यदि भूल से यह जल पी लिया जाये तो खून के दस्त अथवा कै होने का भय रहता है।

यह रंग प्रायः लगाने और मालिश करने के काम में आता है। कुछ रोगों में अन्य रंगों के साथ मिलाकर पीने को भी दिया जाता है। यह रंग आंखों में न पड़ना चाहिए वरना वे खराब हो सकती है।

शरीर में लाल रंग की कमी से सुस्ती अधिक होती है निद्रा अधिक सताती है, भूख घट जाती है तथा कब्ज भी रहती है। नेत्र और नाखून नीले हो जाते हैं तथा दस्त का रंग चिकटा या नीला हो जाता है।

शरीर में लाल रंग की वृद्धि से त्वचा में सूजन आ जाती है और गर्मी के विकार उभड़ आते हैं।

लाल रंग बढ़ाने से नीला रंग या उसका प्रभाव दबता है। सौर्य चिकित्सा में पित्त का रंग लाला माना गया है।

ज्वर, प्लेग ज्वर, के आरम्भ में आधा लाल-आधा गहरा नीला तप्त जल जरूर देना चाहिए। हैजे की असाध्यावस्था में भी यह जल 15 ग्राम किन्तु एक बार अवश्य पिलाना पड़ता है।

इसी प्रकार लाल-किरण तप्त तेल की मालिश किसी रोग के कारण कड़े पड़े हुए अंग को अथवा भीतरी स्नायु और मांसपेशियों के कमजोर पड़ जाने पर उत्तेजना एवं स्फूर्ति पैदा करने के लिए लाभकारी है। इससे भीतरी अवयव अपने-अपने स्थान पर ठीक आ जावेंगे और सजीव हो उठेगे।

9.5.2 नारंगी किरणें- यह रंग भी गर्मी बढ़ता है। यह रंग पुराने रोगों में तीन दिन तक पहले पहल देकर पेट को साफ करने के काम में लाया जाता है और तब असल रोग की दवा दी जाती है। यह रंग दमा रोग के लिए लाभकारी है। नसों की बीमारी और लकवा आदि वात-व्याधियों की एक ही औषधि है। तिल्ली के बढ़ने, मूत्राशय और आंतों की शिथिलता, उपदंश आदि रोगों में भी नारंगी किरण तप्त जल काम में आता है।

9.5.3 पीली किरणें - पीली किरणों का प्रभाव पेट, जिगर, तिल्ली, फेफड़ों, तथा हृदय के रोगों में विशेष रूप से हितकर है। इससे पेट की गड़गड़ाहट, पेट फूलना, पेट में पीड़ा होना, कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, कृमि रोग, पेटविकार आदि रोग दूर होते है। पीली किरण तप्त जल थोड़ा-थोड़ा कुछ दिन तक पीने से लाभ होता है। अधिक मात्रा में सेवन करने से कभी कभी तो पेट में इतनी गर्मी बढ़ जाती है कि दस्त आने लगते हैं। यह जल युवक और युवतियां पर अपना प्रभाव तुरन्त दिखलाता है। यह जल अधिकतर पीने के काम में प्रयोग होता है। मगर आवश्यकता पड़ने पर इसे मालिश और अन्य रंग के जलों के साथ मिलाकर पट्टी रखने के काम में भी आता है।

इस रंग की कमी, तथा हल्के नीले रंग की वृद्धि से शरीर में पेट रोग, गुल्मरोग, शूल, पसली का दर्द, मसूढ़ो का दर्द, योनिजन्यशूल, कृमि, दिल का रोग, फेफड़े का रोग, कोष्ठबद्धता, तथा शोथ उत्पन्न हो जाता है।

इस रंग की वृद्धि से शरीर में दर्द उठना, धड़कन, दर्द आदि उत्पन्न हो जाते है। इस रंग के बढ़ाने से लाल और नीला रंग मिश्रित के जो कुप्रभाव होते हैं, वे मिट जाते हैं वात तथा कफ जनित रोगों को यह रंग शीघ्र दूर करता है। सूर्य-चिकित्सा में वात का रंग पीला माना गया है।

9.5.4 हरी किरणें - इसका स्वभाव मध्यम है। यह रंग आंख और त्वचा के रोगों में विशेष उपकारी है। यह रंग भूख बढ़ाता है। जिसको गर्मी, खुजली या नासूर, आदि चर्म रोग हों, उन्हें हरे रंग का कपड़ा पहनना चाहिए। चेचक रोग में यह रंग बड़ा लाभ करता है। इससे हाथ-पांव का फटना, दर्द, खाज, फोड़ा, गंज, रक्तपित्त, अर्थात् छाती, नाक, मुंह, गुदा द्वारा रक्त गिरना, स्त्रियों का रक्त प्रदर, बवासीर अच्छा हो जाता है। शरीर में पकने वाले, सड़ने वाले, बहने वाले, दुर्गन्ध युक्त और किसी भी दवा से न अच्छा होने वाले इसी प्रकार के विकार निस्सन्देह दूर हो जाते हैं। यह रंग ठंड पहुचाने वाला है। ज्ञानतन्तुओं और स्नायु मण्डल को बल देता है। यह रंग कटि व मेरूदण्ड के निचले भाग के विकारों खासतौर पर दूर करने वाला है। स्वप्नदोष को भी नाश करता है।

हरी किरण तप्त जल पीने, पट्टी रखने, तथा मालिश के काम में आता है, इस रंग की कमी और लाल रंग की वृद्धि से शरीर में फोड़ा, फुन्सी, खुजली, दाद आदि त्वचा के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। हरा रंग बढ़ाने से लाल रंग के विकार दबते है।

हरा रंग मस्तिष्क की गर्मी शांत करने और आंख के रोगों में अचूक है। समय से पहले ही सफेद होने वाले बाल इस रंग के प्रयोग से फिर काले हो जाते हैं। हरा तप्त तेल सिर के पिछले भाग में लगाने से स्वप्नदोष तथा धातु सम्बन्धी रोग मिट जाते हैं। सिर और पांव में लगाने से नेत्ररोग नहीं होते और नींद अच्छी आती है, कर्ण रोगों में इस तेल को कान में डालते हैं।

9.5.5 आसमानी रंग की किरणें - यह रंग ठंडक और शान्तिदायक है। इसमें विद्युत शक्ति होती है। यह पौष्टिक भी होता है इसीलिए परन्तु कब्ज भी करने वाला होता है। जब शरीर का कोई भाग या समस्त शरीर गर्म हो उस समय इस रंग का प्रयोग करना चाहिए।

गर्मी की अधिकता से होने वाले रोग जैसे ज्वर, श्वास, कास, सिर पीड़ा, पेचिश, अतिसार, संग्रहणी, मस्तिष्क के रोग, प्रमेह, पथरी, मूत्र विकार आदि इस रंग से सरलता के साथ अच्छे हो जाते हैं।

यह रंग सब रगों में श्रेष्ठ है। प्राणिमात्र का नैसर्गिक जीवन इसी रंग पर निर्भर करता है। यही कारण है कि समस्त पृथ्वी पर फैले हुए आकाश का रंग नीला है। इसी रंग द्वारा जीवों को जीवन शक्ति की प्राप्ति होती है। यह रंग भक्ति, अनुराग, एवं प्रेम का जनक है। हिन्दू शास्त्र में राम और कृष्ण के नील वर्ण विग्रह के ध्यान का विधान है। उसका एक अभिप्राय यह भी है कि नील वर्ण अनायास ही शान्ति प्रदान करता है। यह रंग जितना ही हल्का होगा उतनी ही अधिक ठंडक देने वाला होगा। और जितना अधिक गहरा होगा, उतनी ही उसमें गर्मी होगी।

आसमानी किरण तप्त जल सब रोगों पर चलता है और गुण करता है किन्तु यदि गले में छाले हो गये हों, कांटे पड़ गये हों, पीव बहता हो, रूधिर बहता हो तो इस पानी के प्रयोग से प्रथम छाले बढ़ते मालूम होंगे परन्तु इससे घबड़ाना नहीं चाहिए उपचार चलने देना चाहिए, अवश्य लाभ होगा।

यह रंग पीने, पट्टी रखने- दोनों के काम में आता है। चुपचाप बैठा नहीं जाता, कभी-कभी शरीर गर्म हो जाता है, और पतले दस्त भी आने लगते है। आंखें गुलाबी, नाखून लाल, पेशाब लालिमा लिए हुए पीला और दस्त पीला या लाल होगा।

यदि इस रंग के जल से घाव धोना पड़े तो धोने में इस जल का अधिक देर तक प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा घाव में पीड़ा होने लगेगी।सूर्य-चिकित्सा में कफ का रंग नीला माना गया है।

यदि ततैया, बिच्छू, शहद की मक्खी आदि काट खायें तो यह जल उस स्थान पर मल देने से या उसकी पट्टी रख देने से आराम हो जाता है।

आसमानी-किरण-तप्त तेल की मालिश कुछ दिनों तक रोज आधा घंटे तक धूप में बैठकर करने से शरीर गठीला जाता है और बल की वृद्धि होती है।

9.5.6 नीली किरणें - इस रंग की कमी और लाल रंग की अधिकता से, मनुष्य ज्वर, अतिसार एवं पेट के मरोड़ आदि रोग से पीड़ित हो जाता है।

नीली किरण तप्त तेल के व्यवहार से कुसमय में बालों का सफेद होना, कड़े होना, गिरना, सिर दर्द इत्यादि पीड़ायें समूल नष्ट हो जाती हैं। यह तेल बालों को बढ़ा कर दिमाग को तर और शांत रखता है, तथा ताकत पहुँचाता है। 101 डिग्री बुखार से ऊपर सूर्य किरण जल काम में आता है। कीटाणुनाशक फोड़े फुन्सी, गले के रोग, टांसिल, मुंह के छाले, में कुल्ला करें।

9.5.7 बैंगनी किरणें - इस रंग की प्रकृति भी नीले और हरे रंग की भांति शीतल है। यह रंग शरीर का ताप कम करने में गुणकारी है। शरीर में इसकी कमी हो जाने से हैजा, अतिसार, प्रलाप आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पागल कुत्ते के काटे, मस्तिष्क दौर्बल्य, तथा हृदय की धड़कन में बैंगनी किरण तप्त जल लाभ करता है। ये विद्युत किरणें भी कहलाती हैं, जिन पर पृथ्वी के सभी प्राणियों का जीवन निर्भर है।

9.5.8 अल्टरावायलेट या 'नीलोत्तर किरणें' - इन किरणों का अदृश्य किरणों या अष्टम किरणें भी कहते है। भयंकर से भयंकर रोग कीटाणु तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इसमें विषनाशक शक्ति में विद्यमान है। यह किरण विटामिन का स्वाभाविक स्रोत है। इस किरण में जीवनशक्ति एवं स्वास्थ्यबर्द्धक गुण तो अनन्त हैं ही, पर इसको प्राकृतिक रूप में प्राप्त करना बड़ा कठिन है। कारण, नमी और धूल से भरे वातावरण को भेद कर ये किरणें हम तक बहुत कम पहुँच पाती हैं। ये किरणें केवल सूर्योदय के समय ही थोड़ी मात्रा में प्राप्त की जा सकती हैं, वह भी नंगे बदन रहने पर। क्योंकि यह बात प्रयोग से सिद्ध हो चुकी है कि ये किरणें सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्त्रों को भी बेध नहीं पाती जिससे शरीर, हर समय वस्त्रों से लदा रहने के कारण, उदार प्रकृति के इस महान वर को प्राप्त नहीं कर सकता। इसी अमृत का लाभ उठाने के लिए स्वास्थ्य-विशेषज्ञ सूरज निकलने के पहले उठने का आदेश देते हैं, नंगे सिर, नंगे बदन स्वर्ग बेला में वायु का सेवन के लिए खुले मैदान में निकल जाने का अनुरोध करते हैं, तथा नंगे बदन ही सूर्य के सामने खड़े होकर उनको जल चढ़ाने आदि धार्मिक कृत्यों की व्यवस्था देते हैं। पर हममें से कितने हैं जो उनके कहने को मानकर इन अमृत तुल्य नीलोत्तर किरणों से लाभ उठाते हैं?

निरावृत खेत की फसलों पर जब सुबह-सुबह नीलोत्तर किरणें पड़ती हैं तो ये किरणें उनके द्वारा खींच या सोख ली जाती हैं जिनसे उनकी उपज में खाद्योजों (vitamin) की वृद्धि हो जाती है। उसी प्रकार जब ये किरणें मनुष्य के नंगे बदन पर पड़ती हैं तो ये तत्काल त्वचा द्वारा खुन में प्रवेश कर जाती हैं और अन्दर पहुंच कर विटामिन 'डी' की वृद्धि करती हैं, और जीवन शक्ति बढ़ाती हैं, जिससे शरीर में काफी मात्रा में लाल रक्त उत्पन्न होकर वह अधिकाधिक बलवान हो जाता है।

डॉ0 बर्नर मैकफैडन के कथनानुसार, ये किरणें अपने आश्चर्यजनक गुणों के साथ ही रक्त में कैल्शियम की मात्रा बढ़ा देती हैं, इसी से ये काडलिवर आयल से हीं अधिक गुणकारी हैं। यह भी सिद्ध हो चुका है कि ये किरणें विटामिन 'ए' के प्रभाव को अधिक शक्तिशाली बना देती हैं। विश्व के समस्त सफल प्राकृतिक चिकित्सक जिनमें बर्नर मैकफैडन, बेनिडिक्ट लस्ट, तथा स्टेनली लीफ आदि हैं, इन किरणों का प्रयोग अपने स्वास्थ्य गृहों में सफलता के साथ किया है। उनका कहना है कि ये किरणें, श्वेत और लाल रक्त कणों, कैलशियम, फासफोरस, फास्फेट, आयोडीन और लोहा इत्यादि में समता पैदा कर देती हैं।

9.6 सूर्य किरणों के रंगों का वैज्ञानिक विश्लेषण

नारंगी रंग में	हरे रंग में	नीले रंग में
अल्कालीन (Alkaline)	बेरियम (Barium)	अल्यूमिनियम (Aluminium)
बेरियम (Barium)	कार्बन (Carbon)	बेरियम (Barium)
लोहा (Iron)	क्लोरोफील (Chlorophyl)	क्लोरोफार्म (Chloroform)
तांबा (Copper)	क्लोरीन (Chlorine)	केडमियम (Cadmium)
आर्सेनिक (Arsenic)	तांबा (Coper)	तांबा (Coper)

कैल्शियम (Calcium)	नाईट्रोजन (Nitrogen)	शीशा (Lead)
हाईड्रोजन (Hydrogen)	निकिल (Nickel)	निकिल (Nickel)
निकिल (Nickel)	प्लेटीनम (Platinum)	आक्सीजन (Oxygen)
कार्बन (Corbon)	सोडियम (Sodium)	फासफेरिक एसिड (Phospheric Acid)
अल्यूमिनियम (Aluminium)	रेडियम (Radium)	जस्ता (Ninc)
मेगनीज (Manganese)	हाइड्रोक्लोरिक एसिड (Hydrochliric Acid)	टीन (Tin)
	फेरस सल्फेट (Ferrous Sulphate)	

9.7 सूर्य किरण चिकित्सा के प्रकार:

सूर्य किरण चिकित्सा के निम्न प्रकार है -

9.7.1 साधारण धूप-स्नान - साधारण धूप स्नान के लिये जमीन पर, तख्त, कम्बल, चटाई या दरी पर ऐसी जगह लेटना चाहिये जहां धूप तो काफी हो पर हवा तेज न हो। सिर को अच्छी तरह कपड़े से या छतरी से ढक लेना चाहिये, तथा जितनी देर इच्छा हो और अच्छा मालूम पड़े उतनी ही देर लेटना चाहिए। पसीना निकल जाये तो अच्छा है, पर शुरू में ही पसीना निकालने के लिये तकलीफ सहकर धूप में न रहना चाहिये।

सूर्य-स्नान द्वारा पसीना निकालना इस वजह से जरूरी होता है कि उस पसीने द्वारा अन्दर का विकार और गंदगी बाहर निकल जाती है।

इस स्नान से निरोग शरीर रोगों से बचा रहता है और रोगी शरीर प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अन्य उपचारों के साथ धीरे-धीरे रोग मुक्त हो जाता है।

9.7.2 पसीना लाने के लिए धूप-स्नान - गरम पानी पीकर और निर्वस्त्र होकर धूप स्नान 20 से 30 मिनट तक लेने से पसीना बह चलेगा। किसी-किसी को पसीना नहीं भी आता है। पर पसीना आये या न आये दोनों हालतों में आधा घंटा बाद उठ कर ठंडे जल से स्नान कर लेना आवश्यक है। जिन लोगों को इस स्नान से व्यक्ति को पसीना न आये उन्हें इस स्नान को 3-4 बार करने के बाद पसीना आने लगेगा।

इस स्नान को लेते समय सिर पर ठंडे पानी से भींगी तौलिया रखना तथा बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा गरम पानी पीते रहना जरूरी है।

9.7.3 सप्त किरण स्नान या धूप स्नान - सूर्य को 'सप्त-किरण' या 'सप्त-रश्मि' भी कहते हैं। पुराण में सप्त-रश्मियों को जो क्रमशः लाल, नारंगी, पीली, हरी, आसमानी, नीली एवं बैगनी होती है, सप्त मुखी घोड़ा बताया है। चूंकि उपर्युक्त सात रंगों के एकत्र होने से ही श्वेत रंग की उत्पत्ति होती है और सातों रंग की सूर्य किरणों के रोगनाशक गुणों का समावेश रहता है जिनकी प्राप्ति हमें धूप-स्नान, सूर्य-स्नान, सप्त-किरण स्नान या अंग्रेजी के Sunbath से, रोगावस्था में विशेष रूप से और स्वस्थावस्था में सामान्य रूप से होती है।

जाड़े के दिनों में यूं तो सभी नंगे बदन धूप में बैठ कर धूप-स्नान का थोड़ा बहुत आनन्द और लाभ प्राप्त करते हैं। किन्तु रोगावस्था में इस स्नान का सेवन वैज्ञानिक ढंग से करके ही रोग मुक्त हुआ जा सकता है जैसे-तैसे धूप में घूमने या बैठने मात्र से धूप स्नान का वास्तविक लाभ कदापि नहीं उठाया जा सकता है।

9.7.4 रिकली का धूप स्नान - डॉक्टर रिकली के नाम से धूप स्नान लेने की विधि प्रसिद्ध है उसमें धूप नंगे शरीर पर ली जाती हैं और शरीर पर कोई कपड़ा या केले आदि का पता नहीं रखा जाता। स्नान सूर्योदय के तुरंत बाद लिया जाता हैं इसमें एकदम से भी सारे शरीर पर धूप नहीं पड़ने दी जाती। बल्कि पहले दिन रोगी के दोनों पैरों को चारों तरफ धूप में सेंका जाता हैं दूसरे दिन सारे पैर को धूप में रखा जाता है तीसरे दिन जंघा तक समूचे पैर को। चौथे दिन से दसवें दिन के भीतर गले तक सारे शरीर को धूप में रखकर सेंका जाता है। इस तरह थोड़ा-थोड़ा करते हुए दसवें दिन कहीं जाकर रोगी के सारे शरीर को धूप में लाया जाता है।

रोगी को धूप में रखने के समय को धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। पहले दिन रोगी को 5-5 मिनट के बाद 3-3 मिनट के हिसाब से कुल 9 मिनट तक रखना चाहिए। दूसरे दिन इसी प्रकार 5 मिनट के बाद 6

मिनट, तीसरे दिन प्रति बार 9 मिनट इसी प्रकार बार 3-3 मिनट करके कुल 9 मिनट तक बढ़ाकर दसवें दिन से 3 बार आधा-आधा घंटा करके प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार 15 दिन में 3 बार यह स्नान लिया जा सकता है। इसके बाद रोगी को बर्दास्त होने पर और आराम मालूम देने पर यह स्नान दिन में 4 बार किया जा सकता है।

प्रत्येक बार धूप लेने के बाद रोगी को 5 मिनट के लिए छाया में रखना चाहिए। इसके बाद धूप लगे स्नान विशेष को या पसीना होने पर सारे शरीर को ठंडे या हल्के गरम जल से भीगी तौलिया से अच्छी तरह से पौंछ कर साफ कर लेना चाहिए। फिर पुनः धूप लेना चाहिए। एक्जिमा, कोढ़, खुले घाव, अजीर्ण, क्षय, बच्चों का सूखा रोग, रक्त हीनता, बच्चों की निर्बलता एवं उनमें मानसिक और शारीरिक विकास का अभाव, यकृत की खराबी से बच्चों का चिड़-चिड़ापन आदि में इस स्नान से बड़ा लाभ होता है।

9.7.5 कूने का धूप स्नान - रोगी को ऐसी जगह धूप में केवल लंगोट पहनकर लेट जाना चाहिए जहां हवा का झोका न आता हो। चेहरा, सिर और नाभि को किरणों से बचाने के लिए केले या और किसी चीज की पत्ती से ढ़क लेना चाहिए। अगर पत्ती न मिले तो गीला कपड़ा काम में लाया जा सकता है। इस क्रिया से शरीर के छिद्र जल्द खुल जाते हैं, शरीर आर्द्र और गरम हो जाता है और पसीना निकलने लगता है।

स्नान आधा से डेढ़ घण्टे तक चल सकता है। अगर पसीना न निकले और थकान न मालूम हो तो रोगी और देर तक रह सकता है। धूप बहुत अधिक तेज होने पर स्नान का समय अधिक नहीं होना चाहिए। जिन लोगों को सिर में दर्द हो जाये या सिर चकराने लगे वे आरम्भ में देर तक धूप स्नान न करें। यह हालत प्रायः उन्हीं लोगों में दिख पड़ती है जिन्हें पसीना नहीं निकलता या देर से निकलता है। धूप स्नान के बाद उससे ढ़ीले पड़े हुए विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने के लिए बन्द कमरे में ठंडे पानी से सिर से जल्दी नहाकर बदन पौंछ लेना चाहिए। तत्पश्चात् कटि या मेहन स्नान आवश्यक होता है। कटि या मेहन स्नान के बाद जिनके शरीर में जल्द गर्मी न आए वे सिर ढककर पुनः धूप में थोड़ी देर बैठ जायें। चाहें तो धूप में टहल भी सकते हैं। या कोई हल्की कसरत कर सकते हैं। जिन लोगों का रोग भीषण होता है। या जो नाजुक होते हैं उन्हीं में यह बात दीख पड़ती है। ऐसे लोगों को चिकित्सा के आरम्भ में भरसक धूप स्नान नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनके लिए यह बहुत कड़ा पड़ता है।

धूप स्नान से शरीर के विकार उखड़ते हैं, साथ ही शरीर में अधिक गर्मी भी आती है। इस गर्मी को शान्त करने और विकारों को पेडू में लाकर पेशाब पाखाना के रूप में बाहर निकाल देने के लिए ही धूप नहान के बाद ठंडे पानी से नहा लेना जरूरी होता है और उसके बाद शक्ति के अनुसार 7 से 15

मिनट का कटि स्नान या मेहन स्नान भी। हां अगर रोगी बहुत कमजोर है तो उसे स्नान करने के बदले गीले कपड़े से सिर और सारा बदन अच्छी तरह पौंछ कर कटि-स्नान लेना चाहिए। यदि किसी कारणवश कटि स्नान लेना सम्भव न हो तो गीले कपड़े की ठंडी पट्टी पेडू पर 20-25 मिनट तक रखना चाहिए।

9.7.6 भीगी चादर के माध्यम से धूप स्नान - इस स्नान को करने के लिए रोगी को नंगा करके और उसके सारे शरीर को एक सूखे कपड़े या कम्बल से गले तक ढककर चटाई पर धूप में लिटा देते है थोड़ी देर बाद शरीर के गर्म हो जाने पर सूखे कपड़े को हटा कर एक दूसरे कपड़े को ठंडे जल में भिगोकर और थोड़ा निचोड़ कर उससे कंधों से लेकर जंघा तक ढक देते हैं या भीगे कपड़े की जगह केले की पत्तियां रख देते हैं सिर हमेशा भीगी तौलिया से ढका रहता है और चेहरा साये में रहता है। जांघों के नीचे का हिस्सा सूखे कपड़े से ढका होता है। यदि मुंह और चेहरा भी धूप में हो तो नाक को सांस लेने के लिए बाहर रखकर भीगे कपड़े से चेहरे को ढक लेना चाहिए यदि धूप कड़ी हो और रोगी गर्मी मालूम पड़े तो पहले भीगे कपड़े के ऊपर एक और भीगा कपड़ा डाल देना चाहिए और इस कपड़े के बार बार सूखने पर उसपर बार-बार ठंडे जल के छींटे डालकर उसे भिगोते रहना चाहिए। यह स्नान 20 से 40 मिनट तक लिया जा सकता है। इस स्नान के बाद भी उदर या मेहन स्नान लेना जरूरी है।

9.7.7 जीवनी शक्ति धूप स्नान - अत्यन्त निर्बल रोगी इस स्नान से आशातीत लाभ उठा सकते है। विधि यह हैः-रोगी को सुबह और शाम दोनों वक्त हल्की धूप में हल्का और साफ कपड़ा पहनाकर बैठा या लिटा देना चाहिए सिर और चेहरे को प्रकाश और गर्मी से बचाकर छाया में रखना चाहिए रोगी उस वक्त तक धूप में रहे जब तक कि वह काफी गर्म न हो जाये लेकिन पहले-पहल रोगी को धूप में देर तक रह कर पसीना निकलने का इन्तजार हरगिज नहीं करना चाहिए। बदन के गर्म होते ही रोगी को छाया में चला जाना चाहिए और एक गीले कपड़े से सारे बदन को रगड़ रगड़कर पौंछ डालना चाहिए ताकि बदन की चमड़ी साफ और ठंडी हो जाये। तब पुनः उपर्युक्त रीति से धूपस्नान आरम्भ कर देना चाहिए। इस तरह से कई बार इच्छानुसार धूपस्नान ले लेकर शरीर को पौंछना चाहिए।

9.7.8 ठंडी पट्टी के योग से धूप स्नान - इस स्नान के लिए एक ऐसा टब लेना चाहिए जिसमें लेटकर स्नान लिया जा सके। टब के सिर वाले सिरे को छाया में रखते हुए पूरे टब को धूप में रखें। अब आधा इंच मोटा और भीगा कपड़ा या तौलिया तह करके टब में इस तरह विछावें कि रोगी के उस पर लेटने पर उसकी पूरी पीठ-गर्दन से अधोभाग तक भीगी पट्टी पर आ जाये टब में गद्दी पर पीठ के बल जब रोगी नंगा होकर लेट जाये उस वक्त एक दूसरी भीगी चादर से उसका ऊपरी धड़ गले से जंघों के ऊपर तक अच्छी तरह ढक लेना चाहिए जिससे रोगी का पूरा धड़ भीगे कपड़ों से ढक जाये तत्पश्चात ऊपर

से उसका सारा शरीर गले से अंगूठों तक टब सहित एक ऊनी या सूती शाल से एक देना चाहिए और रोगी को धूप स्नान लेना देना चाहिए धूप की गर्मी से जब भीगे कपड़े सूख जायें उन्हें पुन‘ पुनः ठंडा पानी डाल डालकर भिगोते रहना चाहिए यह स्नान कब तक लिया जाये वह रोगी की इच्छा पर निर्भर करता है इसके लिए कोई समय निर्धारित करना बहुत मुश्किल है।

9.7.9 छोटे बच्चों के लिए धूप स्नान - अगर कोई विशेष बाधा न हो तो डेढ़ मास की अवस्था हो जाने पर छोटे बच्चों को धूप स्नान करना आरम्भ कर दिया जा सकता है। आरम्भ में स्नान का समय प्रत्येक अंग के लिए आधे मिनट से अधिक नहीं होना चाहिए। धीरे-धीरे इसे बढ़ाते जाना चाहिए जिसमें दो सप्ताह में तीन आगे और तीन मिनट पीठ की ओर स्नान कराया जा सके। एक वर्ष से अधिक उम्र के बच्चों के धूप स्नान का समय भी क्रमशः ही बढ़कर 30 मिनट तक ले जाना चाहिए क्योंकि सूर्य ताप में अत्यधिक शक्ति होती है, इसलिए धूप स्नान में यदि सावधानी न बरती जायेगी तो लाभ के बदले हानि हो सकती है।

साधारणतः छोटे-छोटे लड़के लड़कियों को सिर पर भीगी तौलिया तथा शरीर में भीगा कपड़ा पहनाकर धूप स्नान करने के लिए उचित समय तक धूप में बैठाया जा सकता है और जितनी बार कपड़ा सूखे उतनी बार पानी का छींटा दे देकर कपड़े को शीतल किया जा सकता है। तत्पश्चात उन्हें छाये में लाकर उनके शरीर को भीगी तौलिया से अच्छी तरह रगड़ पौंछकर और गर्म कपड़ा पहना कर धूप स्नान का अन्त किया जा सकता है।

9.7.10 सप्त किरण स्नान या धूप स्नान - पूर्ण धूप स्नान की भांति ही यह स्थानीय या आंशिक धूप स्नान भी लिया जाता है, अन्तर केवल इतना ही हे कि इसमें वह विशेष स्थान भी जिसको धूप देना चाहते हैं, नंगा करके एक बड़े हरे पत्ते से ढक दिया जाता है। कभी-कभी सारे शरीर को धूप में रखने के बदले केवल रोगी के अंग को ही धूप में रखकर उसे धूप स्नान देते हैं और धूप से उठने के बाद उस अंग को गीले कपड़े से पौंछ कर या पानी से धोकर बिना पेडू या मेहन स्नान लिए ही धूप स्नान समाप्त कर देते हैं।

जख्म, फोड़ा, ट्यूमर, दर्द, नासूर, कण्ठमाला, तथा आंख के रोगों में इस आंशिक धूप स्नान से बड़ा लाभ होता है।

आंख की कितनी ही बीमारियों में हरी पत्ती के बीच से या नंगी आंखों से सूर्य की ओर कुछ समय तक रोग ताकना बड़ा ही प्रभावकारी सिद्ध होता है।

9.8 सूर्य किरण चिकित्सा की सावधानियां

1. सूर्य स्नान करते समय सिर को धूप से बचाये रखना चाहिए। इसके लिए सिर को साये में रखना चाहिए या भीगे रूमाल या हरे पत्तों से ढके रखना चाहिए। धूप नहान लेने जाने के पहले सिर, मुंह, गर्दन को अच्छी तरह धो लेना भी जरूरी है।
2. कड़ी धूप में सूर्य स्नान न लें। इसके लिए प्रातःकाल एवं सायंकाल की हल्की किरणें ही उत्तम हैं।
3. धूप स्नान का समय रोज-रोज धीरे-धीरे बढ़ावे। एक बार में ही अधिक देर तक धूप स्नान न लें। एक घंटा से अधिक देर तक धूप स्नान कभी भी न लें। क्योंकि जैसे अधिक भोजन चाहे वह कितना ही अच्छा एवं लाभकारी क्यों न हो, शरीर को हानि पहुंचाता है, वैसे ही सूर्य ताप को भी समझना चाहिए। उचित समय तक घूप स्नान लेने से शरीर को अनेकों प्रकार के लाभ होते हैं-शारीरिक जीवनी शक्ति बढ़ती है, हड्डियां दृढ़ होती हैं, शरीर को विटामिन 'डी' मिलता है, तथा बहुत से रोग अच्छे होते हैं। किन्तु जब आवश्यकता से अधिक देर तक धूप स्नान लिया जायेगा तो शरीर झुलस सकता है, वह काला पड़ सकता है, भूख मर सकती है, तथा शरीर की अस्थियो में आवश्यकता से अधिक विटामिन डी की वृद्धि हो सकती है, आदि। कमजोरी की दशा में सूर्य स्नाना जाड़ो में 7 मिनट तथा गर्मियों मं तीन मिनट से ही शुरू करना चाहिए।
4. धूप स्नान लेते समय जितनी देर स्नान करने हो उसके चार भाग करके पीठ के बल, पेट के बल, दाहिनी करवट और बाई करवट लेट कर धूप का सेवन करें जिससे शरीर का कोई भी अंग धूप-स्नान से वंचित न रह जाये।
5. धूप-स्नान लेते समय शरीर निर्वस्त्र हो तो सर्वोत्तम अन्यथा केवल एक लंगोटी धारण करें। स्त्रियां पतले कपड़े पहनकर धूप-स्नान कर सकती हैं।
6. खुले स्थान में जहां जोर की हवा न आती हो सूर्य स्नान करे।
7. भोजन के डेढ़-दो घंटे के बाद सूर्य स्नान करना चाहिये। इसी तरह सूर्य-स्नान के तुरन्त बाद खाना भी ठीक नहीं।
8. सूर्य स्नान के बाद अच्छी तरह ठंडे जल से नहाकर या भींगी तौलिया से शरीर के प्रत्येक अंग को अच्छी तरह पौंछ कर थोड़ी देर तेजी से टहलना चाहिये।

9. सूर्य स्नान के बाद यदि शरीर में फुर्ती, उत्साह आता जान पड़े तो स्नान को सफल समझे। परन्तु यदि सिर में दर्द तथा अन्य किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव हो तो सूर्य-स्नान का समय दूसरे दिन कुछ कम कर दें।
10. सूर्य स्नान रोज नियमित रूप से लें। इसमें नागा करना ठीक नहीं। ऐसा करने से लाभ होता है।
11. जोड़ो में सूर्य स्नान के लिये भारत में 12 और 2 बजे के बीच तथा गर्मियों में 8 से 10 बजे तक सुबह और फिर 3 से 5 बजे तक शाम का समय ही श्रेयस्कर है। किन्तु लू चलते समय यह स्नान कदापि नहीं लेना चाहिये।
12. दिल की बीमारी और ज्वरवाले रोगियों को सूर्य स्नान नहीं करना चाहिये थोड़ी मात्रा में ज्वर रहता हो तो फुफ्फुस के रोग में धूप स्नान किया जा सकता है। पर नियम यही है कि ज्वर बने रहने की हालत में यह स्नान नहीं करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न -

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) किन किरणों में मुख्य रूप से रोगों का नाश करने की शक्ति होती है।

अ. प्रातःकाल की ब. दोपहर की

स. सायं की द. किसी में नहीं

(ख) सूर्य रश्मि पुंज में लाल किरणें कितनी होती है-

अ. 10 प्रतिशत ब. 50 प्रतिशत

स. 80 प्रतिशत द. 100 प्रतिशत

(ग) जोड़ों के दर्द एवं स्नायु मण्डल रोगों में लाभकारी रंग है-

अ. लाल ब. नीला

स. हरा द. पीला

(घ) सभी रोगों में श्रेष्ठ रंग है-

अ. हरा ब. आसमानी

स. बैंगनी द. सफेद

(ड.) अदृश्य किरण कहा जाता है-

अ. नीली किरणों को ब. बैंगनी किरणों को

स. लाल किरणों को द. नीलोत्तर किरणों को

9.9 सारांश-

सूर्य किरण चिकित्सा एक अत्यन्त लाभकारी सरल एवं सुलभ चिकित्सा है जिसमें सभी रोगों को दूर करने की क्षमता पायी जाती है। सूर्य किरण में सात रंग पाये जाते है जिनका अलग-अलग महत्व है। विभिन्न चिकित्सकों ने इन रंगों के गुणों को समझकर इनका चिकित्सा के रूप में प्रयोग किया है। आर्नाल्ड रिकली तथा लुई कूने नामक चिकित्सकों ने इसकी विभिन्न विधियों का वर्णन किया है। यद्यपि सूर्य किरण चिकित्सा एक लाभकारी एवं दोष रहित चिकित्सा है किन्तु फिर में इसमें कूछ सावधानियों पर ध्यान दिया जाता है। तथा सूर्य किरण चिकित्सा में इन सावधानियों पर ध्यान रखकर विभिन्न रोगों में इन किरणों का प्रयोग किया जाता है।

9.10 शब्दावली-

सप्त किरण	सात प्रकार की किरण
सृष्टि	संसार
उपादान	घटक
स्वेद	पसीना
यक्ष्मा	क्षय रोग (टी0बी0)
अतिसार	दस्त
संग्रहणी	आंतों में संक्रमण
निरावृत	बिना ढके हुए

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) अ

(ख) स

(ग) अ

(घ) ब

(ड.) द

9.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तर प्रदेश

2. सक्सैना ओम प्रकाश, (2009) सरल प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवासदन, मथुरा

3. शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. सूर्य किरण चिकित्सा पर निबन्ध लिखिए।

2. सूर्य किरणों का वैज्ञानिक विश्लेषण कीजिए।

3. सूर्य किरण चिकित्सा के सिद्धान्त एवं गुणों पर प्रकाश डालिए।

4. विविध रंगों की किरणों का विभिन्न रोगों में चिकित्सकीय अनुप्रयोग लिखिए।

इकाई 10 उपवास अर्थ, परिभाषा, प्रकार, सिद्धान्त तथा लाभ, उपवास का शरीर पर प्रभाव

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 उपवास का अर्थ एवं परिभाषा

10.4 उपवास के प्रकार

10.5 उपवास के सिद्धान्त

10.6 उपवास के लाभ

10.7 उपवास के शरीर पर प्रभाव

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 प्रश्नों के उत्तर

10.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.12 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना-

उपवास हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसका वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास को एक अचूक औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है अर्थात जब रोग बढ़ता ही जाता है तब उपवास के माध्यम से उस पर नियन्त्रण प्राप्त किया जाता है। इस उपवास का सम्बन्ध केवल प्राकृतिक चिकित्सा से ही नहीं अपितु हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी भिन्न-भिन्न रूपों में उपवास का उपदेश दिया गया है।

उपवास शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर स्वास्थ बनाने का एक प्रबल साधन है। इसके द्वारा जीवनी शक्ति का विकास किया जाता है तथा आरोग्यता एवं निरोगता की प्राप्ति की जाती है। उपवास के महत्व को देखते हुए उपवास को धर्म के साथ जोड़ दिया गया है तथा, एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या

के साथ-साथ जन्माष्टमी एवं अन्य विशेष पर्वो पर उपवास की परम्परा डाली गयी है। सामान्य व्यक्ति तो उपवास को भूखा मरना भी कह सकता है किन्तु यदि इसका गहराई से अध्ययन किया जाए तो उपवास तो एक ऐसी बहुत उच्च अवस्था का नाम है जिसमें व्यक्ति अर्न्तमुखी बनकर ऊर्जा और जीवनी शक्ति का संचय करता है।

जिज्ञासु पाठकों अब आपके मन में इस उपवास और उपवास चिकित्सा को जानने की उत्सुकता अवष्य ही बढ़ गयी होगी। इस इकाई में आप उपवास चिकित्सा का गहराई से अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य-

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

उपवास के अर्थ को समझा पाओंगे।

उपवास के प्रकार एवं सिद्धान्तों का अध्ययन करोंगे।

उपवास के लाभ एवं सावधानियों को जान सकोंगे।

10.3 उपवास का अर्थ एवं परिभाषा-

उपवास का अभिप्राय, शरीर के पाचन संस्थान को पूर्ण विश्राम देना है। वस्तुतः उपवास-काल में ही उसे विश्राम मिलता भी है। क्योंकि साधारणतः हम रोज अपना पेट दो-तीन बार भरा करते हैं, जिससे हमारा पाचन संस्थान हमेशा काम किया ही करता है।

संसार की बात तो नहीं कह सकते परन्तु हमारे भारतवर्ष में आदि काल से उपवास का बहुत अधिक महत्व रहा है। हमारी धार्मिक पुस्तकों में उपवास को शारीरिक और मानसिक पवित्रता का एक साधन माना गया है उपवास की यह परम्परा जैन धर्माव्लम्बियों में विशेष रूप से और अन्य हिन्दुओं में साधारण रूप से आज तक चली आ रही है।

उपवास एक प्राकृतिक स्थिति है। प्रकृति की मांग है। पशु पक्षी आदि सभी जीवधारियों को उपवास की जरूरत पड़ती है, जो स्वाभाविक है। रोगी पशु, रोगी मनुष्य से अधिक समझदार होता है, जो रोगावस्था में अच्छे-से-अच्छे चारे की तरफ उसे खाना तो दूर देखता तक नहीं। कारण वह समझता है रोगावस्था में कुछ खाना विष और कुछ न खाकर उपवास करना अमृत तथा रोग की औषधि है। हम जब बीमार पड़ते हैं तो हमारी भी भूख स्वभावतः बन्द हो जाती है, पर हम बुद्धिशील प्राणी होते हुए भी प्रकृति के आदेश को नहीं मानते और रोगी होने पर भी कुछ न कुछ खाते ही रहते हैं, जिससे दुख पाते हैं। रोग होने पर रोग के कारण विजातीय द्रव्य को दूर करने का उपवास एक प्रबल साधन है।

उपवास काल में शरीर की सारी की सारी जीवनी- शक्ति केवल रोग को दूर करने में लग जाती है और उसे दूर करके ही दम लेती है। यहां पर एक वात समझ लेनी चाहिए वह यह कि उपवास अपने आप कोई नवीन शक्ति प्रदान करने वाली क्रिया नहीं है, पर उसके प्रभाव से शरीर स्थित विष जो अस्वस्थता का कारण होता है, अवश्य निकल जाता है, और शरीर निरोग और स्वभावतः शक्तिशाली बन जाता है। इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि जो रोगी नहीं है, अथवा जिनके शरीर में विष कि उपस्थिति नहीं हैं, उनके लिये उपवास की बिल्कुल जरूरत नहीं है। लेकिन यदि वे भी यदा कदा छोटा उपवास कर लिया करे तो उनका स्वास्थ्य सदैव एकसा बना रह सकता है।

बहुत से लोग उपवास को भूखों मरना समझकर बड़ी भूल करते हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि विष की स्थिति ही शरीर के रोगी होने का कारण होता हैं हमें जानना चाहिये कि उपवास काल में यही विष सर्वप्रथम नाश को प्राप्त होता है। तदोपरान्त उन संचित पदार्थों से शरीर अपना काम लेने लगता है जो उसकी प्रकृति ने विशेष आवश्यकता पड़ने पर काम में आने के लिए पहले से शरीर में जमा करके रखा होता है। उदाहरणार्थ, ऊंट जो मरूभूमि का जानवर है, जहां उसे कभी-कभी हफ्तो भूखा रहना पड़ता है, उपवास काल में अपनी जीवन रक्षा अपनी पीठ पर संचित पदार्थ से करता है, और पानी की कमी को अपने पेट में संचित पानी के थैले से करता है। उपवास काल में कमजोरी का यही अर्थ होता है, अर्थात् उस वक्त शरीर का विष (विजातीय द्रव) और उसके बाद शरीर का संचित जीवन द्रव्य शरीर के पोषण में प्रकृतितः लग जाता है और शरीर दुबला हो जाता है, और तब हमें वास्तविक भूख लगती है। यह उपवास जारी रखा गया तो शरीर का पोषण शरीर स्थित उन आवश्यक जीवन द्रव्यों से होने लगेगा जिनके बिना शरीर खड़ा ही नहीं रह सकता, और जिनसे हमारे शरीर का संगठन हुआ हैं। यहीं से मरण आरम्भ होता है। उपवास से मनुष्य तभी मरता है जब शरीर स्थित फालतू पदार्थो की समाप्ति के बहुत बाद उनके शरीर के आवश्यक अंग भी नष्ट हो चुकते हैं। जब तक मनुष्य के शरीर के आवश्यक अंगों में पोषण का आरम्भ नहीं होता तब तक मनुष्य केवल दुबला ही होता है। परन्तु आवश्यक अंगों से शरीर का पोषण आरम्भ होते ही, शरीर का नाश होना भी आरम्भ हो जाता है, और धीरे-धीरे आदमी मर जाता है। यही उपवास और भूखों मरने में अन्तर है।

10.4 उपवास के प्रकार-

उपवास के विविध प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा में बताये गये है। जिनका विस्तृत विवेचन इस प्रकार है।

10.4.1 रसोपवास – रसापवास मे ठोस पदार्थ (अन्न अथवा शाक भाजी फल) लेना मना होता है। इसमें केवल फलों शाक आदि के रस को लिया जाता है। दूध को वर्जित किया गया है क्योकि इसमें

सम्पूर्ण आहार पाया जाता है। रसोपवास के अन्तर्गत एनिया निरन्तर लिया जाता है। क्योकि शरीर की सफाई होती रहती है।

10.4.2 फलोपवास – फलोपवास मे फल, शाक भाजी लिया जाता है।

इसके अन्तर्गत कुछ दिनों तक इस उपवास मे रहना फलोपवास कहलाता है। इस उपवास में अपनी इच्छा व शारीरिक अनुकूलता के अनुसार फल लेना चाहिये क्योकि विपरीत फल या भाजी लेने से बदहजमी हो जाती हे। यदि बदहजमी हो जाय तो बीच-बीच मे ऐनिमा भी लिया जा सकता है। खूनी बवासीर में यह उपवास अत्यन्त लाभकारी होती है। 21 दिनों मे यह जड़ से समाप्त हो जाती है।

10.4.3 दुग्धोपवास – इसमे दूध का सेवन किया जाता है। इसे दुग्ध कल्प भी कहा जाता है। कुछ दिनों तक दिन मे चार से पांच बार दूध का सेवन किया जाता है। दूध गाय का हो यह उत्तम माना जाता है। और गाय स्वस्थ्य होनी चाहिये। यह उपवास अत्यन्त लाभकारी होता है।

10.4.4 मठोपवास – मट्ठा इस उपवास मे लिया जाता है। यदि पाचन तन्त्र निर्बल हो तो दुग्ध उपवास के स्थान पर मठापवास करना उपयुक्त होता है। जिस मट्ठे का उपयोग किया जाय वह घी रहित एवं खट्टा कम हो। यह उपवास शरीर को निर्मल, स्वस्थय बनाने में सहायक होता है।

10.4.5 प्रात: कालिन – यह उपवास, उपवासो में सबसे सरल उपवास होता है। इसमे केवल प्रात: काल अर्थात सुबह का नाश्ता छोडा जाता है। दिन और रात मे सामान्य भोजन किया जाता है। अंग्रेजी में इस उपवास को No Breakfast System कहते है।

10.4.6 सायंकालिन उपवास – इस उपवास में दिन में या रात किसी एक समय का भोजन छोड़ा जाता है। आधुनिक काल में सामान्यत: यह उपवास किया जाता है। इसे अद्धोर्पवास भी कहा जाता है। पुराने व जटिल रोगों के लिये यह उपवास सर्वोत्म होता है। इस उपवास का भोजन सुपाच्य एवं प्राकृतिक होना चाहिए।

10.4.7 एकाहारोपवास – एक समय में केवल एक प्रकार का पदार्थ होना एकाहारोपवास कहा जाता है। जैसे सुबह केवल रोटी, दिन – सब्जी, रात को केवल दूध का सेवन किया जाता है। इस उपवास से पाचन तंन्त्र मजबूत होता है। शरीर मे सामान्य छोटी-मोटी गड़बड़ियों के लिये यह उपवास

लाभकारी होता है। जिससे व्यक्ति के स्वास्थ्य अच्छा होता है।

10.4.8 पूर्णोपवास – इस उपवास मे केवल जल ग्रहण किया जाता है। स्वेच्छापूर्वक शुद्ध ताजे जल का और किसी प्रकार का खाद्य पदार्थ नहीं लिया जाने वाला उपवास पूर्वोपवास कहलाता है। इसमे उपवास सम्बन्धित अनेक नियमों का पालन किया जाता है।

10.4.9 साप्ताहिक उपवास – सप्ताह मे एक दिन पूर्णोपवास करना साप्ताहिक उपवास कहलाता है। यह उपवास नियमित होना चाहिये। इससे साधारण स्वास्थय पर अच्छा प्रभाव पड़ता है तथा शरीर मे रोग होने की कम सम्भावनाए होती है। आधुनिक काल में यह उपवास आम व्यक्ति के लाभकारी होता है। इस उपवास में दो बार एनिमा लेना उत्तम होता है। इससे भोजन के प्रति रूची, सिर दर्द, सुस्ती तथा अन्य कई प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोग दूर हो जाते है। तथा व्यक्ति को स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है।

10.4.10 लघु उपवास – इस उपवास का समय तीन दिन से लेकर सात दिन तक का होता है। कम से कम तीन दिन और अधिक से अधिक सात दिन का होता है। तीन या सात दिन तक केवल जल का सेवन किया जाता है और उपवास के साथ नियमो का पालन भी किया जाता है। अर्थात् तीन दिन से सात दिन का पूर्णोपवास लघु उपवास कहलाता है।

10.4.11 कड़ा उपवास – जैसे की नाम से ही पता चल रहा है कि यह उपवास अत्यन्त कठिन होता है । यह असाध्य रोगो मे जैसे – कैंसर, लखवा, चर्म रोग आदि में लाभकारी होता है। इसमें पूर्णोपवास के सभी नियमों का पालन करना आवश्यक होता है।

10.4.12 टूट उपवास – यह उपवास कुछ –कुछ समय के अन्तराल में लिया जाता है जैसे – दो से सात दिनों का पूर्णोपवास करने के बाद बीच मे कुछ दिनो के लिये सामान्य सुपाच्य भोजन लेने के बाद बीच मे कुछ दिनों के लिये सामान्य सुपाच्य भोजन लेने के बाद पुन: उपवास लिया जाता है। उपवास और हल्के भोजन का यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक रोगों में नियन्त्रण ना पाया जा सके। इस उपवास का प्रयोग कष्टदायक या कष्टसाध्य रोगों में किया जाता है।

10.4.13 दीर्घ उपवास – जैसे की नाम से ही पता चल रहा है कि दीर्घ काल तक चलने वाला उपवास दीर्घकालीन उपवास कहलाता है। इस उपवास का समय कुछ निश्चित नहीं होता। कम से कम 21 दिन और अधिक से अधिक 50-60 दिनों का होता है। इस उपवास को तभी तोड़ा जाता है जब तक शरीर के सभी विजातिय पदार्थ शरीर से बाहर ना निकल जाय और शरीर निर्मल ना हो जाय।

यह उपवास किसी उपवास- विशेषज्ञ के निर्देश में करना चाहिये। बीना तैयारी तथा बिना उपवास काल के पूर्ण ज्ञान के यह उपवास नहीं करना चाहिये अन्यथा शरीर लाभ के स्थान पर हानि का शिकार हो जाता है।

10.5 उपवास का सिद्धांत

चिकित्सा विशेषज्ञ डॉ0 कैरिंगटन ने उपवास और भूखों मरने के अन्तर को इन थोड़े से शब्दों में स्पष्ट किया है।

उपवास प्रथम भोजन छोड़ने से प्रारम्भ होकर वास्तविक भूख लगने पर समाप्त होता है। और भूखों मरना, वास्तविक भूख लगने से प्रारम्भ होकर मृत्यु में समाप्त होता है।

उपवास से न केवल शारीरिक-विकृति ही दूर होती है, अपितु उसके करने वाले का मन और आत्मा का भी परिष्कार हो जाता है, क्योंकि उसका रूख ईश्वर की तरफ होता है।

एक बार महात्मा गांधी से किसी ने प्रश्न किया-जब कभी आपके सामने जबर्दस्त मुश्किल आ जाती है तो आप उपवास क्यों कर बैठते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था- 'अहिंसा के पुजारी के पास यही आखिरी हथियार है। जब इन्सानी अक्ल काम नहीं करती तो अहिंसा का पुजारी उपवास करता है। उपवास से प्रार्थना की तरफ मन तेजी से जाता है। यानी उपवास एक आध्यात्मिक चीज है और उसका रूख ईश्वर की तरफ होता है।

उपवास, शारीरिक, मानसिक, एवं आध्यात्मिक स्वच्छता के लिये अपूर्व एवं एक ही उपाय है, सही, किंतु उसका पूरा-पूरा लाभ वही उठा सकता है जो उपवास कला का पूर्ण मर्मज्ञ हो। उपवास विज्ञान का वास्तविक ज्ञान न होने पर, या इस विद्या के विशेषज्ञों द्वारा मार्ग प्रदर्शन न पाने पर उपवास के नियमों में व्यक्तिक्रम होने के कारण, अथवा उनका ठीक-ठीक पालन न हो सकने के कारण, कितने ही उपवासियों को जान से भी हाथ धोना पड़ा है। एक प्रसिद्ध चिकित्सक के कथनानुसार उपवास की उपमा दो धारी तलवार से दी जा सकती हैं, अर्थात् यदि उपवास का प्रयोग उसके नियमों के अनुकूल हुआ तो वह अक्सीर बन जाता है, और उसका परिणाम अत्यन्त लाभदायक होता है, किन्तु वही उपवास, यदि उपवास के नियमों के प्रतिकूल चलाया गया तो वह उल्टे शरीर को बड़ी से बड़ी हानि भी पहुंचा सकता है।

यह धारणा निर्मूल है कि उपवास का काम, भोजन की मात्रा घटा देने से भी चल सकता है। सूक्ष्म विवेचन से यह बात सिद्ध हो जाती है कि भोजन की मात्रा घटा देना और ठूंस-ठूंस कर भोजन न करना, दोनों एक ही बात नहीं हैं। जितनी भूख हो उससे कम खाना, प्राकृतिक नियमों में नहीं आता। प्रयोगों से यह बात साबित हो चुकी है कि थोड़ा भोजन करके चाहे कोई कितने ही दिन गुजार दे,

कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। अन्य आहार पर रहना न केवल व्यर्थ है, बल्कि कष्टदायक भी है। उपवास- काल में तो मनुष्य को, शुरू के दो-तीन दिनों तक ही कष्ट होता है किंतु थोड़ा भोजन करने से तो कष्ट प्रतिदिन समान बना रहता है। अनुभव से यह भी जाना गया है, कि थोड़ा खाकर रहने से दुर्बलता शीघ्र आती है, जबकि उपवास करने से ऐसी बात नहीं होती। अतः यह मानना पड़ेगा कि उपवास के प्रकार में, थोड़े भोजन पर रहना, नहीं आ सकता।

10.6 उपवास के लाभ-

- उपवास से सभी तन्त्र स्वच्छ, निर्मल एवं क्रियाशील बनते हैं।
- पाचक रसों का स्रावण नियमित होता है।
- हार्मोन्स का स्रावण नियमित होता है।
- शरीर से अनावश्यक चर्बी घटती है जिससे मोटापा कम होता है एवं आलस्य, भारीपन आदि दोष दूर होते हैं।
- सम्पूर्ण शरीर की सफाई होती है जिससे शरीर की आभा, कान्ति, चमक एवं तेज में वृद्धि होती है।
- शरीर में हल्कापन, उत्साह, उमंग आदि गुणों का विकास होता है।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है।
- जीवनी शक्ति बढ़ती है
- मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।
- मनोरोग दूर होते है।
- शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर सम्पूर्ण स्वास्थ्य का विकास होता है।
- ज्वर, संग्रहणी, पेचिश, दस्त सर्दी, खांसी, फोड़े, चेचक आदि तीव्र रोग कहलाते हैं जो अपनी चिकित्सा स्वयं करते हैं। इस प्रकार के रोगों में आरम्भ से ही उपवास करना बड़ा लाभ करता है। बहुमूत्र, दमा, गठिया, अजीर्ण, कब्ज, मोटापा आदि जीर्ण रोग कहलाते है। इस प्रकार के रोगों की चिकित्सा नियमित आहार से आरम्भ करनी चाहिये, और उसके अन्त में रोगी को लम्बा उपवास या छोटे-छोटे कई उपवास कराने चाहिये।

अभ्यास प्रश्न

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) उपवास का अर्थ है

अ. भोजन को त्यागना

ब. शारीरिक एवं मानसिक विश्राम

स. प्रकृति के समीप वास करना

द. सभी

(ख) उपवास से क्या होता है-

अ. भूख बहुत लगती है।

ब. शरीर में कमजोरी आती है।

स. शरीर एवं मन का परिष्कार होता है।

द. कुछ नहीं होता।

(ग) उपवास काल की सावधानी है-

अ. अधिक जल पीना चाहिए।

ब. अधिक फलों को खाना चाहिए।

स. अधिक श्रम करना चाहिए।

द. अधिक घूमना चाहिए।

(घ) प्राकृतिक चिकित्सा में अचूक औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है-

अ. मिट्टी को

ब. जल को

स. उपवास को

द. आहार को

10.8 सारांश-

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपने जाना कि उपवास एक प्राकृतिक एवं लाभकारी क्रिया है जिसका अर्थ केवल भोजन का त्याग करना नहीं अपितु अर्न्तमुखी होकर प्रकृति के साथ जुड़ना है। उपवास के महत्व को जानकर विभिन्न महापुरूष उपवास को अपने जीवन में अपनाया। चिकित्सा के क्षेत्र में भी उपवास का प्रयोग विभिन्न रोगों को ठीक करने के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ। विभिन्न प्रकार के उपवासों (फलोपवास, रसोपवास, पूर्णोपवास आदि) का विभिन्न रोगों में सकारात्मक प्रभाव देखा गया। आपने जाना कि उपवास का प्रभाव शरीर के साथ-साथ मन पर भी पड़ता है एवं उपवास करने से मन को भी विशेष ऊर्जा प्राप्त होती है।

यद्यपि उपवास एक अत्यन्त लाभकारी क्रिया है परन्तु इस उपवास मं कुछ सावधानियों को भी विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है। उपवास का एक मुख्य उद्देश्य शरीर की सफाई करना होता है एवं सफाई का उत्तम साधन जल है अतः उपवास काल में अधिकतम जल का प्रयोग करना चाहिए इसके लिए अधिक जल को पीना चाहिए तथा स्नान आदि करना चाहिए। हल्का व्यायाम एवं योगाभ्यास भी उपवास काल में अवश्य करना चाहिए तथा अत्यधिक श्रम नहीं करना चाहिए। इस प्रकार उपरोक्त सावधानियों के साथ उपवास करने से व्यक्ति पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त करता है।

10.9 शब्दावली-

धारणा	सोच
सूक्ष्म विवेचन	गहन अध्ययन
उपद्रव	उपवास के समय अचानक उत्पन्न हुआ रोग, परेशानी
आपदा	कठिन परिस्थिति
स्नायु	शरीर की तन्त्रिकाएं
परिष्कार	शुद्धिकरण

10.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1. (क) द (ख) स (ग) अ (घ) स

10.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. शर्मा श्रराम (1998) जीवेम शरद: शतम्, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा।

2. जिन्दल राकेश (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तरप्रदेश।

10.12 निबंधात्मक प्रश्न-

1. उपवास के अर्थ को समझाते हुए उपवास चिकित्सा को समझाइये।

2 उपवास के शरीर के विभिन्न संस्थानों पर पड़ने वाले प्रभावो की विवेचना कीजिए।

3. उपवास के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 11 अभ्यंग चिकित्सा परिचय, अभ्यंग अर्थ, परिभाषायें, सिद्धान्त, विधि अभ्यंग के प्रकार, अभ्यंग के लाभ, अभ्यंग के योग्य - अयोग्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 अभ्यंग चिकित्सा का परिचय

11.4 अभ्यंग का अर्थ एवं परिभाषा

11.5 अभ्यंग के सिद्धान्त

11.6 अभ्यंग की विधि

11.7 अभ्यंग के प्रकार

11.8 अभ्यंग के लाभ

11.9 अभ्यंग के योग्य एवं अयोग्य व्यक्ति

11.10 सारांश

11.11 शब्दावली

11.12 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

11.13 संदर्भ ग्रन्थ

11.14 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना-

सामान्य रूप से अभ्यंग को मालिश के नाम से जाना जाता है। इसका प्रारम्भ जन्म से ही हो जाता है और पहले बालकों की मालिश फिर पहलवानी मालिश, चिकित्सकीय मालिश और सामान्य मालिश के रूप में यह जीवन भर हमारी दिनचर्या का एक अंग बन जाती है।

आयुर्वेद को जीवन के विज्ञानके रूप में जाना जाता है। आयुर्वेद में इस मालिश को अभ्यंग की संज्ञा देते हुए इसके विविध प्रकारों, विधियों, लाभों एवं सावधानियों का वर्णन किया गया है। साथ ही साथ अभ्यंग के योग्य और अयोग्य व्यक्तियों का वर्णन वहां किया गया है। प्राकृतिक चिकित्सा में विविध रोगों के परिपेक्ष्य में अभ्यंग की विविध विधियों का प्रयोग किया गया है तथा इसके प्रभावों को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न रोगों में इसका प्रयोग बताया गया है। इस इकाई के अध्ययन में आप अभ्यंग की विधियों, लाभों एवं सावधानियों का ज्ञान प्राप्त करोगे। तथा अभ्यंग के योग्य और अयोग्य व्यक्तियों का वर्गीकरण भी आप इस इकाई को पढ़ने के बाद करने में सक्षम हो सकेंगे।

11.2 उद्देश्य-

इस इकाई में आप-

अभ्यंग चिकित्सा के अर्थ एवं परिभाषा का अध्ययन करोगे।

अभ्यंग के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण करेगे।

अभ्यंग के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे ।

अभ्यंग की विधि का अध्ययन करेंगे।

अभ्यंग के लाभों को जान सकेंगे।

अभ्यंग के योग्य एवं अयोग्य व्यक्तियों का श्रेणीबद्ध करने में सक्षम हो सकेंगे।

11.3 अभ्यंग चिकित्सा का परिचय-

अभ्यंग चिकित्सा जिसे आम भाषा में मर्दन, मालिश चिकित्सा कहते हैं स्वस्थ्यवृत का एक महत्वपूर्ण अंग है। आयुर्वेद के अनुसार भी अभ्यंग स्वस्थ्य रहने के लिए अति आवश्यक बताया गया है। प्राकृतिक चिकित्सा में जिस प्रकार प्राकृतिक खाद्य पदार्थ हमारे स्वास्थ्य का पोषण करते हैं, हमारे स्वास्थ्य का योगक्षेम भी करते हैं और अस्वस्थ्य दशाओं में अचूक औषधि भी है उसी प्रकार अभ्यंग (मालिश) भी हमारे स्वास्थ्य सौन्दर्य की वृद्धि करता है और अनेकानेक तीव्र व जीर्ण रोगों से हमें मुक्त करता है। अभ्यंग हमारे अनेक प्राकृतिक आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता है जिसके अभाव में हमारा स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता है। अभ्यंग मनुष्य की एक स्वः प्रकृति है जो बाल्यकाल से जीवन भर एक अनियंत्रित शक्ति द्वारा संचालित रहती है। उदाहराणार्थ जब कभी अचानक हमें शरीर के किसी स्थान पर चोट लग जाती है तो वह अनियंत्रित शक्ति हाथों द्वारा संचालित होकर उस स्थान पर मर्दन करने लगती है और हमें उस पीड़ा से मुक्त तो करती ही है तथा हमें असीम आनंद भी देती है। मानसिक तनाव की स्थिति में अगर सिर पर तेल से अभ्यंग कर दिया जाय तो इसके प्रभाव को और अधिक समझा जा सकता है।

अभ्यंग की स्वःप्रकृति को एक दूसरे उदाहरण से समझा जा सकता है। अभ्यंग के सम्बन्ध में एक फ्रेंच निवासी चिकित्सक का कथन है कि हमारा कभी - कभी जम्हाई लेना इस बात का परिचायक है कि हमारे गले की नसों और माँसपेशियों की मालिश की आवश्यकता है और जिसकी पूर्ति प्रकृति हमें जम्हाई दिलाकर करती है। वस्तुतः जम्हाई लेना अन्तः प्रकृति ही है।

चरक संहिता में कहा है:-

स्पर्शनेऽभ्यधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रितम्

त्वच्यश्च परमभ्यगस्तस्मातं शीलयेश्वरः

न चाभिधाताभिध्तं गात्रभभ्यंगसेविनः

विकारं भजते व्यर्थ बलकर्मणि वा क्वचित्

सुस्पर्शोपचितागंश्च बलवान् प्रियदर्शनः

भवत्यभ्यग नित्यत्वान्नरोल्पजर एव च - (च0सू0 5/87-89)

अर्थात स्पर्श ज्ञान स्पर्शेन्द्रिय में वायु ही प्रधान है। स्पर्शज्ञान अथवा स्पर्शेन्द्रिय त्वचा में आश्रित है और अभ्यंग त्वचा के लिए हितकर है। अतः नित्य अभ्यंग करना चाहिए। प्रतिदिन

तैलाभ्यंग करने वाले पुरूष के शरीर में सामान्यतः कोई विशेष विकार नहीं होता और बलकर्म (श्रम) करने पर भी बहुत विकार की सम्भावना नहीं होती। नित्य अभ्यंग करने वाला पुरूष कोमल स्पर्श तथा परिपुष्ट अंगों से युक्त, बलवान तथा प्रिय आकृति वाला हो जाता है। उसके शरीर पर जराजर अर्थात बुढापे के लक्षण अल्पमात्रा में ही प्रकट होते है।

अभ्यंग चिकित्सा आयुर्वेद की एक प्रमुख विधा है परन्तु आदिकाल से किसी न किसी रूप में यह विद्या प्रचलित थी। इसकी प्राचीनता पर दृष्टिपात करें तो यूनान और रोम के प्राचीन इतिहास के पठन से ज्ञात होता है कि किसी समय वहाँ की स्त्रियाँ मालिश द्वारा अपने शरीर को सौन्दर्ययुक्त बनाती हैं। आज भी उस देश की महिलाएँ स्वास्थ्य व सौन्दर्य वृद्धि का इसे प्रधान साधन समझती हैं। आज भी तुर्की, इटली, इरान तथा अरब के देशों में मालिश हेतु (हम्माम) की प्रथा प्रचलित है जहाँ इस प्रथा में शरीर के अंग - प्रत्यंग की मालिश की जाती है। पुराने जमाने में अफ्रीका देश के हबशियों के यहाँ विवाह से एक महीने पहले वर - वधू की मालिश की जाती थी। उनका ऐसा विश्वास था कि इस तरह की मालिश से सौन्दर्य और यौवन फूट पड़ता है। वस्तुतः भारत वर्ष में भी यह रिवाज शादी से पहले (हल्दी) की रस्म के रूप में प्रचलित है।

11.4 अभ्यंग का अर्थ एवं परिभाषाएं

अभ्यंग शब्द अभिः उपसर्ग तथा संस्कृत व्याकरण के अप्रज धातु से बना है। अभि का अर्थ है सभी जगह, चारों ओर तथा अप्रज का अर्थ उबटन लगाये अर्थात उबटन से मालिश करने से है।

अभ्यंग का हिन्दी अर्थ होता है मालिश (मर्दन) अर्थात अंग - प्रत्यंग की विविध प्रकार से उबटन द्वारा, तेल द्वारा, औषधियों (चूर्णों) द्वारा मालिश करना। अंग्रेजी में मालिश को MASSAGE के नाम से जाना जाता है।

शरीर विज्ञान की दृष्टि से स्पर्श तथा मालिश से रक्त तथा लसीका संस्थान को बल मिलता है तथा एक रक्त संचार के संतुलन में सहायता मिलती है जिससे हृदय गति संतुलित, स्नायुतंत्र को विश्राम तथा मानसिक तनाव में भी कमी आती है।

मालिश का एक अर्थ है अशुद्ध रक्त बहाने में नाड़ियों की मदद करना। जब शरीर किसी भी कारण से थक जाता है जो रक्त को शुद्ध करने का काम करने वाली नाड़ियों का कार्य मन्द गति से होता है स्वाभाविक गति में अन्तर पड़ जाता है। रक्त वाहिनी नाड़ियों में कमजोरी होने से एक प्रकार जहरीला वातावरण बन जाता है। अतः यह आवश्यक है कि मालिश द्वारा अशुद्ध रक्त वाहिनी नाड़ियों में सहायता पहुँचायें। इसी सहायता कार्य को मालिश कहते हैं। अरबी अर्थ में अभ्यंग अर्थात

मालिश को (हम्माम) के नाम से जाना जाता है। आज भी कई अरबी देशों टर्की, इरान, इटली में हम्माम की प्रथा को सौन्दर्य प्रसाधन का प्रमुख सौपान माना है।

अफ्रीका के देशों में इस अभ्यंग को सौन्दर्य प्रसाधन व चिकित्सा में कई जगहों पर प्रयोग में लाया जाता है तथा कहा है कि (हम्माम) अर्थात रक्तवृद्धि करने वाली एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

स्वस्थ्यवृत विज्ञान में अभ्यंग के अर्थ को दैनिक दिनचर्या का एक अंग बताया है तथा कहा है कि नित्य विधिपूर्वक तैलाभ्यंग भी महत्वपूर्ण स्वस्थ्यवृत है और दिनचर्या का अंग है। आयुर्वेद में चरक ने भी अभ्यंग को नित्य करने की बात की है।

आयुर्वेद के अष्टांग संग्रह में अभ्यंग के अर्थ को स्पष्ट करते कहा है जिस प्रकार रथ के अक्ष (धुरा) पर तेल लगाने से रथ के पहिए सरलता से चलते हैं, चमड़े पर तेल लगाने से चमड़ा कोमल तथा मजबूत हो जाता है और मिट्टी के घड़े पर लगाने से घड़ा मजबूत, चिकना एवं चमकीला हो जाता है उसी प्रकार शरीर पर तेल का अभ्यंग करने से शरीर की सन्धियों में गति (आकुँचन - प्रसारण) सरलता से होती है। त्वचा कोमल एवं दृढ हो जाती है और शरीर स्निग्ध तथा कान्तिमान हो जाता है। अतः अभ्यंग के अर्थ को शरीर प्रसाधन, प्रत्येक अंग की मालिश के रूप में ही समझना चाहिए तथा इसे रोगनिवारण का एक महत्वपूर्ण रसायन मानना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सा में अभ्यंग को वायु तत्व चिकित्सा में रखा है क्योंकि अभ्यंग वात रोगों का दमन करने वाला होता है तथा अभ्यंग अर्थात मालिश जिसे प्राकृतिक चिकित्सा में मर्दन भी कहा है इससे शरीर के सारे रोमकूप खुल जाते हैं तथा वायु तत्व का संवहन शरीर के प्रत्येक कोशिका में हो जाता। अतः हम यह भी कह सकते हैं कि अभ्यंग अर्थात मर्दन क्रिया वायु तत्व को शरीर में संतुलित करती है। अतः अभ्यंग के अर्थ को हम वायु संतुलन के अर्थ में भी प्रयुक्त कर सकते हैं।

परिभाषाएँ -

अभ्यंग जिसे मालिश, मर्दन, मशाज, हम्माम इत्यादि नामों से जाना जाता है इसे आयुर्वेदिक ग्रन्थों के साथ - साथ अनेकानेक विद्वानों, प्राकृतिक चिकित्सकों ने इस प्रकार पारिभाषित किया है।

चरक संहिता के अनुसार - चरक संहिता सूत्र स्थान के मात्राशितीय अध्याय में कहा है कि जिस प्रकार तैलादि स्नेहाभ्यंग से घड़ा, स्नेहमर्दन से चर्म, उपांग ;तेल डालनेद्ध से पहिए की धुरी दृढ़ तथा क्लेश को सहने वाली हो जाती है उसी प्रकार अभ्यंग वह प्रक्रिया है जिससे मनुष्य का शरीर सुदृढ़ तथा कोमल त्वचा वाला हो जाता है।

अष्टांग संग्रह के अनुसार - अभ्यंग त्वचा को कोमल व दृढ़ तथा शरीर को स्निग्ध तथा कान्तिमान करने वाली एक प्रक्रिया है। इसलिए इसका प्रतिदिन सेवन करना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत के अनुसार - सिर शूल, कर्ण शूल, रवालिक्य को समाप्त करने वाली प्रक्रिया अभ्यंग है।

रामहर्ष सिंह के अनुसार - अभ्यंग वह प्रक्रिया है जिससे पुरूष कोमल स्पर्श तथा परिपुष्ठ अंगों से युक्त व बलवान तथा प्रिय आकृति वाला हो जाता है।

डा0 ओ0पी0 सक्सेना के अनुसार - अभ्यंग अर्थात मालिश रक्त प्रभाव में रगड़ एवं गर्मी उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया है जिससे रक्त में मिले विषाक्त पदार्थ छंटकर अलग हो जाते हैं तथा अनेकानेक रोगों से निवृत्ति हो जाती है।

डा0 पी0डी0 मिश्रा कहते हैं - मालिश चिकित्सा (अभ्यंग) प्राकृतिक चिकित्सा की एक प्रणाली है जिसके माध्यम से शरीर की माँसपेशियों तथा संधियों पर दबाव डालकर विजातीय द्रव्यों को रक्त परिभ्रमण के माध्यम से शरीर से बाहर करके रोगी का उपचार किया जाता है।

GOVINDAN, S.V. SAYS - MASSAGE IS THE OLDEST OF ALL TECHNIQUE FOR RELIEVEING PAIN, SHOPING THE ORGAN & REGENERATING THE TISSUES AND CORRECTING ALL INTERNAL FUNCTIONS.

अर्थात मालिश कष्ट निवारण अंगों को स्वभाविक स्वरूप देने, ऊतकों में पुर्न ऊर्जा लाने तथा सभी आन्तरिक अंगों को सही करने की सभी चिकित्सकीय प्रविधियों में प्राचीनतम प्रविधि है।

JUSSAWALA, J.M. SAYS - MASSAGE IS A TERM WHICH IS USED TO SIGNIFY A GROUP OF SYSTEMATIC AND SCIENTIFIC MANIPULATION OF BODILY TISSUES WHICH ARE BEST PERFORMED WITH THE HANDS FOR THE PURPOSE OF AFFECTING THE NERVES AND MUSCULAR SYSTEMS AND THE GENERAL CIRCULATION.

अर्थात मालिश एक ऐसा शब्द है जो सामूहिक स्तर पर व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक रूप से शारीरिक ऊतकों के प्रबन्ध कौशल के महत्व को दर्शाता है जो कि हाथों के माध्यम से भली प्रकार स्नायुतंत्रों, माँसपेशियों तथा सामान्य रक्तसंचार को प्रभावित करने के लिए सम्पन्न किया जाता है।

कैप्टन कुक - कैप्टन कुक ने मालिश को अलौकिक गुणों वाला बताया है तथा इसके अलौकिक गुणों को 1860 इं0 में इनके सहयोगी डा0 स्काट ने मर्दन किया पर पेरिस नगर पर भाषण देते हुए चिकित्सकों से कहा कि मालिश ही एक ऐसी औषधि है जो सभी रोगों में दी जा सकती है।

सी0जी0 डोर - जर्मन वैज्ञानिक सी0जी0 डोर कहते हैं शरीर की त्वचा एक आवरण व प्राकृतिक चादर के सदृश्य है जिसकी स्वच्छता एवं सुन्दरता के लिए मालिश धोबी के समान है, जिसका प्रयोग नितान्त आवश्यक है।

11.5 अभ्यंग के सिद्धान्त

- अभ्यंग का प्रथम व महत्वपूर्ण सिद्धान्त है कि मालिश इस ढंग से की जाय जिससे रक्त का प्रवाह हृदय की ओर रहे।
- अभ्यंग का दूसरा स्मरणीय सिद्धांत है कि मालिश धूप में ही लाभ प्रदायिनी है। रोगावस्था में जितनी कड़ी धूप आसानी से सह सकें उतनी ही कड़ी धूप में शरीर की मालिश करनी चाहिए।
- अभ्यंग करने वाले को शांत स्वभाव एवं प्रसन्नचित्त होना चाहिए। इसका प्रभाव इसकी मालिश चिकित्सा पद्धति पर पड़ता है तथा उसके माध्यम से रोगी तक पहुँचता है।
- अभ्यंग जमीन पर चटाई बिछाकर या तख्त पर करनी चाहिए, परन्तु तख्त पर एक चादर हो जो हर रोगी में बदली जाय।
- अभ्यंग का एक सिद्धांत यह भी है कि उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति को छोड़कर हमेशा पैरों से शुरू हो।
- रोगी को अभ्यंग के समय उतना ही दबाव देना चाहिए जितना वह सहन कर सके।
- अभ्यंग का सामान्य सिद्धांत है कि ऊष्ण मालिश पैरों के तलवों से प्रारम्भ करके हृदय तथा सिर की ओर लाते हैं। इससे शिरायें सक्रिय होती हैं। उन्हें अतिरिक्त शक्ति मिलती है। रक्त तेजी से हृदय की ओर जाता है।
- अभ्यंग का एक सिद्धांत है कि अस्थियों पर अधिक दबाव नहीं पड़ना चाहिए, केवल माँसपेशियों पर ही दबाव पड़े।
- अभ्यंग का सिद्धांत है कि उसका समय 30 मिनट से 45 मिनट तक ही हो, लेकिन रोगी की दशा को तथा मालिश की विधि के अनुरूप समय निर्धारित होता है।

मालिश करने से पहले हथेलियाँ गरम कर लेनी चाहिए तथा जाड़ों में इस बात का विशेष ध्यान रहे।

11.6 अभ्यंग की विधि

(1) तालीय हाथ गति मालिश - अभ्यंग के समय सदैव हाथ का दबाव हृदय की ओर होना चाहिए क्योंकि यहाँ पर रक्त का शुद्धिकरण होता है और शिरायें आक्सीजन विहीन रक्त लाती है। जिस अंग में मर्दन करना होता है उसकी रचना के अनुसार अभ्यंग करने वाला अपने हाथों को ढीला करके ताल गति से हल्की दबावकारी ठोकर देते हुए मालिश करता है जिस अंग का अभ्यंग किया जाता है उस अंग के आरम्भिक स्थान से हाथ चलाने की गति एक रखी जाती है। यह क्रियाविधि शिराओं को उत्तेजित कर रक्त संचार की गति को तेज करती है। विजातीय तत्व मृत अथवा प्रायः कोषाणु रक्त में मिलकर शिराओं द्वारा हृदय में आते हैं, फिर उनका शुद्धिकरण हो जाता है। इस विधि से माँसपेशियों की ऐंठन, चोट की सूजन, नाड़ियों की उत्तेजना कम होती है तथा रोगी को आराम तो मिलता ही है साथ - साथ रोगी जल्दी से रोगमुक्त हो जाता है।

(2) थपकी - हाथों के पंजों को तथा हथेलियों को थोड़ा मोड़कर अंगुलियों को अंदर की ओर करके थपकी देते हैं जिस अंग पर थपकी देनी हो रोगी को ढीला रखने को कहें वह अपने हाथों को भी ढीला रखते हैं जिससे रोगी को चोट न लगे पर थपकी की आवाज अवश्य आये। इस विधि का मुख्य उपयोग पीठ पर ऊपर से नीचे की ओर अंगों में नाड़ियों के समानान्तर, पेट पर गोलाकार, बड़ी आँत पर दायें से बायें की ओर होता है। इस थपकी प्रक्रिया में रोगी को बहुत अधिक आराम मिलता है। रोगी विश्रान्ति का अनुभव करता है तथा साथ ही साथ रोगी की थकावट दूर होती है। थपकी से माँसपेशियों का तनाव कम होता है। उत्तकों का पुनर्निमाण होता है। इससे आमाशय, यकृत, फेफड़ा तथा आँतों को भी लाभ मिलता है। उच्च रक्तचाप तथा अनिद्रा में इस विधि से लाभ मिलता है।

(3) मसलना - इस विधि में रोगी की माँसपेशियों को मालिश करने वाला अपनी अंगुलियों और अंगूठे में पकड़कर मसलता है, लेकिन इस प्रकार करने में रोगी को पीड़ा का अनुभव नहीं होना चाहिए, जिस अंग पर मालिश करनी होती है वहाँ से प्रारम्भ होने वाली माँसपेशियों को हल्के से उठाकर मसलते हुए हृदय की ओर ले जाते हैं। इस विधि का प्रभाव माँसपेशियों पर अधिक पड़ता है। माँसपेशियाँ सबल होती हैं तथा रक्त का संचार तीव्र गति से होता है।

(4) गूँथना - अभ्यंग की यह विधि विशेष कर पीठ, कमर तथा नितम्बों पर उपयोग में लायी जाती है। रोगी को पेट के बल लिटाते हैं। उस पर अपने हाथों का दबाव रोगी की शारीरिक स्थिति के अनुसार डालते हैं। यह कार्य हथेलियों के बीच वाले भाग से किया जाता है। कमर से प्रारम्भ करके गर्दन तक दोनों हथेलियों से रीढ़ के दोनों ओर मसलते हुए आगे बढ़ते हैं। इसी प्रकार ऊपर से नीचे की ओर मेरूदण्ड पर तथा उसके दायें - बायें मसलते हुए आते हैं। इस क्रियाविधि से मोटापा कम होता है। वातरोग में लाभ होता है तथा नसों व नाड़ियों के विकार दूर होते हैं। गूथने की इस प्रक्रिया में इस बात

का ध्यान रहे कि रोगी को तेज दर्द न हो व अनावश्यक दबाव शरीर पर न पड़े। जब भी दबाव दें रोगी से कहें कि वह अपनी श्वांस बाहर निकालते रहें।

(5) घर्षण - इस प्रक्रिया में मालिश करने वाला अपनी अंगुलियों को खुली रखकर हाथों से जल्दी - जल्दी रोगी के अंगों को नीचे से ऊपर रगड़ देते हुए हृदय की ओर बढ़ता है। रोगी के शरीर पर पहले हाथों का दबाव डालते हैं फिर एक जोड़ से दूसरे जोड़ तक नीचे से ऊपर की ओर रगड़ते रहते हैं। उदाहरणार्थ यदि पीठ का अभ्यंग हो रहा है तो कमर से कंधे तक घर्षण करते हैं। इस क्रियाविधि से ग्रन्थियाँ कार्यशील होती हैं। त्वचा पुष्ट होती है। जोड़ों में सूजन कम होती है। अतिरिक्त जमा बसा कम होता है। रक्त का शुद्ध संचार होता है तथा यह अभ्यंग जोड़ों के दर्द में लाभकारी है। रोगी को इससे मानसिक विश्रान्ति भी प्राप्त होती है।

(6) मरोड़ना - अभ्यंग की यह विधि सावधानी से करनी चाहिए। इस विधि में मालिश करने वाला अपने दोनों हाथों की अंगुलियों से गोलाकार शक्ल बनाते हैं फिर रोगी की वहाँ पर टागों को दोनों हाथों से कसकर पकड़कर माँसपेशियों पर दबाव डालते हुए, गोलाई के साथ घुमाते हुए ऊपर की ओर बढ़ते हैं। हाथों का दबाव केवल माँसपेशियों पर ही पड़ना चाहिए। यह क्रिया एक साथ एक जोड़ से दूसरे जोड़ तक की जाती है। उदाहरण के लिए टखनों से घुटनों तक, घुटनों से जाँघों तक, कलाई से कुहनी तक, कुहनी से कंधों तक। यह क्रियाविधि हाथों तथा पावों में ही सम्भव है। इस विधि से नस व नाड़ियों में चेतना आती है। रक्त संचार बढ़ता है। माँसपेशियों में गर्माहट आती है जिस कारण माँसपेशियाँ शिथिल होती हैं और उनका दर्द कम होता है। अभ्यंग चिकित्सा का यह अभ्यास कोशिकाओं, उत्तकों व माँसपेशियों में नवजीवन का संचार उत्पन्न करता है तथा हाथ व पैरों में रक्त के संचार का नियमन करता है। कार्बोक्सीहीमोग्लोबिन युक्त अशुद्ध रक्त इस अभ्यास से शिराओं द्वारा हृदय को जाता है तथा महाधमनी द्वारा शुद्ध रक्त का संचार जिसमें आक्सीजन की मात्रा होती है प्रत्येक कोश तक पहुँचता है।

(7) रोंलिग - अभ्यंग की इस विधि से पीठ तथा पेट की मसाज की जाती है। इस क्रियाविधि में माँस को दोनों हाथों से पकड़ कर बेलते हुए आगे की ओर बढते हैं जिसे हाथों में माँस वैसे ही रहता है परन्तु पिछला माँस आगे बढ़ने पर छुटता जाता है। अर्थात जब तक अगला माँस हाथों में न आये पिछले माँस को नहीं छोड़ते हैं। पेट पर मालिश दायें से बायें गोलाई देकर हल्के दबाव में करते हैं। पीठ पर यह प्रक्रिया पेट की अपेक्षा दुगने दबाव देकर करते हैं। मोटापे को दूर करने के लिए यह विधि बेहद लाभकारी है।

(8) खड़ी थपकी - मालिशकर्ता अपने हाथों को अंगुलियों को थोड़ी बंद करके हल्के तथा तेजी से हाथों को चलाता है और अपने हाथों को ढीला रखता है, पर इसमें आवाज तेज आती है। रोगी को इस प्रक्रिया में बहुत आराम मिलता है।

(9) अंगुलियों से ठोकना - इस विधि में मालिशकर्ता खुले हाथों से पंजे से अंगुलियाँ ढीली रखकर अपनी दोनों भुजाओं को शिथिल करके क्रमानुसार रोगी की माँसपेशियों पर ठोकर देते हैं।

(10) कटोरी थपकी - इस विधि में हाथों के पंजों तथा हथेलियों से कटोरी रूप देकर रोगी की पीठ, छाती तथा जाँघों पर थपकी देते हैं। यह एक सहज प्रक्रिया है तथा रोगी को तनाव रहित करती है।

(11) मुक्कामार - अभ्यंगकर्ता अपने मुट्ठी बंद करके पूरे जोर के साथ मारते हैं। अंगुलियों का दबाव ही माँसपेशियों पर पड़ना चाहिए। अतः मुट्ठी नीचे की ओर रखनी होती है। यह क्रिया प्रायः स्वस्थ्य व्यक्तियों के साथ करनी चाहिए। रोगी को भी शारीरिक दृष्टि से मजबूत होने पर ही इस प्रकार अभ्यंग करना चाहिए।

11.7 अभ्यंग के प्रकार

1. ठंडी मालिश - ठंडी मालिश पानी से की जाती है। इस मालिश का उद्देश्य धमनियों की कार्यात्मकता (FUNCTIONING OF THE ARTERIES)की वृद्धि करना होता है। इस कारण से ऊपर से नीचे की ओर मालिश की जाती है। ठंडी मालिश करने के निम्न नियम हैं:-

- तौलिये को पानी में भिगोकर तथा निचोड़कर, उसकी तह बनाकर अंगों पर रगड़ते हैं।
- जल का तापक्रम 70 से 90 डिग्री के बीच होना चाहिये।
- पानी को भगोने भरकर रखें तथा दो तौलियों को रखें। एक पानी में डालें तथा दूसरी का उपयोग करें। बार - बार तौलिया बदलते रहें।
- मालिश के पश्चात रोगी को आधा घन्टा विश्राम अवश्य करना चाहिये।
- रोगी को चादर या कम्बल से लपेट देना चाहिये।
- छाती पर ठंडी मालिश से फेफड़ों को लाभ मिलता है।
- वह अंग खुला रखें जहाँ मालिश करनी है।
- हृदय से नीचे की ओर मालिश की जाती है। उदाहरण के लिए कंधों से की ओर, पीठ के ऊपरी भाग से कमर की ओर मालिश करते हैं।

- रोगी का सिर ठंडे पानी से गीला करके पोंछ देते हैं।
- ठंडी मालिश से शरीर में स्फूर्ति आती हैं, धमनियों को अतिरिक्त बल मिलता है, तथा मल व विकार तेजी से समाप्त होते हैं।
- ठंडी मालिश खुली जगह से नहीं करते हैं।
- ठंडी मालिश के लिये उपयुक्त समय मार्च से जुलाई का है।

2. ठंडी - गर्म मालिश - इस विधि में पहले उस अंग को जिस पर मालिश करनी हैं, गर्म कर लेते हैं। गर्म करने के लिए रबर की थैली का उपयोग करते हैं। फिर ठंडी तौलियाँ करके ठंडी मालिश करते हैं। यह मालिश दुर्बल रोगियों को विशेष लाभ देती है।

3. सूखी तथा पाउडर से मालिश - सूखी तथा पाउडर से मालिश करने की क्रियाविधि एक सी जैसी रहती है। इसमें माँसपेशियों को धीरे - धीरे हल्के से मसलते हैं। इसमें अतिरिक्त उन सभी विधियों का उपयोग करते हैं, जो तेल मालिश में वर्णित की गयी हैं। परन्तु इसमें पाउडर का उपयोग करते हैं।

4. पैरों की मालिश - सामान्य रूप से मालिश का कार्य पैरों से शुरू किया जाता है। पहले पैरों की अंगुलियों में तेल लगाकर अंगूठे से मालिशकर्ता रगड़ता है, जोड़ों को हिलाता - डुलाता है, फिर एक - एक अँगूली को पकड़कर खींचता तथा झटका देता है। तदुपरांत तलुवों पर मालिश की जाती है। इसके पश्चात पाँवों पर मालिश होती है, एक गोलाई से मालिश करते हुये जोड़ों पर विशेष मालिश करते हैं।

5. टाँगों की मालिश - पहले टाँगों में तेल लगाकर घर्षण विधि का उपयोग करते हैं। पूरे हथेलियों का दबाव डालकर टखनों से घुटने की ओर घर्षण करते हैं। इसके अतिरिक्त थपथपाना, मरोड़ना, मसलना, ऐठन, थपकी देना आदि सभी विधियों का उपयोग किया जाता है। घुटने पर विशेष रूप से मालिश की जाती है। टाँगों की मालिश लेटने की अवस्था में उचित होती है।

6. हाथों की मालिश - हाथ की हथेली से मालिश प्रारम्भ की जाती है। हथेली के ऊपरी भाग को अंगूठे से रगड़ते तथा मसलते हैं। प्रत्येक अंगुली की मालिश कर झटका देकर खींचते हैं। सभी गोलाई से उन्हें रगड़ाई भी करते हैं। कलाई को गोलकार मसलते हैं तथा हिलाते - डुलाते हैं। फिर कलाई से कोहनी तक इसी प्रकार की मालिश करते हैं। बाजुओं पर तेल लगाकर मर्दन तथा घर्षण करते हैं। बाद में गोलाई में मालिश करते हैं तथा मरोड़ते एवं रगड़ते हैं। कंधों पर गोलाकार दबाव से मर्दन करते हैं, तथा घर्षण करते हैं।

7. पेट की मालिश - रोगी की मालिश करते समय उसके पेट में भोजन नहीं होना चाहिये, इसलिए प्रातःकाल पेट की मालिश करना उपयुक्त होता है। पेट की मालिश करते समय पेट ढीला रहना चाहिये। पेट शरीर का प्रमुख अंग है, जिसमें यकृत, प्लीहा, आमाशय, पक्वाशय, क्लोमग्रन्थि, छोटी तथा बड़ी आँत होती है। पेट पर तेल लगाकर मर्दन करते हैं। सभी विधियों का उपयोग करते हैं, जो तेल मालिश में वर्णित हैं। बड़ी आँत के प्रारम्भिक हिस्से से मालिश शुरू करते हैं और ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं। बड़ी आँत के बाद लीवर की ओर बढ़ते हैं। फिर बायें मुड़कर आमाशय तक पहुँचते हैं। बड़ी आँत की बनावट के अनुसार मालिश की जाती है यह दाईं तरफ से पेट के निचले कोने से होकर यकृत के नीचे होते हुये आमाशय की तरफ बढ़ते हैं। वहाँ से दायीं तरफ नीचे जाती है, फिर थोड़ा दायें हटकर ऊपर को उठती हैं। तदोपरान्त दायें से मुड़कर नीचे को गुदा से जा मिलती है।

नाभि एक महत्वपूर्ण स्थिति है, जहाँ पर मालिशकर्ता अपना हाथ रखता है, वहीं से दायें से बायें चक्राकार घुमाते हुये धीर - धीरे इस चक्र को बड़ा करता जाता है। चार - पाँच बार करने के बाद घर्षण देकर पेट की मालिश करता है।

8. छाती की मालिश - छाती पर तेल लगाकर बगलों की तरफ की माँसपेशियों को उसके बाद एक - एक पसली को मलते, मसलते, रगड़ते, घर्षण करते, थपथपाते हैं। हृदय पर गोलाकार मालिश करते हैं। कम्पन, छपकी, कटोरी थपकी, सभी का प्रयोग करते हैं।

9. गले की मालिश - गले की मालिश सावधानीपूर्वक करनी होती है। अँगुलियाँ एक तरफ तथा अँगूठा एक तरफ करके ऊपर से नीचे थोड़ा दबाव देकर मालिश करते हैं। कंधों पर दबाव अधिक देकर मालिश करते हैं।

10. पीठ की मालिश - पीठ में मेरूदण्ड होता है, जो स्नायु संस्थान का प्रमुख अंग होता है। पीठ की मालिश इसी कारण महत्वपूर्ण समझी जाती है। पीठ की मालिश करने के कई प्रकार हैं:-

पीठ पर तेल लगाकर कमर से ऊपर हृदय की ओर मसलते, रगड़ते तथा घषर्ण करते हैं। इसी प्रकार कंधों से हृदय की ओर ऊपर से नीचे की ओर हृदय तक मसलते, रगड़ते तथा घर्षण करते हैं। मेरूदण्ड पर ऊपर से नीचे की ओर तथा नीचे से ऊपर की ओर मसलते, मलते तथा घर्षण देते हैं।

नोट: उक्त सभी मालिश के प्रकारों में आवश्यकतानुसार किसी एक अंग में मालिश दी जाती है।

11.8 अभ्यंग के लाभ

अभ्यंग का शरीर के सभी तंत्रों पर सार्थक व सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कुछ लाभ इस प्रकार हैं।

- पाचन तंत्र सामान्य रहता है तथा उसका संवर्धन होता है।
- कंकाल तंत्र पर भी इसका प्रभाव पड़ता है तथा अस्थियों में शक्ति आती है।
- कंधे, गर्दन, मेरूदण्ड, पीठ, रूधिर नलिकायें, स्नायु सभी को अतिरिक्त बल प्राप्त होता है।
- स्नायुओं को उत्तेजना प्राप्त होती है तथा वे सक्रिय होते हैं।
- रक्त तथा लसीका संचार में वृद्धि होती है।
- पसीने तथा मूत्र के द्वारा विजातीय द्रव्य (Toxic) शरीर से बाहर निकल जाते हैं।
- त्वचा के कार्य में वृद्धि होती है तथा प्रतिरक्षा संस्थान मजबूत होता है।
- आन्तरिक अंगों तथा ऊपरी अंगों में रक्त संतुलित रूप से संचालित होता है।
- पक्षाघात, पोलियो, सिर दर्द तथा तनाव से मुक्ति मिलती है तथा माँसपेशियाँ सुदृढ़ होती हैं।
- जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है। रक्त भार तथा हृदय गति को कम किया जा सकता है।
- मालिश को इन्डोरफीन्स (ENDORPHING) का टानिक की वृद्धि करता है जो कि प्राकृतिक कष्ट निवारण का काम करता है।
- अभ्यंग को शरीर की पुष्टि, कोमलता व रक्त संचार का नियंत्रक माना गया है।

बाँणभट्ट ने तैलाभ्यंग के निम्न लाभ बताये हैं:-

- जराहर:- शरीर से जर अर्थात रोग, पीड़ा को हरने वाला है।
- श्रमहर:- अत्यधिक श्रम करके जब माँसपेशियों में दर्द होने लगता है कोशिकायें व उत्तक शिथिल हो जाते हैं तो अभ्यंग से उन उत्तकों को नवजीवन मिलता है। कोशिका का पुनर्निमाण होने लगता है तथा माँसपेशियों का दर्द दूर होने लगता है।
- वायु विकार नाशक:- वायु विकार जब बनने लगते हैं तो अनेकानेक रोग हो जाते हैं। अभ्यंग को वायु विकार नाशक कहा है।
- दृष्टि प्रसादकर:- नियमित अभ्यंग से सभी दृष्टि विकार दूर होती है और दृष्टि बढ़ती है।
- आयु पुष्टिवर:- नियमित अभ्यंग से आयु में भी वृद्धि होती है।

- निद्राजनन:- अभ्यंग से निद्राजनन रोग दूर होते हैं। आलस्य भी दूर होता है। शरीर में नयी ताजगी व स्फूर्ति आती है।

संक्षेप में हम कह सकते है कि अभ्यंग वायु नाशक, शरीर को पुष्ट करने वाला सभी तंत्रों पर सकारात्मक प्रभाव डालने वाला, निद्रा लाने वाला, शरीर को दृढ़ ;मजबूत एवं संतुलित करने वाला होता है।

11.9 अभ्यंग के योग्य एवं अयोग्य व्यक्ति

सामान्यतः अभ्यंग सभी प्रकार के रोगियों के लिए लाभकारी है परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में अभ्यंग नहीं करना चाहिए। अष्टांग संग्रह में कहा है कफ, दोष से पीड़ित रोगी में वमन - विवेचन आदि संशोधन कर्म के पश्चात तथा अजीर्ण रोग में अभ्यंग नहीं करना चाहिए।

स्वस्थ्यवृतसमुच्चय में कहा है:-

तरूणज्वर्यजीर्णो च नाभ्यक्तव्यौ कथप्रचन

तथा विरिक्तोवान्तश्च निरूढो यश्च मानवः

पूर्वयोः कृच्छूताव्याघेरसाहयत्वंमथापि वा

शेषाणांतदहः प्रोक्ता अग्निमान्धादयो गदाः

संतर्षपणमृत्यानां रोगाणां नैव कारयेत्

अर्थात नवज्वार पीड़ित, अजीर्ण पीड़ित, वमन विरेचन निरूह किये हुए, संतप्रण जन्य रोग, इन अवस्थाओं में अभ्यंग करने से वे रोग कष्टसाध्य हो जाते हैं, अग्निमांध हो जाता है तथा संतप्रण जन्य रोग उत्पन्न हो जाते है।

उपरोक्त रोगों के अलावा हर प्रकार के रोगी के लिए अभ्यंग लाभकारी है। नित्यप्रति अभ्यंग शिरामुखों तथा रोग कूपों से धमनियों को तृप्त करता हुआ स्नेह शरीर में बल उत्पन्न करता है। आयुर्वेद कहता है कि चोट, अग्नि से दग्ध, तेज औजार की चोट तथा घर्षण से लगी चोट की पीड़ा को नष्ट करता है। जिस प्रकार वृक्ष के अंकुर जल से सिंचन करने पर बढ़ते हैं, उसी प्रकार तेल अभ्यंग से सिंचन करने पर धातुओं की वृद्धि होती है और सभी तन्त्रों से सम्बन्धित विकार जाते रहते हैं।

अभ्यास हेतु प्रश्न

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) अभ्यंग का प्रथम महत्वपूर्ण सिद्धान्त है

अ. रोगी को पहले भोजन खिलाते है

ब. मालिश में रक्त का प्रवाह हृदय की ओर रहे।

स. मालिश से पूर्व रोगी को स्नान कराते है

द. मालिश में रक्त का प्रवाह हृदय से विपरीत है।

(ख) आचार्य चरक के अनुसार अभ्यंग वह प्रक्रिया है जिससे-

अ. शरीर सुदृढ़ होता है

ब. त्वचा कोमल होती है

स. उपरोक्त दोनों होते है

द. इसके विपरीत होता है

(ग) अभ्यंग की विधि नहीं है-

अ. थपकी ब. गूथना

स. फेंकना द. घर्षण

(घ) अभ्यंग के अयोग्य व्यक्ति है-

अ. अर्जीण से पीड़ित ब. वात रोग से पीड़ित

स. दर्द से पीड़ित द. उपरोक्त सभी

(ड.) अभ्यंग से होता है

अ. पाचन तन्त्र का सर्वधन ब. रक्त संचार की वृद्धि

स. जीवनी शक्ति की वृद्धि द. उपरोक्त सभी

11.10 सारांश-

अभ्यंग एक उपयोगी क्रिया है जिसके महत्व का वर्णन विभिन्न चिकित्सकीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है हमारे जीवन से इसका सम्बन्ध आदिकाल से चला आ रहा है। आचार्य चरक से लेकर आधुनिक चिकित्सक भी इसके महत्व पर प्रकाश डालते है। सैद्धान्तिक रूप से अभ्यंग इस रूप में करना चाहिए कि इससे रक्त का प्रवाह हृदय की ओर रहे तथा इसके साथ-साथ सूर्य किरणों को जोड़ने से इसके लाभ और अधिक बढ़ जाते हैं।

यह अभ्यंग सम्पूर्ण शरीर की मांसपेशियों एवं तन्त्रों को सक्रिय एवं स्वस्थ बनाता है। आलस्य, थकान एवं पीड़ा का हरण करता है। एवं पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करता है।

अभ्यंग की कुछ विधियों को भी आपने इस इकाई में जाना तथा इसके प्रकारों का भी अध्ययन किया। अभ्यंग की इस क्रिया में अभ्यंग के योग्य एवं अयोग्य व्यक्तियों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए जिसका अध्ययन आपने इस इकाई में किया है।

11.11 शब्दावली-

जराहर- बुढापा

श्रम हर- कार्य से उत्पन्न थकान को दूर करने वाला

दृष्टि प्रसादकर- नेत्र ज्योति बढ़ाने वाला

शिथिल करना- ढीला छोड़ना

मेरूदण्ड- रीढ़

संशोधन कर्म- शुद्धि की क्रियाएं

11.12 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

(1) (क) ब (ख) स (ग) स (घ) अ (ड.) द

11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तर प्रदेश

2. सक्सैना ओम प्रकाश, (2009) सरल प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवासदन, मथुरा

3. शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली

6. सिंह राम हर्ष (2006) स्वस्थ वृत्तविज्ञान, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली

7. मिश्रा डा0 पी0 डी0 मिश्रा बीना (2001) प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त व व्यवहार

11.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. अभ्यंग चिकित्सा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए विविध परिभाषाओं के माध्यम से समझाइये।

2. अभ्यंग के महत्वपूर्ण सिद्धान्त व लाभ बतायें।

3. अभ्यंग के प्रकारों को बताते हुए अभ्यंग के योग्य-अयोग्य बतायें।

4. शरीर के विविध अंगों पर मालिश कैसे की जाती है विस्तारपूर्वक चर्चा करें

इकाई 12 वमन, सिरदर्द, बुखार, रक्तचाप, जोड़ो का दर्द, गठिया, मोटापा,अस्थमा, हृदय रोग, मधुमेय की प्राकृतिक चिकित्सा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 वमन

12.4 सिरदर्द

12.5 बुखार

12.6 रक्त चाप

12.6.1 उच्च रक्त चाप

12.6.2 निम्न रक्त चाप

12.7 जोड़ों का दर्द

12.8 गठिया

12.9 मोटापा

12.10 अस्थमा

12.11 हृदय रोग

12.12 मधुमेह

12.13 सारांश

12.14 शब्दावली

12.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.17 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना-

वर्तमान समय में भिन्न-भिन्न प्रकार के शारीरिक रोग समाज में फैलते जा रहे है। जिसमें मधुमेय सिरदर्द, बुखार तथा रक्तचाप आदि आम रोग है। भिन्न-भिन्न चिकित्सा पद्धतियाँ इन रोगों के इलाज के दावे तो अवश्य करती है किन्तु इनके दावों के बाद भी रोग एवं रोगियों की संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है। यहाँ पर यदि हम प्राकृतिक चिकित्सा की ओर ध्यान केन्द्रित करें तो यह इन सभी रोगों का सरल, सहज एवं स्थाई उपचार करने में सक्षम है। आपने पूर्व की इकाईयों में मिट्टी चिकित्सा, जल चिकित्सा, सूर्य किरण चिकित्सा एवं उपवास चिकित्सा का अध्ययन किया है इस इकाई में इन सभी विधियों का चिकित्सकीय प्रयोग दिया गया है। इस इकाई में विभिन्न रोगों में मिट्टी चिकित्सा जल चिकित्सा, सूर्य किरण चिकित्सा, अभ्यंग चिकित्सा एवं उपवास चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

12.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप

- वमन तथा सिरदर्द के कारण, लक्षण तथा इनके प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन करेंगे।
- बुखार व रक्तचाप के कारण, लक्षण तथा उपयुक्त प्राकृतिक चिकित्सा का विश्लेषण करेंगे।
- जोडो के दर्द, गठिया व मोटापा के कारण लक्षणो को जानेगे तथा इनके उपचार की प्राकृतिक चिकित्सा का आकलन करेंगे।
- अस्थमा, हृदय रोग तथा मधुमेय के कारण, लक्षणो के साथ-साथ इनके उपचार केलिए उपयुक्त प्राकृतिक चिकित्सा को जानेंगे।

12.3 वमन-

शरीर में गन्दगियों (विजातीय विषों) के अधिक मात्रा में जमा होने पर मुंह के रास्ते जब यह गन्दगियाँ बाहर निकलने लगती है इसे वमन कहा जाता है यद्यपि एक ओर यह शरीर की सफाई की क्रिया है किन्तु जब यह ज्यादा बढ़ जाती है तब यह जीवन के लिए घातक सिद्ध होती है।

- वमन के लक्षण-

1 मुख से बार - बार उल्टीयां आना।

2 पेट में ऐठन व दर्द रहना।

3 जी मचलाना एवं चक्कर आना।

4 खट्टी डक्कारे अथवा पेट में पित्त की अधिकता का होना।

5 पेट में गैस बनना।

6 संक्रमण का होना।

- वमन का कारण -

1 खाने - पीने की मात्रा अधिक अथवा विकृत होने से।

2 पाचन संस्थान में विकृति होना।

3 पाचक रसों का स्राव अनियमित होने से।

4 विषाक्त पदार्थो का सेवन से।

5 बहुत ठण्डी हवा अथवा लू लगने से।

6 संक्रमण से।

प्राकृतिक चिकित्सा

1) मिट्टी चिकित्सा -

- वमन का मूल कारण विजातीय विष अर्थात गन्दगिया होती है। मिट्टी का मूल कार्य शरीर के विषों को शोषित करने से होता है। अतः मिट्टी का वमन में प्रयोग अत्यन्त लाभकारी होता है।
- पेट पर मिट्टी की गीली ठण्डी पट्टी देने से पेट के विष भी बाहर आते है। पेट पर रखी मिट्टी के गर्म होने पर पुनः ठण्डी गीली मिट्टी की पट्टी पेट पर देने से लाभ मिलता है।
- माथे-सिर पर मिट्टी की पट्टी से रोगी को शान्ति की अनुभूति होती है और उसके हार्मोन्स तथा एन्जाइम्स व्यवस्थित होते है।

2) सूर्य किरण चिकित्सा -

- आसमानी रंग की बोतल में तैयार किया जल का सेवन करने से रोगी को लाभ प्राप्त होता है।

3) अभ्यंग चिकित्सा -

- इस प्रकार के रोगी को हाथों पैरों पर हल्के हाथों से अभ्यंग देने से लाभ मिलता है।

4) उपवास चिकित्सा -

- उपवास के द्वारा शरीर को विष से मुक्त किया जा सकता है। इस रोग का मूल कारण शरीर में स्थित विष अर्थात गन्दगियां है। उपवास से शरीर को आराम मिलता है। रोग की तीव्र अवस्था में भोजन को त्यागकर प्रत्येक आधे-आधे घंटे के अन्तराल पर इलैक्ट्रोलाइट घोल (पानी+नीबूं+सैंधा नमक+शहद) रोगी को पिलाना चाहिए।
- नारियल पानी का सेवन भी रोगी को कराया जा सकता है।

(क) पथ्य - सामान्य भोजन के स्थान पर हल्के सुपाच्य फलों के जूस एवं सब्जियों के सूप का सेवन करें।

(ख) अपथ्य - गरिष्ट, तले भूने भोजन को कदापि ना ले। बासी फल सब्जियाँ एवं भोजन का त्याग करें।

विशेष - कटिस्नान से इस रोग में विशेष लाभ मिलता है।

- पेट पर ठण्डी पट्टी की लपेट करने पर भी लाभ मिलता है।
- निश्चित समय पर हल्का, सुपाच्य एवं ताजा भोजन करने से यह रोग नहीं होता।
- भोजन में स्वच्छता का विषेष ध्यान रखे।

12.4 सिर दर्द-

सिर दर्द वास्तव में कोई बिमारी अथवा रोग नहीं हैं अपितु यह शरीर में हो रही किसी असहज अथवा असामान्य घटना या क्रिया की प्रतिक्रिया है जो यह सूचना देती है कि शरीर में कुछ ऐसा घटित हो रहा है जो शरीर के लिये अनुपयुक्त - असामान्य एवं अस्वाभाविक है।

- सिर दर्द के लक्षण -

1 सिर में भारीपन अथवा दर्द होता है।

2 व्यक्ति हर समय स्वयं को समस्याओं एवं कठिनाइयों से घिरा अनुभव करता है।

3 स्वभाव क्रोधी एवं दूसरों से ईष्या युक्त हो जाता है।

4 मानसिक तनाव को अनुभव करता है।

5 स्वयं को असहज अनुभव करता है।

6 भली प्रकार निन्द्रा नहीं आती।

- सिर दर्द के कारण

1 अत्यधिक शारीरिक अथवा मानसिक श्रम करना।

2 कब्ज रहना अथवा ठीक प्रकार से पेट साफ ना होना जिसके कारण शरीर में अधिक गन्दगियों का जमा होना।

3 अधिक चिन्ता करना एवं तनाव में रहना।

4 कार्य अथवा व्यवसाय में घाटा होना अथवा कोई बड़ा शोक (दुखः) होना।

5 अनियंत्रित दिनचर्या का होना, रात्रि में देर से सोना तथा सुबह देर से उठना।

6 शराब, गुटका, मांस अथवा तामसिक भोजन का सेवन करना।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि यह कोई रोग नहीं अपितु किसी असहज-अप्राकृतिक क्रिया की प्रतिक्रिया है अतः सबसे पहले हमें उस क्रिया या कारण को ढूंढ कर उसका निवारण करना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा

1) मिट्टी चिकित्सा:

- सिर दर्द रोगी को सिर और माथे पर दी गयी गीली ठण्डी मिट्टी की पट्टी विशेष लाभ प्रदान करती है। पेट की पट्टी भी रोगी को देने से लाभ मिलता है। इस रोग में सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी की लपेट देने से विशेष लाभ प्राप्त होता है एवं शरीर से विजातीय विष बाहर आने पर सिर दर्द ठीक हो जाता है।

2) सूर्य किरण चिकित्सा:

- सिर दर्द से पीड़ित रोगी को प्रातः काल जल्दी उठकर प्रातः कालीन भ्रमण करना चाहिए एवं प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश को शरीर पर ग्रहण करना चाहिए।
- हरे रंग की बोतल में तैयार जल का सेवन भी इस रोग में लाभ प्रदान करता है।

3) अभ्यंग चिकित्सा:

- सिर दर्द में सबसे महत्वपूर्ण शिरोभ्यंग होता है परन्तु सम्पूर्ण शरीर का अभ्यंग एक ओर जहां शरीर में रक्त संचार में तीव्रता लाता है वहीं दूसरी ओर शारीरिक एवं मानसिक शान्ति भी प्रदान करता है।
- प्रातः सांय आधा-आधा घण्टा सम्पूर्ण शरीर का अभ्यंग करने से तनाव के साथ-साथ सिर दर्द भी ठीक होता है। हाथों-पैरों का अभ्यंग भी लाभ देता है।

4) उपवास:

- सिर दर्द का एक प्रमुख कारण शरीर में विजातीय विषों का इकट्ठा होना है। उपवास इन विषों एवं गन्दगियों को समाप्त करता है।

- इसके लिए रोगी को पहले एक सप्ताह फलों एवं सब्जियों पर उसके पश्चात अगले सप्ताह फलों के जूस एवं सब्जियों के सूप पर तथा तीसरे सप्ताह शहद और नींबू के पानी पर ही उपवास कराना लाभकारी सिद्ध होता है।
- उपवास काल में एनिमा लेने से शरीर एवं पेट की भलीभांति सफाई होती है।
- ऐसा करने से शरीर की सारी गन्दगियां बाहर निकल जाती है एवं सिर दर्द पूर्ण रूप से ठीक हो जाता है।

(क) पथ्य:

- इस प्रकार के रोगी को हरी सब्जियों एवं फलों का ज्यादा सेवन करना चाहिए।
- आहार में ध्यान रखना चाहिए कि आहार हल्का एवं सुपाच्य हो अर्थात कब्ज आदि को ना उत्पन्न करने वाला हो एवं शीघ्रता से पचने वाला होना चाहिए। लौकी, तुरई, परवल हरी सब्जियों आदि का ज्यादा सेवन करना चाहिए।

(ख) अपथ्य: गरिष्ट तले-भूने भोजन का त्याग करना चाहिए।

- नमक की मात्रा कम करते हुए मिर्च-मसालों को छोड़ दें।

विशेष - नियमित प्रातःकालीन भ्रमण एवं योगाभ्यास से यह रोग जीवन में नहीं आता।

- व्यक्ति को अपनी दिनचर्या नियमित एवं आहार-विहार संयमित करने चाहिए। जीवन को प्रसन्नता के साथ जीते हुए सभी समस्याओं एवं कठिनाईयों का सामना धैर्य के साथ करना चाहिए।

12.5 बुखार-

शरीर में जलन, मुख पर तपन, अंग-अंग में शिथिलता और रोम-रोम में सिरहन को बुखार की संज्ञा दी जाती है। आधुनिक विज्ञान एक ओर जहां इसे बहुत ही विषम स्थिति कहता है तो वहीं प्राकृतिक चिकित्सा कहती है कि यह उस स्थिति का नाम है जब सम्पूर्ण शरीर में गन्दगियों का बोझ भर गया है और शरीर उसे उष्ण ताप से जला रहा है।

गलत आहार विहार से जब सम्पूर्ण शरीर में गन्दगियों का विष भर जाता है तब उस विष पर बाहय वातावरण से रोगाणु या जीवाणु अपना आक्रमण कर आ बैठता है जिसका हमारी आन्तरिक जीवनी शक्ति द्वारा विरोध किया जाता है, इसी अवस्था का नाम बुखार है।

- बुखार के लक्षण -

1 शरीर का तापक्रम बढना।

2 हदय की गति श्वास गति का बढना।

3 शरीर (मुख्य रूप से जोड़ों) में दर्द होना।

4 शरीर में थकान, आलस्य का अनुभव होना।

5 प्रत्येक अंग में दर्द होना।

6 ठण्ड का अनुभव होना।

- बुखार के कारण -

1 शरीर में विजातीय विषों (गन्दगियों) के अधिक इकट्ठा होने से।

2 बाहय जीवाणु या रोगाणु के संक्रमण से।

3 अचानक मौसम परिवर्तन होने से।

4 ठण्डी चीजों के ज्यादा सेवन से।

5 शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम होने से।

6 असंयमित आहार-विहार से।

प्राकृतिक चिकित्सा

1) मिट्टी चिकित्सा -

- बुखार में मिटटी का प्रयोग बहुत लाभकारी सिद्व होता है। पेट पर मिट्टी की पट्टी पेट की आन्तरिक गर्मी को शान्त करती है। पेट के विजातीय विषों को भी यह मिट्टी सोख लेती है।
- माथे पर मिट्टी की पट्टी सिर की बढ़ी हुई उष्मा को शान्त करती है। इस मिट्टी से भी विषाक्त तत्वों का शोषण होता है। यकृत की बढी हुई उष्मा भी मिट्टी की पट्टी से शान्त होती है।
- सम्पूर्ण शरीर का मिट्टी लेप इस रोग में विशेष प्रभाव रखता है। सम्पूर्ण शरीर पर लगभग एक से दो इंच मिट्टी का लेप कर धूप में बैठकर इस मिट्टी को सूखाने से सम्पूर्ण शरीर के विषाक्त तत्व बाहर आ जाते है। इससे सम्पूर्ण शरीर में स्वच्छता के साथ-साथ रक्त संचार में भी तीव्रता आती है।

2) सूर्य किरण चिकित्सा -

- बुखार में रोगी को आसमानी अथवा गहरा नीला रंग के सूर्य तृप्त जल का सेवन कराया जाता है।
- सूर्य किरण में पके पीत वर्ण फलों जैसे अमरूद, आम, अंगूर, पपीता आदि के सेवन से भी लाभ मिलता है।
- सम्पूर्ण शरीर पर सूर्य प्रकाश (सूर्य स्नान) लेने से भी इस रोग में लाभ प्राप्त होता है।

3) अभ्यंग चिकित्सा:

- अभ्यंग के प्रभाव से शरीर के रक्त परिवहन में तीव्रता आती है। चूंकि बुखार में सम्पूर्ण शरीर में दर्द रहता है और यह दर्द जोड़ों पर विशेष रूप से प्रभावी रहता है। अतः जोड़ों का अभ्यंग करने से रोगी को लाभ मिलता है। हाथों एवं पैरों का हल्का अभ्ंयग करने से भी रोगी को आराम मिलता है।

4) उपवास -

- बुखार में उपवास का विशेष महत्व है। बुखार में रोगी को पूर्णोपवास भी कराया जा सकता है। यह पूर्णोपवास रोगी की स्थिति एवं रोग की अवस्था पर निर्भर करता है। प्रारम्भ में एक

सप्ताह फल-सब्जियों पर फिर अगले सप्ताह जूस व सूप तथा तीसरे सप्ताह नीबूं, शहद पानी पर उपवास कर इस रोग को जड़ से समाप्त किया जा सकता है।

- प्राकृतिक चिकित्सा इस रोग की जड़ शरीर में विजातीय विषों गन्दगियों का ज्यादा मात्रा में इकट्ठा होना मानता है अतः उपवास द्वारा शरीर से इन गन्दगियों को बाहर निकालना ही इस रोग का स्थाई उपचार है।
- उपवास काल में एनिमा क्रिया का विशेष महत्व है। उपवास काल में प्रतिदिन एनिमा लेने से शरीर की भली-भाँति सफाई हो जाती है।

(क) पथ्य - हल्के सुपाच्य भोजन को ले। पीले फलों का सेवन ज्यादा करें जिससे शरीर की जठराग्नि भली प्रकार प्रज्वलित रहे।

बुखार में अनार का सेवन यकृत पर सकारात्मक प्रभाव रखता है तथा उसे क्रियाशील बनाए रखता है।

(ख) अपथ्य - गरिष्ट भोजन को कदापि ना लें। वसा युक्त पदार्थो एवं मैदे की वस्तुओं का त्याग करें।

विशेष - प्रातःकालीन भ्रमण तथा आसन एवं प्राणायाम आदि का अभ्यास करने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है एवं विजातीय द्रव्य शरीर में इकट्ठा नहीं हो पाते। सुव्यवस्थित दिनचर्या हमारी जीवनी शक्ति को इतना प्रबल कर देती है कि वह इन रोगाणुओं से हमारे शरीर को भली भाँति सुरक्षित रखने में सक्षम रहती है।

12.6. रक्तचाप

रक्तचाप एक आम बीमारी है जो वर्तमान में आधुनिक जीवनशैली से उपजी हुई है। आधुनिक विज्ञान कहता है कि एक सामान्य व्यक्ति का रक्तचाप 120/80 mm. Hg होता है। अगर इससे अधिक है तो उच्चरक्त चाप और कम है तो निम्न रक्तचाप कहा जाता है। रक्तचाप कभी स्थिर नही रहता उपरोक्त 120/80 mm. Hg रक्तचाप का एक मानक है देश, काल, आहार, दैनिक दिनचर्या के अनुसार यह घट तथा बढ़ सकता है। रक्तचाप के भेदो का विवेचन आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत है।

12.6.1 उच्चरक्तचाप

आधुनिकता की अंधी दौड़ एवं प्रतिर्स्पधात्मक जीवन शैली के चलते इस रोग ने आज समाज में अपनी गहरी जड़े जमा ली हैं। व्यक्ति एक बार इस रोग की चपेट में आने के बाद वह जीवन भर के लिए इससे जूझता रहता है। एलोपैथी चिकित्सा इस रोग को असाध्य रोगों की श्रेणी में रखती है तथा केवल इसके लक्षणों की ही दबाने की बात करता है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा इसकी जड़ से चिकित्सा की बात कहती है।

- उच्चरक्तचाप के लक्षण -

1. रोगी को पसीना ज्यादा आता है और वह आन्तरिक घबराहट अनुभव करता है।
2. सिर में पीछे की ओर (कान के पीछे) दर्द होता है।
3. रोगी को बैचेनी रहती है तथा चक्कर भी आते हैं।
4. हृदय की धड़कन बढ़ी रहती है।
5. कार्य करने में मन नही लगता एवं स्वभाव चिड़चिढ़ा हो जाता है।
6. निन्द्रा कम होने के साथ-साथ स्मरण शक्ति कम होने लगती है।

- उच्चरक्तचाप के कारण -

1. रोग का मूल कारण मानसिक तनाव अथवा अत्यधिक चिन्ता हैं।
2. अनियमित दिनचर्या का होना एवं जीवन में योगाभ्यास का अभाव होना।
3. असंयमित आहार से रक्त वाहिनियों का कठोर एवं संकुचित होना।
4. अचानक अत्यधिक शोक, क्रोध अथवा मानसिक क्षोभ का होना।
5. अत्यधिक शारीरिक श्रम करना एवं विश्राम न करना।
6. वंशानुगत कारण होना।

सर्वप्रथम जिन कारणो से रक्तचाप बढ़ा है, उन कारणों का निवारण ही इसकी मुख्य चिकित्सा हैं

प्राकृतिक चिकित्सा

1) उच्चरक्तचाप चिकित्सा:

- मिट्टी का प्रभाव रोग पर पड़ता है। गीली मिट्टी की पट्टी रोगी के माथे-सिर एवं पेट पर देने से रक्तचाप नियमित होता है। गीली मिट्टी की पट्टी रक्त से अशुद्ध पदार्थो का शोषण करती है जिसके कारण रक्त का दबाव कम होता है। माथे-सिर पर मिट्टी की पट्टी मन एवं मस्तिष्क को आराम देती है। मन-मस्तिष्क को आराम मिलने से भी रक्तचाप सामान्य होता है।

2) सूर्य किरण चिकित्सा:

- नीले रंग की बोतल में तैयार जल का सेवन रोगी को कराना चाहिए।

3) अभ्यंग चिकित्सा:

- उच्च रक्तचाप में अभ्यंग का विशेष महत्व है। शिरोभ्यंग से रक्तचाप नियमित होता है। सम्पूर्ण शरीर पर सुबह-शाम आधा घंटा अभ्यंग करने से रक्त संचार की क्रिया में तीव्रता आती है एवं रक्तचाप ठीक होता है। अभ्यंग में मृदुता का विशेष ध्यान रखना होता है एवं इस काल में रोगी को बहुत अच्छा अनुभव होना चाहिए।
- रीढ़ की मालिश करने से रोगी को विशेष आराम मिलता है।
- उच्च रक्तचाप में अभ्यंग की दिशा हृदय की ओर नहीं होनी चाहिए। बल्कि हृदय से अंगों की ओर अभ्यंग करते हैं।

4) उपवास चिकित्सा:

- उच्च रक्तचाप में उपवास का विशेष महत्व होता है।
- पूर्ण उपवास से पहले हरी सब्जियों के सूप का सेवन कराना चाहिए। अन्त में रोगी को पूर्णोपवास में केवल नींबू पानी एवं शहद का सेवन करना चाहिए। इस उपवास में विशेष सावधानियां रखनी होती है।

(क) पथ्य = हल्का सुपाच्य भोजन ही ग्रहण करें। हरी पत्तेदार सब्जियों एवं फलों का सेवन करें।

(ख) अपथ्य = चाय, चीनी, नमक, धूम्रपान, तम्बाकू, शराब एवं गरिष्ठ भोजन का त्याग करें। तला-भूना मिर्च-मसाले से युक्त भोजन को न लें।

विशेष: मानसिक तनाव से बचें। सदैव प्रसन्न रहें।

- शुद्ध सात्विक आहार विहार करें।
- भोजन में नमक-मसालों को बहुत कम-कम अथवा त्याग दें।
- प्रातःकालीन भ्रमण एवं योगाभ्यास को अपनाएं।

12.6.2 निम्न रक्तचाप

सामान्य व्यक्ति का रक्तचाप 120-80 m.m. of Hg होता है। किन्तु जब यह स्थिति 110-70 से भी नीचे हो जाए तो उस अवस्था को निम्न रक्तचाप कहा जाता है।

- निम्न रक्तचाप के लक्षण -

1. व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक दुर्बलता का अनुभव होता है।
2. सिर में चक्कर आने लगते हैं।
3. हाथों-पैरों में शक्तिहीनता की स्थिति बनी रहती है तथा ये ठण्डे रहते हैं।
4. श्वास की स्थिति अनियमित हो जाती है एवं श्वास फूलने लगता है।
5. घबराहट होने लगती है।
6. शरीर में हर समय आलस्य एवं निद्रा की स्थिति बनी रहती है।

- निम्न रक्तचाप के कारण -

1. मानसिक तनाव, अवसाद, चिन्ता और निराशा इसका मूल कारण माना जाता है।
2. शरीर में हार्मोन्स का अनियमित होना।
3. रक्त की कमी होना।
4. पौष्टिक भोजन का अभाव होना।
5. मलेरिया एवं पीलिया आदि संक्रामक व्यधियों से पीड़ित होने पर।

6. वंशानुगत कारण।

सर्वप्रथम रोग के मूल कारण को जानना चाहिए एवं उसका निवारण करना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा

1) मिट्टी चिकित्सा -

- इस रोग में रोगी के पेट की सिकाई कर पेट पर मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए जिससे विजातीय पदार्थ शरीर से बाहर निकल सके एवं रक्तवाहियों में संकोच होने से रक्तचाप सामान्य हो सके।

2) सूर्य किरण चिकित्सा -

- निम्न रक्तचाप रोगी को सूर्य स्नान विशेष लाभ देता है। सूर्य स्नान से पूरे शरीर में रक्त प्रवाह तीव्र होता है एवं रक्तचाप नियमित होता है। निम्न रक्तचाप में रीढ़ पर वाष्प (भाप) देने से भी लाभ मिलता है।
- लाल रंग की बोतल में तैयार जल का सेवन रोगी को कराने से भी लाभ प्राप्त होता है।

3) अभ्यंग चिकित्सा -

- निम्न रक्तचाप में सम्पूर्ण शरीर का अभ्यंग रोगी को लाभ देता है।
- अभ्यंग करते समय अभ्यंग की दिशा शरीर के अंगों से हृदय की ओर होती है। प्रातः सायं दोनों समय अभ्यंग देने से रोग में विषेष लाभ मिलता हैं

4) उपवास चिकित्सा:

- निम्न रक्तचाप में शरीर शोधन पर ध्यान देकर पौष्टिक एवं संतुलित आहार रोगी को देना चाहिए। इसके लिये एक सप्ताह फलों के जूस एवं सब्जियों के सूप पर रोगी को रखा जा सकता है।

(क) पथ्य = बादाम, मुनक्का जैसे सूखे मेवों का सेवन करें एवं अंकुरित अन्न खाने से भी रक्तचाप नियमित होता है। भोजन में नमक की मात्रा बढ़ाने से रोग में लाभ मिलता है।

- मौसमी फलों (मुख्य रूप से रसदार फल) एवं सब्जियों का सेवन करें।

(ख) अपथ्य = तामसिक भोजन व तले-भुने आहार का सेवन न करें।

विशेष:- निराशा, और कुष्ठा का सीधा सम्बन्ध निम्नरक्तचाप से है इन नकारात्मक विचारों का त्याग कर सकारात्मक सोच को जीवन में अपनाए एवं आत्मविश्वास के साथ जीवन जीने से जीवन में यह रोग नहीं आता।

12.7 जोड़ों का दर्द-

आधुनिक समाज में वात जनित व्याधियां मुख्य रूप से बहुत तेजी से बढ रही है। अप्राकृतिक जीवन यापन एवं मानसिक तनाव ने मुख्य रूप से इन रोगो को बढ़ाया है। जोड़ों में दर्द शरीर में स्थिति गन्दगियों की अधिक मात्रा को दर्शाता है जो शरीर में रक्त परिवहन में बाधा उत्पन्न करती है इसके अतिरिक्त अत्यधिक भोगमय सुविधायुक्त जीवन यापन (Luxurious life style) ने भी इस बिमारी को समाज में बढ़ाया है।

- जोडो के दर्द के लक्षण

1 हाथों पैरों के जोड़ों में दर्द रहता है।

2 जोड़ों में सूजन रहती है।

3 हड्डियों एवं जोड़ों में कड़ापन आ जाता है।

4 जोड़ों में गतिशीलता कम हो जाती है।

5 कन्धों, घुटनों एवं एड़ियों में शिथिलता आ जाती है।

6 शारिरिक श्रम की क्षमता कम हो जाती है।

- जोडो के दर्द का कारण

1 असंयमित आहार विहार से।

2 अत्यधिक विलासितापूर्ण जीवन से।

3 शारिरिक श्रम के अभाव से।

4 चचापचय सम्बन्धी (हार्मोन्स सन्तुलन) बिगड़ने से।

5 तीखी-खट्टी, ठण्डी-बासी, खाद्य वस्तुओं के अधिक सेवन से।

6 वंशानुगत।

प्राकृतिक चिकित्सा

1) मिट्टी चिकित्सा

- इस रोग में गीली मिट्टी को गर्म करके पीड़ित स्नान पर लगाने से विशेष लाभ प्राप्त होता है। गर्म मिट्टी की सिकाई से रक्त संचार बढता है एवं जोड़ों के दर्द में आराम मिलता है।

2) सूर्य किरण चिकित्सा -

- जोड़ों के दर्द में नारंगी रंग की बोतल के सूर्य तृप्त जल की 50 ग्राम मात्रा की चार खुराक प्रतिदिन पीने और एक घन्टा तक पहले लाल या नारंगी रंग का प्रकाश पीड़ित स्थान पर डालकर उसके बाद दो घन्टा तक नीले रंग का डालने व सूर्य तृप्त लाल रंग के तेल से मालिश करने से जोड़ों के दर्द एवं गठिया रोग में जल्दी आराम होता है।

3) अभ्यंग चिकित्सा -

- हल्के हाथों से कम्पन, स्पंदन की क्रिया प्रभावी एवं लाभकारी सिद्ध होती है।
- सरसों के तेल में लौंग, लहसुन, अजवाइन, मिलाकर गर्म कर उसकी हल्की मालिश जोड़ों पर करने से दर्द में आराम मिलता है।

4) उपवास चिकित्सा -

- फलों एवं सब्जियों पर उपवास करने के बाद पूर्णोपवास करना चाहिए। यह वात सम्बन्धी विकार है अतः वात वर्धक वस्तुओं के सेवन से रोग ओर ज्यादा बढ़ जाता है।

(क) पथ्य = लौकी, तुरई, हरी मैथी, परवल आदि का सेवन करना चाहिए।

(ख) अपथ्य = आलू, चावल, दही, उड़द, चने की दाल आदि का सेवन वर्जित है।

विशेष - प्रातःकालीन भ्रमण एवं गर्म जल का सेवन करना चाहिए।

12.8 गठिया-

गलत आहार-विहार से शरीर में स्थित रक्त में यूरिक ऐसिड की मात्रा बढ़ जाने पर यह छोटे-छोटे क्रिस्टल के रूप में जोड़ों में जमा होने लगता है। यही रोग गठिया कहलाता है। आधुनिक समाज में अनियमित दिनचर्या एवं असंयमित जीवन ने समाज में इस रोग को बहुत बढ़ाया है।

- गठिया के लक्षण -

1 शरीर के जोड़ों, सन्धि स्थानों में दर्द होना।

2 अंगुलिया, घुटनों, टकनों, जोड़ों में दर्द एवं दर्द बढ़ने पर सूजन आना।

3 शरीर की पेशीयों में अकड़न एवं जकड़न का होना।

4 हाथों एवं पैरों में सूजन के साथ-2 कार्य करने में कठिनाई होना।

5 रोग की तीव्रावस्था में शरीर का तापक्रम बढ़ना एवं बुखार जैसी स्थिति अनुभव होना।

6 शारीरिक एवं मानसिक थकान का बने रहना।

- गठिया के कारण

1 वात का कुपित होकर जोड़ों में इकट्ठा होना।

2 जोड़ों में रक्त परिसंचरण में बाधा उत्पन्न होना।

3 शारीरिक श्रम का पूर्णतया अभाव होना एवं अत्यधिक सुविधायुक्त भोगमय जीवन शैली अपनाना।

4 शरीर में हार्मोन्स के असन्तुलित होने पर। (महिलाओं में 45-50 वर्ष की अवस्था होने पर)

6 बासी, रूक्ष, खट्टा व चटपटा भोजन करना अथवा शराब, गुटका आदि नशीले पदार्थो का ज्यादा सेवन करने से।

6. वंशानुगत

इस रोग का सबसे प्रमुख कारण असंयमित रहन-सहन है अतः सबसे पहले व्यक्ति को अपने आहार पर ध्यान देकर दिनचर्या को संयमित एवं सुव्यवस्थित करनी होगी जिससे रोग के मूल कारण को ठीक किया जा सके।

प्राकृतिक चिकित्सा

1) मिट्टी चिकित्सा -

- इस रोग से पिड़ित रोगी के जोड़ों पर गीली मिट्टी को गर्म करके प्रयोग किया जाता है। मिट्टी को गर्म करके जिस तापक्रम ही मिट्टी रोगी सहन कर सके उस तापक्रम की मिट्टी को जोड़ों पर लगाया जाता है।

2) सूर्य किरण चिकित्सा -

- सूर्य किरण चिकित्सा इस रोग में विशेष लाभकारी होती है। रोगी को प्रातःकाल सम्पूर्ण शरीर का सूर्य स्नान कराने से रोग में विशेष लाभ प्राप्त होता है इसके अतिरिक्त प्रभावित जोड़ को तीव्र सूर्य प्रकाश में रखने पर यूरिक ऐसिड पसीने के साथ शरीर से बाहर आता है एवं रोगी को आराम मिलता है।
- इस रोग में जोड़ों पर वाष्प देने से भी शीध्र लाभ मिलता है। रोगी को सम्पूर्ण शरीर का वाष्प स्नान देने से भी रोग में लाभ मिलता है।
- नारंगी रंग की बोतल का सूर्य तृप्त जल इसमें लाभ पहुंचाता है। लाल रंग के तेल से मालिश करने पर गठिया रोग शीघ्र ठीक होता है।

3) अभ्यंग चिकित्सा -

- इस रोग में अभ्यंग लाभप्रद होता है। जोड़ों पर हल्के हाथ से तेल की मालिश करने पर जोड़ों में रक्त संचार तीव्र होता है एवं जोड़ों में एकत्र यूरिक अम्ल के क्रिस्टलों में गति आती है। नियमित अभ्यंग करने से यह रोग ठीक हो जाता है।

4) उपवास चिकित्सा -

- यह एक ऐसा रोग है जिस पर ठण्डे एवं वातवर्धक आहार का सीधा प्रभाव पड़ता है। अधिक ठण्डे जल का सेवन इस रोग को बढ़ा देता है। अतः रोगी को आहार पर विशेष ध्यान देते हुए फलों के जूस एवं सब्जियों के सूप का सेवन करना चाहिए पूर्ण उपवास भी रोगी को देने से विशेष लाभ प्राप्त होता है।

(क) पथ्य - हरी सब्जियां, चौकर युक्त आटा, नीबू-शहद का जल, गर्म जल का सेवन करना चाहिए।

(ख) अपथ्य- इस रोग में दालें, चावल, आलू, बैगन, दही, उड़द का सेवन पूर्णतया वर्जित होता है इसके साथ-साथ अण्डे-मास मछली का सेवन इस रोग को बहुत जल्दी से बढ़ा देता है।

विशेष - इस रोग से पीड़ित रोगी को प्रातःकालीन भ्रमण अवश्य करना चाहिए साथ ही योगाभ्यास में सूक्ष्म अभ्यास एवं प्राणायाम का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। रोगी को तामसिक एवं वात वर्धक ठण्डी चीजों के सेवन को त्याग कर हल्का सुपाच्य भोजन ही ग्रहण करना चाहिए।

12.9 मोटापा-

मोटापा समृद्धि, सम्पन्न और श्रमहीन समाज को प्रकृति की तरफ दिया गया एक वरदान है। अधिक स्वादयुक्त भोजन का सेवन, कार्यो के प्रति लापरवाही और आलस्य शीघ्रता से इस आभूषण को प्रदान करते है। शारीरिक श्रम का जीवन में अभाव एवं योगाभ्यास से दूर अप्राकृतिक जीवन यापन इस रोग को ओर ज्यादा बढ़ा देते हैं। आधुनिक सभ्य समाज में आज यह रोग बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है।

- मोटापा के लक्षण-

1 शरीर एवं शारीरिक अंगों का भारी होना।

2 हाथों-पैरों एवं पेट पर चर्बी का अधिक होना।

3 भूख बहुत ज्यादा लगना और खाने की मात्रा का बढ़ना।

4 शारीरिक थकान और आलस्य का बने रहना।

5 कार्य में मन ना लगना, जीवन में उत्साह, उमंग कम होकर निराशा का आना।

6 शारीरिक संरचना एवं शारीरिक सौन्दर्य का बिगड़ना एवं स्मरण शक्ति का कम होना।

- मोटापा के कारण-

1 अधिक मात्रा में वसायुक्त, गरिष्ट एवं भारी भोजन का सेवन करना।

2 शारीरिक श्रम, आसन, प्राणायाम आदि ना करना।

3 चिन्ता मुक्त जीवन जीना।

4 दवाओं का अधिक प्रयोग करना।

5 शरीर में हार्मोन्स के असन्तुलित होने पर।

6 वंशानुगत कारण।

प्राकृतिक चिकित्सा

1) मिट्टी चिकित्सा

- मोटापे में मिट्टी का प्रयोग बहुत प्रभावी सिद्ध होता है। पेट पर गीली मिट्टी की पट्टी पेट के विषों को सोखती है तो माथे-सिर पर मिट्टी की पट्टी मुख के विषों को बाहर निकालती है एवं सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी का लेप सम्पूर्ण शरीर को स्वच्छ एवं विषों से मुक्त करता है।

2) सूर्य किरण चिकित्सा-

- सम्पूर्ण शरीर का सूर्य स्नान इस रोग में लाभकारी रहता है। वाष्प स्नान का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है एवं वाष्प से चर्बी पिघलती है जिससे मोटापा दूर होता है।
- नारंगी रंग की सूर्य तृप्त जल का सेवन रोग में लाभ देता है लाल रंग के तेल की मालिश भी रोग को ठीक करती है।

3) अभ्यंग चिकित्सा -

- इस रोग में अभ्यंग का अच्छा प्रभाव पड़ता है। सम्पूर्ण शरीर का शुष्क अभ्यंग रोगी को लाभ चिकित्सा पहुंचाता है।

4) उपवास चिकित्सा -

- उपवास का मोटापे से गहरा सम्बन्ध है। उपवास के द्वारा शीघ्रता से इस रोग को दूर किया जा सकता है।
- इसके लिए रोगी को पहले फलों के जूस एवं सब्जियों के सूप का सेवन करना चाहिए फिर एक सप्ताह तक नींबू और शहद पर ही उपवास करना चाहिए। उपवास काल में खूब जल का सेवन करने से शरीर की गन्दगियां बाहर निकल जाती है एवं रोग ठीक हो जाता है।
- उपवास काल में प्रतिदिन एनीमा लेना भी अनिवार्य होता है एवं इससे ज्यादा शीघ्रता से लाभ मिलता है।

(क) पथ्य - लौकी, ककड़ी, खीरा, तुरई, परवल तथा नींबू का सेवन लाभप्रद होता है।

- हरी सब्जियाँ एवं सुपाच्य भोजन ही करना चाहिए।

(ख) अपथ्य - भारी गरिष्ट, तला भुना एवं वसा युक्त भोजन का त्याग करना चाहिए। चावल, आलू, घी, तेल, आदि वसायुक्त पदार्थो का त्याग करना चाहिए।

विशेष - प्रातःकाल हल्के गर्म जल को पीना चाहिए। जल में नींबू को भी मिलाया जा सकता है। शारीरिक श्रम एवं योगाभ्यास को जीवन में अपनाना चाहिए।

12.10 अस्थमा-

आधुनिक समाज में यह रोग बहुत तेजी से बढ़ रहा है। पहले यह एक बुढ़ापे का रोग माना जाता है परन्तु आजकल यह रोग बच्चों में भी बहुत हो रहा है। यह रोग व्यक्ति की जीवनी शक्ति को बहुत कमजोर बना देता है एवं एक बार शरीर में प्रवेश करने के बाद जीवन भर के लिए जुड़ जाता है।

- अस्थमा के लक्षण-

1 श्वसन क्रिया अनियमित और अव्यवस्थित होना।

2 शरीर में शक्तिहीनता का अनुभव होना।

3 थोड़े से कार्य करने पर ही श्वास फूलना।

4 हदय गति का अनयमित होना।

5 शरीर में आलस्य का बने रहना।

6 खाँसी का लम्बे समय तक बने रहना।

- अस्थमा के कारण-

1 इस रोग का मूल कारण प्रदूषण होता है प्रदूषित वातावरण में रहना एवं नमी युक्त स्थानों में निवास करने से यह रोग तेजी से बढ़ता है।

2 अधिक धूम्रपान करने से यह रोग होता है।

3 नशीले पदार्थो जैसे तम्बाकू, अफीम, शराब का सेवन करने से।

4 ज्यादा मात्रा में दवाईयों का सेवन करने से।

5 विषाणु अथवा अन्य श्वास सम्बन्धी संक्रमण होने से।

6 अत्यधिक चिन्ता एवं मानसिक तनाव भी दमें का एक बड़ा कारण होता है।

सर्वप्रथम रोगी को साफ स्वच्छ एवं निर्मल प्राकृतिक वातारण में लाना चाहिए। ऐसा करने से रोगी को शीघ्रता से आराम होता है साथ ही उसे मानसिक स्तर पर विश्राम देना भी अनिवार्य होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा

1) मिट्टी चिकित्सा -

- इस रोग का मूल कारण शरीर में स्थित विषाक्त तत्व होते है जिन पर विषाणु जीवित रहता है। अतः इन विषाक्त तत्वों को मिट्टी के द्वारा शरीर से निकालना इस रोग की प्राथमिक चिकित्सा होती है। इसके लिए रोगी को पेट पर मिट्टी की पट्टी एवं सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी लेप दिया जा सकता है। सम्पूर्ण शरीर के मिट्टी लेप में यह सावधानी रखनी होती है कि इसके बाद रोगी को तेज धूप स्नान देना अनिवार्य होता है।

2) सूर्य किरण चिकित्सा -

- सूर्य किरण चिकित्सा में रोगी को गहरे नीले रंग से तृप्त जल का सेवन कराया जाता है एवं नीले रंग का प्रकाश छाती एवं फेफड़ों पर दिया जाता है।
- सम्पूर्ण शरीर का सूर्य स्नान भी लाभ पहुंचाता है।

3) अभ्यंग चिकित्सा -

- इस रोग से पीड़ित रोगी को सम्पूर्ण शरीर का अभ्यंग दिया जाता है। जिससे सम्पूर्ण शरीर में रक्त परिवहन में तीव्रता आने के साथ-साथ शरीर की जीवनी शक्ति विकसित हो सके एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास हो सके।

4) उपवास चिकित्सा -

- रोगी को क्रमशः फलों-सब्जियों के जूस एवं सूप पर रखकर पूर्णोपवास पर लाया जाता है। पूर्णोपवास में हल्के गरम पानी में कागजी नींबू एवं शहद का ही सेवन कराया जाता है। इस अवस्था में सम्पूर्ण शरीर से विषाक्त तत्व बाहर निकल जाते है एवं शरीर स्वच्छ एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाती है।

(क) पथ्य - हरी सब्जियों जैसे लौकी, तुरई, परवल आदि को केवल उबालकर ही रोगी को देना चाहिए।

(ख) अपथ्य - गरिष्ट तामसिक भोजन, वसायुक्त भोजन एवं मिर्च मसाले युक्त भोजन का पूर्णतया त्याग करना चाहिए।

विशेष: श्वास लेने में परेशानी होने पर दोनों पैरों को गरम पानी के टब में डूबोकर बैठने (गर्म पैर स्नान) से विशेष लाभ मिलता है।

- धूम्रपान, मद्यपान एवं मांसाहारी भोजन का पूर्णतया त्याग करना चाहिए।
- प्रातःकालीन भ्रमण को धीरे-धीरे बढ़ाते हुए नियमित योगाभ्यास (विशेषतया प्राणायाम एवं ध्यान) को अपनाना चाहिए।
- तनाव रहित, प्रसन्नता के साथ जीवन जीना चाहिए।

12.11 हृदय रोग-

वर्तमान विकास ने जहाँ मनुष्य को अनेकों सुख-सुविधाएं दी है वहीं उसने इसके साथ हृदय रोग भी दिए है। इन रोगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये रोग एक बार आने के बाद शीघ्रता से शरीर को नहीं छोड़ते। एलोपैथी में इन रोगों को असाध्य मानकर इनके लिए लगातार दवाईयों का सेवन करते हुए इनके साथ रहकर ही जीवन जीने की सलाह दी जाती है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा इन रोगों का भी स्थाई उपचार देती है।

- हृदय के लक्षण -

1 हृदय की गति का अनियमित होना एवं हृदय में चुभन या दर्द होना

2 श्वास की गति का अनियमित होना।

3 रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) का बढ़ना एवं पसीना आना।

4 आन्तरिक घबराहट होना एवं भय लगना।

5 चिड़चिड़ा स्वभाव होना।

6 क्रोध ज्यादा आना।

- हृदय के कारण

1 रोग का मूल कारण असंयमित जीवन एवं अनियमित दिनचर्या है।

2 अधिक वसा युक्त भोजन एवं मोटापा।

3 उत्तेजक दवाइयों तथा नशीले पदार्थो जैसे पान, गुटका-मसाले, शराब का अधिक सेवन करना।

4 माँसाहारी भोजन।

5 शारीरिक श्रम का अभाव एवं अत्यधिक सुविधायुक्त भोगमय जीवन शैली।

6 अधिक चिन्ता अथवा मानसिक तनाव।

सर्वप्रथम रोग के मूल कारण को जानकर उसका निवारण करना ही इस रोग की प्राथमिक चिकित्सा है।

प्राकृतिक चिकित्सा

1) मिट्टी चिकित्सा-

- रोगी को पेट एवं माथे पर मिट्टी पट्टी देने से लाभ मिलता है।
- सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी पट्टी देने का सकारात्मक प्रभाव भी रोगी पर पड़ता है।

2) सूर्य किरण चिकित्सा -

- रोगी को नीले रंग की सूर्यतप्त जल का सेवन कराने से लाभ मिलता है।

3) अभ्यंग चिकित्सा -

- अभ्यंग का विशेष लाभ इस रोग में होता है सम्पूर्ण शरीर का अभ्यंग प्रातःसायं दोनों समय करना चाहिए किन्तु इसमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि अभ्यंग करते समय अभ्यंग की दिशा हृदय की ओर ना होकर हृदय से अंगों की ओर होनी चाहिए।

4) उपवास चिकित्सा -

- रोगी को क्रमशः फलों सब्जियों के जूस व सूप पर रखकर पूर्णोपवास कराने से रोग शीघ्रता से ठीक होता है।

(क) पथ्य- पालक, मैथी, बथुआ, धनिया, मूली, लौकी, पपीता, सन्तरा, अदरक का सेवन करना चाहिए। आँवले का प्रयोग रोग में विशेष लाभ देता है।

(ख) अपथ्य- चाय, चीनी, नमक, चटनी, अचार, घी, मलाई का सेवन त्याज्य है। नमक का प्रयोग कम से कम करें तथा धूम्रपान, शराब एवं तामसिक भोजन को तुरन्त छोड़ दें।

विशेष - ताँबे के बरतनों का प्रयोग करें एवं प्रातःकालीन भ्रमण के साथ-साथ योगाभ्यास (प्राणायाम एवं ध्यान) को अपनाए।

12.12 मधुमेय-

मधुमेह पहले केवल उच्च वर्ग का रोग माना जाता था किन्तु आज यह उच्च, मध्यम एवं निम्न अर्थात समाज के हर वर्ग का रोग बन गया है। इसके बढ़ते प्रभाव को देखते हुए इसे सहशताब्दी की

बीमारी (Disease of the Millanium) भी घोषित किया गया है। चारों तरफ इस बीमारी पर अनेकों शोध आज किए जा रहे है किन्तु यह फिर भी काबू से बाहर हो रही है।

- मधुमेय के लक्षण -

1 बार-बार मूत्र त्याग की इच्छा होना।

2 मूत्र पर चिटियों का आना।

3 अधिक प्यास एवं भूख लगना तथा भोजन के प्रति अरूचि होना।

4 शरीर के वजन का लगातार घटना।

5 स्वभाव में चिढचिढापन आना।

6 अत्यधिक शारीरिक एवं मानसिक थकान के साथ हर समय आलस्य बने रहना।

- मधुमेय के कारण -

1 पेन्क्रियाज की कोशिकाओं द्वारा इन्सूलिन नामक हार्मोन का अल्प स्रावण करना।

2 चीनी एवं मीठे पदार्थो का अधिक सेवन करना।

3 शारीरिक श्रम का अभाव इसे जन्म देता है।

4 मोटापा, मानसिक तनाव एवं चिन्ता भी इसके बड़े कारण है।

5. मांस, मछली, गुटका, तम्बाकू एवं शराब के अधिक सेवन के कारण।

6 आनुवांशिकता।

संयमित एवं व्यवस्थित दिनचर्या से इस रोग को ठीक करने में बहुत मदत मिलती है।

प्राकृतिक चिकित्सा

1) मिट्टी चिकित्सा-

- पेट पर मिट्टी की पट्टी देने से पेन्क्रियाज पर प्रभाव पड़ता है। माथे पर मिट्टी की पट्टी मानसिक तनाव को कम करती है एवं सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी का लेप सम्पूर्ण शरीर को स्वस्थ बनाता है। मिट्टी की ठण्डी पट्टी पेन्क्रियाज को सक्रिय बनाती है।

2) सूर्य किरण चिकित्सा -

- नांरगी तथा आसमानी रंग तृप्त जल का सेवन रोगी को कराने से लाभ मिलता है।
- आसमानी रंग से तृप्त तेल की मालिश भी रोगी को की जाती है।

3) अभ्यंग चिकित्सा -

- हाथों-पैरों के अभ्यंग के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर का अभ्यंग एक और तनाव को कम करता है वही रक्त संचार को तीव्र करता है जिससे पेन्क्रियाज की कोशिकाओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस रोग में पेट पर हल्के हाथों से गोलाकार अभ्यंग भी लाभ देता है।

4) उपवास चिकित्सा -

- रोगी को फल-सब्जियों पर एक सप्ताह उपवास कराने के उपरान्त एक सप्ताह नींबू पानी पर उपवास कराने से शरीर की गन्दगियाँ बाहर निकल जाती है एवं शरीर के सभी अंग पुनः सुचारू रूप से क्रियाशील होकर अपना कार्य करने लगते है।

(क) पथ्य - रोगी को जौ, चना, गेहूँ को मिलाकर चौकर सहित रोटियों का सेवन करना चाहिए। इसके अलावा हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे मैंथी, परवल, करैला, आदि लाभकारी होती है।

(ख) अपथ्य - कंदशाक जैसे आलू , शकरकन्द, मीठे फल जैसे अंगूर केला, तथा चाय, चीनी, नमक आदि का सेवन वर्जित माना गया है।

विशेष - कब्ज ना रहने दें, नीम की पत्तियों तथा कड़वी चीजों जैसे करेले का सेवन अधिक करें एवं प्रर्याप्त शारीरिक श्रम को अपनाए।

अभ्यास प्रश्न

1) बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) बुखार का कारण है-

अ. विजातीय विष की अधिकता

ब. रोगाणु संक्रमण

स. कम प्रतिरोधक क्षमता

द. सभी

(ख) उच्चरक्त चाप रोगी की सूर्य किरण चिकित्सा है-

अ. लाल रंग की बोतल का जल

ब. नीले रंग की बोतल का जल

स. काले रंग की बोतल का जल

द. सफेद रंग की बोतल का जल

(ग) सामान्य व्यक्ति का रक्तचाप होता है-

अ. 120-80 m.m. of Hg

ब. 100-150 m.m. of Hg

स. 1000-1200 m.m. of Hg

द. 100-50 m.m. of Hg

(घ) मोटाप्र का प्रमुख कारण है-

अ. अधिक धन सम्पदा

ब. अधिक वसा युक्त भोजन

स. अधिक कार्य करना

द. अधिक जल का सेवन

(ड.) सहशताब्दी की बीमारी है-

अ. रक्तचाप

ब. मोटापा

स. मधुमेह

द. कैन्सर

12.13 सारांश-

इस इकाई में आपने विविध रोगो में मिट्टी चिकित्सा,सूर्यकिरण चिकित्सा, अभ्यंग चिकित्सा और उपवास चिकित्सा के प्रयोग का अध्ययन किया है। चूंकि इन सभी रोगों का मूल कारण शरीर में स्थित विजातीय द्रव्य (गन्दगियां) होती है, अतः इन सभी विधियों के द्वारा शरीर में स्थित इन विजातीय द्रव्यों को बाहर निकाला जाता है। मिट्टी में विष को शोषित करने का विलक्षण गुण पाया जाता है जिसका प्रयोग हमने यहाँ पर किया हैं सूर्य किरणों के भिन्न-भिन्न रंग शरीर के भिन्न-भिन्न अंग प्रत्यंग को प्रभावित करते है इन रंगों का प्रभाव हमने विभिन्न रोगों के उपचार में किया है। अभ्यंग शरीर में रक्त संचार को तीव्र करने का कार्य करती है।

जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न अंग स्वस्थ बनते है जबकि उपवास शारीरिक एवं मानसिक शक्ति को जाग्रत करने का प्रबल साधन है इस इकाई में हमने इन सभी विधियों द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार की विधि का अध्ययन किया है।

12.14 शब्दावली-

गरिष्ट भारी

तामसिक भोज अण्डा, मांस, मछली इत्यादि

पीत वर्ण - पीला रंग

प्रज्वलित - जाग्रत

मृदुता - कोमलता

संकोच - सिकुड़ना

वसायुक्त - घी, तेल से युक्त

12.15 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1. (क) द (ख) ब (ग) अ (घ) ब (ड.) स

12.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तर प्रदेश

2. सक्सैना ओम प्रकाश, (2009) सरल प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवासदन, मथुरा

3. शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली

12.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. मधुमेह रोग से आप क्या समझते हो? इस रोग के लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए।

2. गठिया रोग के कारणों पर प्रकाश डालते हुए इसकी प्राकृतिक चिकित्सा समझाइये।

3. मोटापा क्या है? इस रोग के लक्षणों को बतलाते हुए इसकी मिट्टी चिकित्सा, अभ्यंग चिकित्सा एवं उपवास चिकित्सा लिखिए।

4. ब्लड प्रेशर को समझाते हुए उक्त रक्तचाप रोगी की प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए।

इकाई 13 स्त्री रोगो (कष्टार्तव, अत्यधिक ऋतुस्राव, श्वेत प्रदर, जेनाइटल हर्पीस, एनीमिया, कैसर) की प्राकृतिक चिकित्सा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 कष्टार्तव

13.4 अत्यधिक ऋतुस्राव

13.5 श्वेत प्रदर

13.6 जेनाइटल हर्पीस

13.7 एनीमिया

13.8 कैंसर

13.9 सारांश

13.10 शब्दावली

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.13 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्त्रियों से सम्बन्धी रोग बढ़ते जा रहे हैं। इन रोगों से पीड़ित स्त्रियों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है जिसकी भिन्न-भिन्न चिकित्सा पद्धतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार से उपचार किया जाता है। किन्तु इन उपचारों से ये स्त्रियों से सम्बन्धी रोग पूर्ण रूप से ठीक नहीं हो पाते तथा एक रोग से दूसरे रोग में परिवर्तित हो जाता है तथा बाद में रोग ठीक होने की तुलना में और गम्भीर अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

प्रिय पाठकों यहां पर यदि हम प्राकृतिक चिकित्सा का अवलोकन पर दृष्टिपात करें तो यह चिकित्सा पद्वति इन रोगों का स्थायी उपचार देता है। प्राकृतिक चिकित्सा की विभिन्न पद्वतियां -जैसे मिट्टी चिकित्सा, जल चिकित्सा, सूर्य किरण चिकित्सा तथा उपवास चिकित्सा इन रोगों का जड़ से उपचार करती है तथा शरीर को स्वस्थ एवं सक्षम बनाती हुई सभी रोगों से मुक्त बनाती है। स्त्री रोग वर्तमान समय की एक बहुत गम्भीर समस्या है जिसका आप प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करेंगे। इस इकाई में कष्टार्तव, अध्यधिक ऋतुस्राव, श्वेत प्रदर, जेनाइटल हर्पीस, एनीमिया तथा कैंसर एड्स की प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है जिसका अध्ययन करने के उपरान्त आप इन रोगों की चिकित्सा करने में सक्षम होंगे।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप -

- कष्टार्तव के लक्षण, कारण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन करेंगे।
- अत्यधिक ऋतु रक्तस्राव के लक्षण, कारण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन करेंगे।
- श्वेत प्रदर के लक्षण, कारण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन करेंगे।
- जेनाइटल हर्पीस के लक्षण, कारण एवं प्राकृतिक चिकित्सा को समझ सकोंगे।
- एनीमिया के लक्षण, कारण एवं प्राकृतिक चिकित्सा को जान सकेंगे।
- कैंसर के लक्षण, कारण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का विश्लेषण करेंगे।

13.3 कष्टार्तव

आधुनिक समय की अत्यधिक व्यस्त दिनचर्या एवं तनावयुक्त जीवन ने सबसे ज्यादा प्रभाव अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर डाला है। तनाव एवं असंयमित दिनचर्या ने शरीर के हार्मोन्स में परिवर्तन किया है जिसके परिणाम कष्टार्तव जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। शरीर में इस रोग के लक्षण इस प्रकार हैं -

- कष्टार्तव के लक्षण

1. आर्तव काल में अधिक दर्द होना।
2. कमर तथा पेट में दर्द होना।
3. अधिक शारीरिक एवं मानसिक थकान का होना।

4. आर्तव में कम अथवा अधिक स्राव होना।

5. क्रोध अथवा चिढ़चिढ़ाहट उत्पन्न होना।

- कष्टार्तव के कारण

1. प्रजनन हार्मोन्स की अनियमितता।

2. गर्भाशय का तंग होना अथवा विकृत होना।

3. गर्भाशय में टयूमर बनना अथवा संक्रमण होना।

4. मासिक धर्म का अनियमित होना।

5. शरीर में रक्त की कमी होना।

6. अधिक अम्लीय अथवा तीक्ष्ण पदार्थो का अधिक सेवन।

7. ऋतुकाल के समय पुरूष सहवास करने से।

8. अत्यधिक श्रम अथवा श्रम का पूर्णतया अभाव होना।

9. मानसिक तनाव क्रोध अथवा चिन्ता से।

- कष्टार्तव की प्राकृतिक चिकित्सा

इस रोग की सबसे प्राथमिक एवं मूल चिकित्सा व्यवस्थित दिनचर्या एवं सकारात्मक सोच है। प्राकृतिक समीप वास करते हुए सात्विक आहार विहार करने से इस रोग में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

1) मिट्टी चिकित्सा

इस रोग में पेडू पर मिट्टी की पट्टी देने से लाभ मिलता है। पेट की गरम पानी की बोतल से सिकाई करने के बाद ठण्डी मिट्टी की पट्टी देने से यह रोग ठीक होता है।

2) जल चिकित्सा

इस रोग में जल चिकित्सा का बहुत महत्व होता है। रोगिणी स्त्री को गर्म ठण्डे जल से सिकाई करने पर दर्द में तुरन्त आराम मिलता है। साथ ही गर्म पानी की सेक नियिमित अन्तराल पर देने से रोग ठीक होता है।

इस रोग में गर्म ठण्डा कटि स्नान देना चाहिए साथ ही मेहन स्नान भी अवश्य देना चाहिए।

एनिमा क्रिया का प्रयोग रोग में अवश्य करना चाहिए। रोग की बड़ी अवस्था में भाप देने से भी लाभ मिलता है।

3) सूर्य किरण चिकित्सा – रोगी को प्रात- काल सूर्य सेवन से लाभ मिलता है ।

4) अभ्यंग चिकित्सा – हाथ व पैरो में हल्की तेल की मालिश भी लाभकारी है।

5) उपवास चिकित्सा – सप्ताह में एक बार फलोपवास लाभकारी है।

13.4 अत्यधिक ऋतुस्राव -

ऋतुकाल में सामान्य से अधिक रक्तस्राव होना अत्यधिक ऋतु रक्त स्राव कहलाता है।

- लक्षण

1. अधिक रक्तस्राव होना।
2. पेट अथवा कमर में दर्द।
3. अत्यधिक थकान।
4. रक्तस्राव का लम्बे समय तक बने रहना।

- कारण

1. प्रजनन हार्मोन्स की अनियमितता से।
2. मासिक चक्र की अनियमितता से।
3. विकृत आहार-विहार करने से।
4. अत्यधिक सहवास अथवा ऋतुकाल में सहवास।
5. अत्यधिक श्रम, तनाव, क्रोध, चिन्ता से।

6. दवाईयों का अत्यधिक सेवन करने से।

प्राकृतिक चिकित्सा - इस रोग की चिकित्सा इस प्रकार है -

1) मिट्टी चिकित्सा

पेडू पर ठण्डी मिट्टी की पट्टी से रोग में आराम मिलता है।

2) जल चिकित्सा

ठण्डी सिकाई करनी चाहिए। ठण्डा कटि स्नान देना चाहिए। मेहन स्नान का लाभ इस रोग में मिलता है।

ठण्डे पानी से योनि को धोना चाहिए।

अत्यधिक रक्त स्राव की स्थिति में योनि की बर्फ के टुकड़ों से सिकाई करनी चाहिए।

इस रोग में उपवास चिकित्सा या आहार चिकित्सा का बहुत महत्व है। रोगिणी स्त्री को हल्का, सुपाच्य, प्राकृतिक एवं सात्विक भोजन ही देना चाहिए।

रोग की अवस्था में रसाहार अथवा फलाहार पर भी रखा जाना लाभप्रद होता है तथा नीबू-शहद पानी पर पूर्णोपवास करने से हार्मोन्स का संतुलन पुनः बनता है एवं रोग ठीक होता है।

विशेष: रोगिणी स्त्री को ऐसे तख्त पर लिटाना चाहिए जिसकी एक दिशा ऊँचाई पर तथा दूसरी दिशा नीची हो। रोगिणी स्त्री का सिर नीचे की ओर तथा पैरों को थोड़ी ऊँचाई पर रखने से रक्त स्राव रूक जाता है।

13.5 श्वेत प्रदर

योनि से दुर्गन्धयुक्त चिपचिपे गाढ़ा तरल द्रव का स्रोव होना श्वेत प्रदर कहलालता है। इसे अंग्रेजी भाषा में ल्यूकोरिया कहा जाता है।

- श्वेत प्रदर के लक्षण

1. योनि से दुर्गन्धयुक्त तरल पदार्थ का स्राव
2. योनि में जलन, खुजली होना तथा वमन होना

3. पेशाब में जलन तथा इस स्थान पर दाने होना

4. बुखार, कब्ज रोग होना

5. सहवास में दर्द एवं स्वभाव में चिढ़चिढापन होना

- श्वेत प्रदर के कारण

1. प्रजनन अंगों में संक्रमण होना

2. उत्तेजक दवाइयों का अधिक सेवन

3. कब्ज का लम्बे समय तक बने रहना

4. अधिक सहवास

5. गर्भपात होना

6. अत्यधिक श्रमहीन अनियमित जीवन शैली

प्राकृतिक चिकित्सा - श्वेत प्रदर की प्राकृतिक चिकित्सा इस प्रकार है -

1) मिट्टी चिकित्सा

इस रोग का प्रमुख कारण शरीर में स्थित विजातीय विषों की अधिक मात्रा है। अतः मिट्टी चिकित्सा के द्वारा शरीर की इन गन्दगियों (विषों) को निकालना इसकी मूल चिकित्सा है। इसके लिए ठण्डी पेडू की पट्टी का प्रयोग अथवा सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी का लेप करना लाभकारी होता है।

2) जल चिकित्सा

जल के माध्यम से शरीर की शुद्धि करना इस रोग की दूसरी प्रमुख चिकित्सा है। रोगिणी स्त्री को ठण्डा कटि स्नान, गरम ठण्डा कटि स्नान, रीढ स्नान देना चाहिए।

मेहन स्नान का इस रोग में विशेष प्रभाव पड़ता है। इसके साथ-साथ जल से भली प्रकार प्रजनन अंगों की सफाई करनी चाहिए।

एनिमा क्रिया के द्वारा शरीर की (आंतों की) सफाई अवश्य करनी चाहिए।

3) सूर्य किरण चिकित्सा

नारंगी रंग के तैयार जल का सेवन रोगिणी स्त्री को कराए

आसमानी रंग के तैयार तेल का अभ्यंग करें।

13.6 जेनाइटल हर्पीस -

विषाणु के संक्रमण के परिणामस्वरूप प्रजनन अंगों के समीप दाने एवं जलन होती है जिसे जेनाइटल हर्पीस कहा जाता है।

- जेनाइटल हर्पीस के लक्षण

1. प्रजनन अंगों में संक्रमण अथवा जलन
2. बुखार सिरदर्द होना
3. दाने फूटकर जख्म होना

जेनाइटल हर्पीस के कारण

1. विषाद द्वारा तथा संक्रमण से
2. शारीरिक स्वच्छता का अभाव
3. आनुवांशिक कारण

प्राकृतिक चिकित्सा - इस प्रकार है -

1) मिट्टी चिकित्सा

पेडू को ठण्डी मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए।

2) जल चिकित्सा

प्रजन्नन अंगों को ठण्डे जल में डूबोकर सफाई करनी चाहिए तथा दानों की बर्फ से सफाई करें।

गर्म ठण्डा कटि स्नान का प्रयोग करना चाहिए।

सूर्य किरण चिकित्सा

अभ्यंग चिकित्सा

उपवास चिकित्सा

13.7 एनीमिया

शरीर में रक्त की कमी एनीमिया रोग कहलाता है। गर्भावस्था काल में जब शिशु के लिए रक्त का निर्माण करना पड़ता है उस स्थिति में अक्सर शरीर में रक्त की कमी हो जाती है एक शोध के अनुसार भारत में 80 प्रतिशत गर्भवती महिलाए एनीमिया से पीड़ित हो जाती हैं जिसका प्रभाव मां एवं बच्चे दोनों पर पड़ता है।

- लक्षण

1. शरीर में रक्त की कमी
2. त्वचा, नाखून का सफेद होना
3. कमजोरी एवं थकावट
4. हृदय गति तीव्र होना

- एनीमिया के कारण

1. महावारी में अधिक रक्त का स्राव
2. पोषक पदार्थो की भोजन मे कमी
3. बार-बार गर्भ धारण
4. शरीर में संक्रमण

प्राकृतिक चिकित्सा - इस प्रकार है -

1) मिट्टी चिकित्सा

पेडू पर मिट्टी की पट्टी एवं सम्पूर्ण शरीर में मिट्टी लेप करना चाहिए।

2) जल चिकित्सा

ठण्डा कटि स्नान के साथ-साथ ठण्डा रीढ स्नान देना चाहिए

3) सूर्य किरण चिकित्सा

आसमानी रंग का तैयार जल का सेवन रोगी को कराना चाहिए

4) अभ्यंग चिकित्सा

सम्पूर्ण शरीर का अभ्यंग करने से रक्त संचार तीव्र होता है एवं रक्त कणों के निर्माण की क्रिया तीव्र होती हैं

5) उपवास चिकित्सा

इस रोग में आहार चिकित्सा का विशेष महत्व है गरिष्ट, तले भूने एवं अप्राकृतिक भोजन के स्थान पर शुद्ध, सात्विक एवं पौष्टिक भोजन रोगी को देना चाहिए।

विशेष-

अंकुरित आहार, अंजीर, मुनक्का, हरी सब्जियाँ, जैसे पालक, टमाटर, धनिया, चुकन्दर एवं गाजर के साथ सेब, आँवला इत्यादि फल रोगिणि स्त्री को देने चाहिए।

13.8 कैंसर-

सामान्यताः शरीर में कोशिकाओं की सड़न अथवा अनियमित वृद्धि कैंसर कहलाती है। इस रोग को अत्यन्त भयानक एवं असाध्य रोगों की श्रेणी में रखा गया है। आधुनिक समय में स्त्रियों में स्तर कैंसर, तथा गर्भाशय का कैंसर बहुत विकराल रूप से बढ़ा है।

- कैंसर के लक्षण-

1. शरीर (स्तन अथवा गर्भाशय) में गांठ का बनना
2. शरीर में अनियमित वृद्धि का होना
3. शरीर में फोड़ा बनना
4. शरीर पीला पड़ना एवं रक्त हीनता
5. रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी
6. शरीर का लगातार वजन घटना

- कैंसर के कारण-

1. अनियमित दिनचर्या एवं असंयमित जीवन
2. रासायनिक पदार्थो एवं कीटनाशक पदार्थो से युक्त भोजन का अधिक सेवन
3. दवाइयों का अत्यधिक सेवन
4. मानसिक तनाव अथवा अवसाद
5. श्रम का पूर्ण अभाव के कारण शरीर में अधिक मात्रा में विजातीय पदार्थो का भण्डारण।

प्राकृतिक चिकित्सा-

1) मिट्टी चिकित्सा- विभिन्न अंगों पर गीली मिट्टी की पट्टी देने के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर का मिट्टी लेप करना चाहिए।

2) जल चिकित्सा-

कटि स्नान, रीढ स्नान, स्पंज, गर्म ठण्डी सेवनके साथ-साथ भाप स्नान रोगी को देना चाहिए। प्रतिदिन एनीमा क्रिया करानी चाहिए।

3) सूर्यकिरण चिकित्सा-

हरे रंग के तैयार जल का सेवन करना चाहिए।

हरे रंग का प्रकाश प्रभावित अंग के देना चाहिए सूर्य स्नान रोगी को देना चाहिए।

4) अभ्यंग चिकित्सा-

सम्पूर्ण शरीर पर अभ्यंग करना चाहिए।

5) उपवास चिकित्सा-

रसाहार पर रोगी को रखते हुए धीरे-धीरे पूर्ण उपवास पर लाना चाहिए।

उपवास काल में खूब जल का सेवन कराना चाहिए। रोगी की स्थिति के अनुसार नीबू और शहद के जल पर उपवास कराना चाहिए।

विशेष-

रोगी को नियमित योगाभ्यास एवं यौगिक क्रियाओं (षट्कर्मो, आसन, प्राणायाम एवं ध्यान) का अभ्यास कराए अंकुरित अन्न, गेहूँ का ग्वारा, करेले का सेवन रोगी को अधिक से अधिक करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न –

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) कष्टार्तव के लक्षण है

अ. दर्द के साथ श्वास

ब. दर्द के साथ पेशाब

स. दर्द के साथ माहवारी

द. दर्द के साथ शौच

(ख) श्वेत प्रदर का कारण है-

अ. प्रजनन अंगों में संक्रमण

ब. गर्भपात

स. दवाइयों का अधिक सेवन

द. सभी

(ग) एनिमिया में कौन सा स्नान देना चाहिए-

अ. ठण्डा कटि स्नान

ब. भाप स्नान

स. गर्म कटि स्नान

द. स्नानीय भाप

(घ) कैंसर रोगी को किस रंग का जल देना चाहिए-

अ. लाल

ब. नीला

स. हरा

द. पीला

(ड.) कैंसर रोग में क्या नहीं करना चाहिए।

अ. यौगिक क्रियाओं का अभ्यास

ब. अधिक शर्करा एवं वसा युक्त भोजन

स. हरे रंग के तेयार जल का सेवन

द. रसाहार के उपरान्त पूर्ण उपवास

13.9 सारांश -

इन सभी बढ़ते स्त्री रोगों का एक प्रमुख कारण अप्राकृतिक जीवन यापन एवं असंयमित दिनचर्या है इनके परिणाम स्वरूप शरीर में विभिन्न प्रकार की विकृतिया उत्पन्न होती है अतः सर्वप्रथम प्राकृतिक जीवन को अपनाना इन सभी रोगों की मूल चिकित्सा है।

दवाईयों एवं कीटनाशक रसायनों से युक्त आहार का सेवन इन रोगों को बढ़ाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है अतः इन रासायनों से युक्त भोजन को त्यागना एवं जीवन में उत्तेजक दवाईयों का सेवन पूर्णतया वर्जित करने से इन सभी रोगों से बचा जा सकता है।

चूंकि बाह्य वातावरण का सीधा प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है बाह्य वातावरण की गन्दगियां शरीर में विभिन्न रोगों को जन्म देती है। हम इस वातावरण में रहकर प्राकृतिक चिकित्सा की विभिन्न विधियों का यदि नियमित प्रयोग करते है तो हमारे शरीर पर प्रदूषित वातावरण का प्रभाव भी नहीं पड़ता है। तथा हम समग रूप से स्वस्थ्य रह सकते है।

13.10 शब्दावली-

ट्यूमर- शरीर में गांठ बनना

असाध्य रोग- मुश्किल से ठीक होने वाला रोग

आनुवांशिक – एक पीढी से दूसरी पीढी में आने वाले लक्षण

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) स (ख) द (ग) अ (घ) स (ड.) ब

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन मोदीनगर, उत्तर प्रदेश

2. सक्सैना ओम प्रकाश, (2009) सरल प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवासदन, मथुरा

3. शर्मा राम गोपाल, (2007) प्राकृतिक चिकित्सा, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली

4. सम्सेना ओमप्रकाश, (2010)वृहद प्राकृतिक चिकित्सा, हिन्दी सेवा सदन मथुरा

5. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द (1998) रोग और योग, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर, बिहार

6. मुक्तानन्द स्वामी (2000) नवयोगिनी तंत्र योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार

13.13 निबंधात्मक प्रश्न-

1. श्वेत प्रदर रोग के लक्षण कारण एवं प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए?

2. कैंसर रोग के लक्षण कारण एवं प्राकृतिक चिकित्सा पर प्रकाश डालिए।

3. किन्हीं दो महिलाओ मे होने वाले रोगो के कारण, लक्षण व उपयुक्त प्राकृतिक चिकित्सा की विवेचना कीजिए।